दोपहर को अँधेरा

[समसामयिक जीवन पर आधारित उपन्यास]

लेखक

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वोरा एण्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बंबई २.

प्रकाशकीय

सदियों की दासता के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। स्वाधीनता ने निश्चय ही हमारी राजनीतिक स्थिति को उन्नत किया, हमारे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व और पद में भी अवश्यमेव अभिवृद्धि हुई; लेकिन इसे देश के नेता और जन-सामान्य - सभी स्वीकार करते हैं कि हमारे राष्ट्रीय चरित्र और हमारी नैतिकता में कोई वृद्धि नहीं हुई, उलटे इस दिशा में राष्ट्र का घोर पतन ही हुआ है। स्वाधीनता के विगत १०-१२ वर्षों में क्या शासक और क्या शासित, क्या नेता और क्या अनुयायी—सभी चरित्र और नैतिकता की दृष्टि से, कुछ अपवादों को छोड़कर, गिरे ही हैं। नवोदित राष्ट्र की यह अनैतिकता और चरित्रहीनता सार्वजनिक जीवन और शासन-तंत्र में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार के रूप में परिलक्षित होती है। देश के कर्णधारों ने इस बुराई

को मिटाने और निर्मूल करने के जितने भी प्रयत्न किये, किसी में सफलता नहीं मिली। आधुनिक भारत के सभी विचारक यह देखकर चिन्तित हो उठे हैं; और हमारे देश के साहित्य में इस बुराई के विरुद्ध उठनेवाला स्वर तीव्र से तीव्रतम होता जा रहा है। लेकिन भारत की अन्य भाषाओं की तुलना में देखें तो हिन्दी में अभी इस विषय पर—भ्रष्टाचार के विरोध में—बहुत ही कम लिखा गया है। जो लिखा भी गया है वह कला-पक्ष और कथा-पक्ष की दृष्टि से बड़ा ही दुर्बल है। ऐसी स्थिति में श्री यमुनादत्त वैष्णव का यह उपन्यास बड़ा ही स्तुत्य प्रयास है।

इस उपन्यास में श्री वैष्णव ने एक ऐसे ईमानदार, सत्यवादी और कर्त्तव्यपरायण तहसीलदार की कहानी कहने का प्रयत्न किया है जो भ्रष्टाचार का कट्टर विरोधी और जनहित का प्रबल समर्थक होने के साथ-साथ अपने शासकीय कर्त्तव्यों को भी सम्पूर्ण जागरूकता से पालन करते रहने का पक्षपाती है। लेकिन सत्य और कर्त्तव्य के लिए उसका यह अति आग्रह ही उसके मार्ग की बाधा बन जाता है। उसके दूसरे सभी अधिकारी साथी उसके दुश्मन बन जाते हैं। अन्त में ऐसा षड्यंत्र किया जाता है कि उस तहसीलदार को पागल करार देकर, हाथ में हथकड़ी डालकर अस्पताल भेजने का शासकीय आदेश हो जाता है!

परन्तु सत्य की ज्योति अभी बुझने नहीं पाई है। उच्च अधिकारियों और जनता में भी कुछ सत्यवादी और ईमानदार व्यक्ति हैं। ऐसे व्यक्ति सहायता के लिए आगे आते हैं और कर्त्तव्यपरायण तहसीलदार के, अधिक उपयोगी जीवन बिताने में, सहायक होते हैं।

इस कथाकृति में सत्य और नैतिकता की रक्षा के लिए किये जानेवाले संघर्ष में निहित विवशता अपनी समस्त करुणा के साथ प्रस्फुटित हुई है। देश का निर्माण और सुशासन के लिए नियुक्त अधिकारीगण किस सीमा

डाक में आये लम्बे सरकारी लिफाफे को खोलकर उसमें उल्लिखित अप्रत्याशित आदेश को पढ़ते ही रामप्रसाद चौंक पड़ा। दो ही महीने तो इस नये स्थान पर आये हुए हैं, फिर आ गया वही हुक्म।

शेष पत्रों को बिना पढ़े ही वह उठ खड़ा हुआ। क्वार्टर के अन्दर उसकी पत्नी मुन्ना को आँगन की धूप में सुला रही थी। वही आँगन, जिसे उसने छोटे साहब से कहकर दस दिन पहिले पक्का करवाया था। सामने उसकी गाय बछिया की पीठ अपनी जिह्वा से चाट रही थी। वही गाय, जिसे मुन्ना के दूध के लिए उसने सवा सौ रुपए में इसी महीने पहिली तारीख को खरीदा था। इस हुक्म के एकाएक आ जाने से इन सबका क्या होगा, यही सोचता हुआ वह साँस रोके अपनी पत्नी के पास तक पहुँचा। उसकी समझ में नहीं आया कि इस अशुभ समाचार से पत्नी को कैसे अवगत कराये।

धीरे से, ऐसी भारी आवाज़ में मानो उसकी साँस घुट रही हो, उसने कहा—सुशीला, फिर हुक्म आ गया!

पति के पर्याकुल हाव-भाव देखकर सुशीला समझ न पाई कि ऐसा क्या अशुभ हो गया जिसने क्षण-भर में उसके पति का जीवन-सत्व ही हर लिया।

अब तक की नौकरी में यह नया स्थान सुशीला को सबसे अधिक पसन्द आया था। छोटा-सा साफ-सुथरा क़स्बा है, जहाँ खाने-पहिनने की सभी चीज़ें मिल जाती हैं। अधीनस्थ कर्मचारी बड़े विनयी और समझदार हैं। पड़ोस में

सफाई के इन्सपेक्टर, पशुओं के डाक्टर, सड़क के ओवरसियर—सभी इतने अच्छे हैं कि यह सरकारी बस्ती अपना ही कुटुम्ब-सा लगती है। उनका क्वार्टर पुराना अवश्य है, किन्तु नये रसोईघर के बन जाने और फर्श के पक्के कर दिये जाने से वह तहसील के और सब क्वार्टरों से सुन्दर हो गया है। अब तो उसके प्रयत्न से बिजली की फिटिंग की मंजूरी भी आ गई है। दो-एक दिन में बिजली के प्रकाश से सारा मकान जगमगा उठेगा। बाहर खूब बड़ा-सा अहाता है। चौकीदार माली का काम कर लेता है और गाय का दूध दुह देता है। सचमुच उनकी नौकरी का जीवन इतना सुखी कभी नहीं रहा है जितना इस वर्ष। गत मास मुन्ना के जन्म हो जाने से तो उसे इस नये स्थान से एक अनोखा-सा मोह हो गया है।

सुशीला ने आतंकित हो डरते-डरते पूछा—क्या हुक्म आया है?

कुछ सोचते-सोचते रामप्रसाद ने लम्बी साँस लेकर कहा—परसों, अठारह तारीख को इस तहसील में आये हुए हमें दो महीने होंगे, उससे पहिले यह हुक्म आ गया। वही ठाकुर मुझसे फिर चार्ज लेने आ रहा है।

'तबादिले का हुक्म?' पत्नी ने आह भरकर कहा, 'यहाँ से भी तबादिला?'

रामप्रसाद ने उसे इतनी जोर से न चिल्लाने का संकेत करते हुए फुसफुसाकर कहा—हाँ, तबादिले का हुक्म आ गया। अभी जरा चुप रहो, बाहर लोग सुनेंगे तो न जाने क्या कहेंगे। कहीं तराई की ओर जाना है।

सुशीला को भी क्षण-भर में अपनी गाय, अपने हाथ की लगाई सब्जी की क्यारियों और अपने डिजाइन किये नये रसोईघर का ध्यान आया। इन सबको इतनी जल्दी छोड़-छाड़कर जाने का प्रस्ताव वास्तव में बड़ा ही दुःखद था। फिर मुन्ना भी तो अभी एक माह का है। अपनी भी देह निर्बल है। जाड़े की इस लम्बी यात्रा में उसे कहीं कुछ हो न जाये, इस आशंका से भी सुशीला का हृदय काँप गया।

पति के बिलकुल निकट आकर इस विपदा में उसे सहारा-सा देती हुई वह बोली—तो आज ही लखनऊ जाकर बड़े साहब से मिल आओ। न हो तो किसी की सिफारिश लेते जाओ। इस समय इस विपदा को किसी-न-किसी प्रकार टालो।

उसी रात गाड़ी से रामप्रसाद बड़े साहब से मिलने चल दिया। वह अपने साथ कोई सिफारिशी पत्र नहीं ले गया, क्योंकि उसे विश्वास था कि अपनी परिस्थितियों का वास्तविक वर्णन कर देने पर यह स्थानान्तर आदेश अवश्य रद्द कर दिया जायेगा। रास्ते-भर वह सोचता रहा कि साहब से वह अपनी नवप्रसूता पत्नी की बात कहेगा, जो अभी यात्रा करने में असमर्थ है, उन जटिल सरकारी मामलों की बात बतलायेगा, जिनकी छानबीन उसने अभी-अभी आरम्भ की है। अपनी नयी गृहस्थी को इस नये स्थान पर जमाने के लिए किये गये भारी व्यय का जिक्र करेगा; गाय की खरीद की बात कहेगा, जिससे साहब को पता लग जायेगा कि तुरन्त नये स्थान में जाने के कारण उसे फिर भारी आर्थिक हानि होगी। 'यह तबादिला मेरे लिए दंडस्वरूप तो नहीं है?' बात के दौरान में वह यही प्रश्न साहब से पूछेगा। फिर कहेगा कि दंड के योग्य उसने कोई कार्य ही नहीं किया है। उसके पूर्वगामी अधिकारी जैसे भी रहे हों, वह तो निष्पक्ष और निर्भीकता से अपने इलाके में सरकारी नियमों का पालन करा रहा है तब दंड का प्रश्न ही कहाँ आता है। चूँकि इस आदेश से उसे असुविधा और आर्थिक हानि होगी, अतः यह उसके लिए दंडस्वरूप ही है, ऐसा तर्क करके वह अपने अफसर को इस आज्ञा को वापिस ले लेने के लिए विवश करेगा।

सुबह, नये सरकारी आदेश के अनुसार निर्धारित, बन्द गले का काला कोट और सफेद पतलून पहिनकर, वह साहब के बंगले पर पहुँचा। वहाँ बहुत-से उसी-जैसे अभ्यर्थी पहिले ही से उपस्थित थे। उसका उत्साह इतनी भीड़ को देखकर कुछ मन्द पड़ गया। किन्तु उसने भी कार्ड भेज दिया और अपनी बारी आने की प्रतीक्षा में मन-ही-मन अपने तर्कों को दुहराकर उन्हें अकाट्य बनाने के लिए शब्दों को चुन-चुनकर सोचने लगा कि कम-से-कम समय में अपनी पूरी बात किस प्रकार कही जा सकेगी।

बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त रामप्रसाद की बारी आ पाई। कमरे के अन्दर जाते-जाते उसका हृदय धक-धक करने लगा। उसका यह विश्वास कि वह एक उचित माँग लेकर ही आया है, इतनी प्रतीक्षा के उप-रान्त एकाएक भंग-सा हो गया, इसी लिए जो कुछ उसने कहने के लिए सोचा

था वह सब उसकी कल्पना में अस्त-व्यस्त हो गया। अभिवादन के उपरान्त जब साहब ने उसको बैठ जाने का संकेत किया तो वह 'धन्यवाद' कहते-कहते बालकों की-सी लज्जा और वैसे ही संकोच से जड़वत रह गया। कहाँ से बात आरम्भ की जाये, यह उसकी समझ में न आया। अपने सामने रखे हुए उसके कार्ड को दुबारा पढ़कर अफसर ने स्वयं ही बात आरम्भ करके कहा—अच्छा, तो तुम हो सुमन्तपुर के तहसीलदार, रामप्रसाद।

'जी हुजूर!' नाटक में अपना पाठ भूल जानेवाले पात्र को जैसे एकाएक सूत्रधार के किसी संकेत पर फिर रटी हुई वाक्यावलियाँ याद हो आती हैं वैसे ही रामप्रसाद को भी सहसा अपनी इस यात्रा का कारण स्मरण हो आया। लेकिन उसके कुछ कहने के पूर्व ही अधिकारी कह उठा—तो तुम 'चार्ज' देकर आये हो?

रामप्रसाद ने कहा—जी नहीं, अभी 'चार्ज' दिया नहीं।

अधिकारी ने झट अपनी त्योरी बदल दी और उसने अँग्रेज़ी में पूछा—दान ह्वाट ब्रिंग्स यू हियर (तब तुम यहाँ आये किस मतलब से)?

इतनी देर में मन-ही-मन पिरोये गये उन तर्कों की लड़ी इस झिड़की से फिर टूट गई और जिस पाठ को याद कर चुका था उसे वह फिर भूल गया।

'जी, जी, मैं इस समय, क्या बतलाऊँ,' रामप्रसाद हकलाता हुआ बोला, 'सर, तबादिला रुक जाये तो बड़ी कृपा होगी। मेरी पत्नी, सर!'

साहब ने अँग्रेजी में कहा—वही पुरानी कहानी। तबादिले के विषय में मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। मेरा आदेश है कि स्थानान्तर-आदेशाधीन कोई व्यक्ति मुझसे नहीं मिल सकता।

'इस समय सर....सर....' रामप्रसाद ने कहना चाहा; लेकिन उससे पहिले अधिकारी ने गरजकर कहा—तबादिले की आज्ञा का पालन करो, तुरन्त चार्ज दो, नयी जगह पर जाकर चार्ज लो, फिर जो कहना हो आकर कहना।

मन-ही-मन उसे ऐसी निराशा हुई मानो वह किसी मरणासन्न रोग से व्याकुल होकर डाक्टर के पास गया हो और डाक्टर ने उपचार करने के स्थान पर कह दिया हो, जाओ, मरकर दुबारा जन्म लेकर आओ, तब अपनी पीड़ा की बात करना।

रुआँसा होकर रामप्रसाद बोला—क्या कोई अपराध हुआ साहब, मुझसे, जो इतनी जल्दी....

उसकी अवहेलना करके आतुरता से अधिकारी ने मेज पर घंटी बजाई और चपरासी को बुला लिया; चपरासी के आने पर पास में रखा दूसरा विज़िटिंग कार्ड उठाकर कहा—इनको बुलाओ।

कुर्सी से उठते हुए रामप्रसाद ने बुझे स्वर में कहा—साहब, मैं पूछता हूँ, मुझसे क्या कोई गलती हो गई थी सुमन्तपुर में, जिससे मुझे इतनी जल्दी हटाया गया ?

'गलती ?' अफसर ने मुँह बिगाड़कर कहा, 'उस इलाके से तुम्हारे विरुद्ध प्रति सप्ताह इतनी अधिक शिकायतें आ रही हैं कि मेरा सारा दफ्तर परेशान है। हमारा सरकारी काम ही इन शिकायतों की जाँच में चौपट हुआ जाता है।'

रामप्रसाद की मुद्रा विवर्ण हो गई। शिकायत ? वह तो सुमन्तपुर में बड़ी ही कर्त्तव्यपरायणता और ईमानदारी से काम कर रहा है, और ये शिकायतें ?

खड़े-खड़े उसने कहा—साहब, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बड़ी लगन से और सच्चाई से काम कर रहा हूँ।

उस समय उसके चेहरे का कातर भाव देखकर अधिकारी को यह समझते देर न लगी कि रामप्रसाद के कथन में सत्यता अवश्य होगी। लेकिन, इससे पहिले कि अधिकारी और कुछ कहे, कमरे में दूसरा अभ्यर्थी आकर खड़ा हो गया। उसे देखते ही साहब की मुद्रा का भाव बदल गया। रामप्रसाद को सम्बोधित करके उसने कहा—देखिए, यह दर्शनलाल भी आप ही के वर्ग के तहसीलदार हैं। दर्शनलाल जहाँ भी पहुँचते हैं इनकी प्रशंसा होती है। लोग इनसे प्रसन्न रहते है। सच्चाई और कर्त्तव्यनिष्ठा अवश्य मुख्य वस्तुएँ हैं, किन्तु उनके साथ-साथ हम लोगों को लोकप्रिय भी होना चाहिए। जो सरकारी कर्मचारी जनता का प्रिय नहीं, वह जनता का सेवक नहीं। स्वतंत्र देशों में अब जनता की सत्ता है, उसी का शासन है, तो प्रजारंजन भी सरकारी नौकर का कर्त्तव्य है। जो नौकर अपने स्वामी को कुपित किये रहता है, भला उसकी नौकरी कितने दिन चलेगी ! मिस्टर रामप्रसाद, नयी जगह पर जाकर ऐसे

सँभलकर काम करो कि लोग तुमसे खुश रहें। सुमन्तपुर में तो अब तुम्हारा रहना ठीक नहीं।

रामप्रसाद ने एक उड़ती-सी दृष्टि दर्शनलाल पर डाली, फिर साहब का अभिवादन किया। बाहर आकर अपनी बहती हुई नाक को पोंछा।

उसी शाम सुमन्तपुर लौटकर वह अपने उस सरकारी क्वार्टर में बिखरी हुई वस्तुओं को मन-मारे समेटने और बाँधने में ऐसे लग गया मानो परलोक की आशा में मौत की तैयारी कर रहा हो।

वह समझ गया कि शिकायत करनेवाले उसके मातहत अमीन और पटवारी होंगे, जिनकी रिश्वतें उसके आने से बन्द हो गई हैं; और उन दो-चार गाँवों के लोग भी होंगे, जो नहर को तोड़कर बलपूर्वक अपने खेत सींच लेते थे और लग न देने में आनाकानी करते थे। लेकिन उसे कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिला। दर्शनलाल के कुर्सी पर बैठते ही उसे बाहर निकल जाना पड़ा।

*

नये स्थान में आने से पहिले उसने पत्नी और बच्चे को अपनी मा के पास गाँव भेज दिया। गाय को बेच डालने की इच्छा थी। इसी लिए जिस चपरासी ने वह गाय उसे खरीदवा दी थी उसी से उसने गाय के लिए कोई ग्राहक ढूँढ़ लाने को कहा।

'हाँ साहब, बहुत अच्छा!' कहकर वह तो चल दिया।

दिन में बिलकुल अनजान बनकर दूसरा चपरासी बोला : क्यों साहब, हिन्दू होकर गाय बेचिएगा? उसे तो अमुक ब्राह्मण चपरासी को दान में दे जाइए। बड़ी सेवा की है उसने आपकी। गोदान भी कम पुन्न नहीं। आपसे पहिले मिश्रा साहब थे, वे बेचारे अपनी भैंस मुझे दे गये। बच्चे अब तक उन्हें दुआ देते हैं।

रामप्रसाद केवल मुस्करा दिया।

गाय के लिए ग्राहक ढूँढ़ने के बहाने दो दिन अनुपस्थित रहकर पहला चपरासी तीन खरीददारों को साथ ले आया। एक तो गाय को आगे-पीछे,

ऊपर-नीचे देखकर भयभीत-सा होकर बोला--- नहीं हुजूर, हमारे काम की नहीं है। गाय के ऐसे गोल-गोल मेंढे के-से सींग बड़े अशुभ होते हैं!

दूसरा बिना कुछ कहे ही मानो चौंककर चल दिया।

तीसरे ने ऐसा मुँह बनाया मानो रामप्रसाद किसी खोटे रुपए को असली बतलाकर पूरे सोलह आने की माँग कर रहा है। बगलें झाँककर बोला---तभी तो इतनी जल्दी हुई जा रही है साहब, आपकी बदली। यह गाय ही ऐसी कुलच्छणी है। खैर, मैं बीस रुपये दे दूँगा।

रामप्रसाद चपरासियों की शैतानी समझ गया। लेकिन अब डाँट-फटकार का भी कोई असर न होता। जाते समय यह कहकर उसने गाय अपने पड़ोसी श्रीनरसिंगर को सौंप दी कि नये स्थान में गृहस्थी जम जाने पर लेता जायेगा।

*

उस नये स्थान में, जहाँ उसकी नियुक्ति हुई थी, रेल से उतरकर चालीस मील दूर मोटर और बैलगाड़ियों से जाना होता था। ये दोनों सवारियाँ भी तहसील के क्वार्टर तक केवल जाड़े के सूखे दिनों में पहुँचती थीं। गर्मियों में उड़ती हुई रेत और धूल के कारण तथा बरसात में पानी भर जाने से केवल बैलगाड़ियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था।

रामप्रसाद ने मन-मारे चुपचाप चार्ज लिया। अब उसे न कुछ काम करने का उत्साह था और न कहीं बाहर जाकर पड़ोसियों से परिचय प्राप्त करने का। अपने कागजों को उलटते-पलटते उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दर्शनलाल नामक वह तहसीलदार भी, जो उस दिन साहब के बँगले पर मिला था, दो वर्ष पहिले इस स्थान पर रह चुका है। यद्यपि उस दिन दर्शन-लाल के प्रति उसने विशेष ध्यान नहीं दिया था, किन्तु अब वह दर्शनलाल के समय के कागजों को देखकर, अपने अधीन कर्मचारियों, पड़ोसियों तथा जन-साधारण से उसके रहन सहन के विषय में जानकारी प्राप्त करेगा और उसी की भाँति लोकप्रिय बनने का प्रयत्न करेगा। ऐसा निश्चय कर लेने के उपरान्त रामप्रसाद की इस नये स्थान पर नियुक्त होने की निराशा कुछ कम हो गई। सुमन्तपुर से आया हुआ गृहस्थी का सामान, जो अब तक बँधा पड़ा था, और

बार-बार जल्दी-जल्दी होनेवाली इन बदलियों के कारण, जिसे खोलने की उसे तनिक भी इच्छा न होती थी, अब उसने खुलवाना आरम्भ कर दिया।

सरकारी कर्मचारी तो सभी तहसीलों में वही होते हैं। सफ़ाई के इन्सपेक्टर, अस्पताल के डाक्टर, पुलिस के दारोगा, सड़कों के ओवरसियर के अतिरिक्त जो दो और साथी यहाँ मिले, वे थे जंगल-विभाग के रेंजर और सरकारी हाई स्कूल के हेडमास्टर। रामप्रसाद से वे सभी आयु में बड़े निकले। सबने उसका दिल खोलकर स्वागत किया। उसकी सौम्य मुद्रा, चमकीली निष्कपट दृष्टि और बच्चों की-सी अबोध मुद्रा को देखकर दारोगा ने कहा—साहबजादे, तुम कैसे फँसे यहाँ? लगते तो तुम बड़े सीधे हो?

तब रामप्रसाद को ज्ञात हुआ कि वे सभी लोग किसी-न-किसी गर्हणा के उपरान्त उसका प्रायश्चित करने इस जंगली और दुर्गम स्थान में भेजे गये थे। कोई अपने को निर्दोष बतलाता था तो कोई अपराधी, किन्तु एक बात सब में जो समान थी वह थी अपने सरकारी कर्त्तव्य के प्रति निपट उदासीनता।

हेडमास्टर कहते थे—क्या, यहाँ इस जंगल में भी बालकों को पढ़ाना ही पड़ेगा? कभी नहीं। यही काम सरकार को यदि मुझसे लेना था तो और भी बहुत-से सरकारी हाई स्कूल नगरों में थे, वहाँ भेजा जाता। यहाँ तो मुझे शिकार खेलने, जंगलों की सैर करने, मित्रों से गपशप करने भेजा गया है।

सड़क-विभाग के ओवरसियर ताश की गड्डियों को जेब में डाले दारोगा के घर पहुँच जाते। उन्हें अपनी खिड़की से आते देख सफाई के इन्सपेक्टर पुकारते, 'अच्छा ओवरसियर साहब, ब्रिज (पुल या ताश का खेल) बनाने आ गये।' तीनों के जुट जाने पर थोड़ी देर में डाक्टर को भी बुला लिया जाता। चारों दिन-भर ब्रिज खेलते। खेल का हिसाब कभी अस्पताल की रोगियों के नुसखों-वाली पुर्जियों में लिखा जाता तो कभी ओवरसियर की नोट-बुकों में।

डाक्टर वहीं बैठे 'स्पेड' (फावड़ा या हुकुम का पत्ता) से 'हार्ट' (दिल या पान का पत्ता) पर वार करते और हार जाने पर खेल का पोस्टमार्टम (विवेचना) भी करते। सफाई के इन्सपेक्टर अपनी फर्जी डायरी भरते और दारोगा बायें हाथ से ताश फाँटते-फाँटते दायें से दूर गाँव के गश्त की कथा दर्ज कर देते।

रामप्रसाद को भी ब्रिज क्लब का सदस्य बनाया गया। बूढ़े रेंजर ने

कहा—बड़े अफसर बनने के लिए ब्रिज खेलना बहुत जरूरी है। वह था विश्वेश्वर, इस स्कूल का साधारण अध्यापक। इसी क्लब से ब्रिज सीखकर बदलकर शहर गया। बड़ा मान है वहाँ उसका। ब्रिज के लिए कभी जज साहब के यहाँ से बुलौआ आता है तो कभी मैजिस्ट्रेट के घर से। बड़े लोगों में घूमता-फिरता है, जो चाहो वह काम करा लेता है।

नये स्थान में नियुक्ति के कुछ सप्ताह उपरान्त तक तो अपनी मंडली के सभी कर्मचारियों को नठल्ले बैठे देख वह सोचता कि इस तहसील को ही तोड़ देना चाहिए। जब यहाँ करने को कुछ काम ही नहीं है तो इतने अपव्यय की क्या आवश्यकता? स्वयं अपने विषय में वह प्रश्न करता, 'मुझे आज वेतन के २४० रुपए मिले। भत्ते और मकान, नौकर आदि सुविधाओं सहित ये तीन सौ रुपए मासिक होते हैं। दस रुपए दिन। दस रुपए मज़दूरी पाने योग्य मैंने कौन-सा कठिन काम किया? क्या इस अनधिकार प्राप्ति का कभी प्रायश्चित न करना पड़ेगा?'

ताश के खेल में तन्मय अपने साथियों का कभी एक-दूसरे की तनिक-सी, ठीक समय पर ठीक पत्ते को न गिराने की, गलती पर उत्तेजित होकर बिगड़ पड़ना उसे ऐसा निरर्थक, उपहास्य और शिशु-सुलभ लगता कि वह खीझ उठता। वैसे तो उसके अनाड़ीपन के कारण कोई भी उसे अपना खेल का साथी बनाने को उत्सुक न रहता, किन्तु कभी-कभी चतुरंग के पूरा न होने पर उसे खेलना ही पड़ता। खेल की व्यर्थता से उत्पन्न खीझ और आत्मग्लानि को वह इस एकमात्र सन्तोष से शमन करने का प्रयत्न करता कि दर्शनलाल भी इस दल का सदस्य था; तथा दर्शनलाल क्या करता, कैसे रहता था, किस व्यक्ति से कैसे व्यवहार करता था, यह सब बातें वह मंडली में सम्मिलित होकर बिना अपनी ओर से प्रश्न किये ही जान लेगा। यह लाभ इस मंडली में बैठने से अवश्य होता है। दर्शनलाल के कार्य-कलाप में उसकी जिज्ञासा का कारण था इस नयी तहसील में भी लगभग उन्हीं झंझटी मामलों का अस्तित्व जिनके कारण वह सुमन्तपुर में लोकप्रिय न बन सका था। उसे अपने उच्च अधिकारी के वे शब्द स्मरण हो आते कि प्रजा की सेवा प्रजा को प्रसन्न करके ही की जानी चाहिए।

एक दिन इसी प्रकार की ब्रिज की चतुरंग में बैठा वह पुलिस के दारोगा पर उनके साथी द्वारा चिड़ी के गुलाम को ठीक समय पर न चलाने के कारण पड़ी फटकार को सुनकर मन-ही-मन खीझ रहा था, तभी चपरासी ने सूचना दी कि तहसीलदार साहब से मिलने महाशयजी आये हैं।

'महाशयजी ? बुलाओ, बुलाओ !' पूरी चौकड़ी ने एक साथ प्रसन्न होकर कहा, 'आइए, महाशय सुखलालजी।'

दारोगा ने संक्षेप में बतला दिया कि सुखलाल-जैसा भला और काम का व्यक्ति सारी तहसील में कोई दूसरा नहीं है। कोई भी काम उसके लिए असम्भव या कठिन नहीं है। सरकारी अफसरों के ऐसे परमभक्त इस जमाने में बिरले ही हैं।

धोती-कुरता धारण किये गाँधी टोपी पहिने उस व्यक्ति ने कमरे में आकर सबको प्रणाम किया। इकहरे शरीर का वह व्यक्ति बड़ा स्वस्थ और प्रसन्न दीखता था। उसकी लम्बी-लम्बी खिचड़ी मूछें दोनों होंठों को आच्छादित किये थीं। उसकी बातचीत का ढंग मधुर और व्यवहार सभ्य था।

स्कूल के हेडमास्टर ने उससे पूछा—ताल में चिड़ियाँ गिरने लगी हैं अब महाशयजी ? हम भी चलते शिकार को।

फिर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये रामप्रसाद से कहा—सुखलालजी का गाँव यहाँ से बारह मील दूर है। दर्शनलालजी के तो ये महाशयजी परम-मित्र थे। अरेठी गाँव में मछलियों और चिड़ियों का शिकार भी खूब होता है। दर्शनलालजी के साथ हम लोग कई बार गये हैं उस ओर।

आगन्तुक ने अपनी छड़ी किनारे रख दी और बेंच पर बैठते हुए कहा—दर्शनलालजी के क्या कहने ? उनकी तो बात ही निराली थी; बड़े ही सज्जन थे, हमारी ओर के गाँव के बच्चे-बच्चे उन्हें याद करते हैं।

रामप्रसाद मन-ही-मन सोच रहा था, अरेठी ? यह नाम तो परिचित-सा लगता है; इससे पहिले, मैंने इसे कहाँ सुना था ? अरे हाँ, परसों वे अर्जियाँ आई हैं, नहर के पानी की जाँच के विषय में। एस० डी० ओ० ने आज्ञा दी है कि तहसीलदार घटनास्थल पर जाकर जाँच करे। अरेठी वही तो गाँव है। इस नाम के याद आते ही रामप्रसाद कहने को उद्यत हुआ कि उस गाँव में

पानी का क्या झगड़ा है, किन्तु फिर सँभल गया कि शायद सबके सामने उस विषय में कहना ठीक न होगा।

रामप्रसाद को ध्यानावस्थित देख हेडमास्टर की ओर आकृष्ट होकर सुखलाल बोला—चिड़ियाँ तो कुछ दीख पड़ रही हैं, गाँव में गुड़ भी पकने लगा है, चलिए न किसी दिन।

रामप्रसाद ने कहा—कब चलना है, मैं भी चलूँगा। कैसे जाना होगा?

सुखलाल ने अत्यधिक प्रसन्न होकर—मैं अपना लहड़ू (बैलगाड़ी) लेता आऊँगा। उसी में चले चलिएगा।

रामप्रसाद के पास अभी घोड़ा नहीं है। कभी दारोगा का घोड़ा माँगकर बाहर जाता है, तो कभी रेंजर का या कभी किराये का एक्का मँगाकर। बैलगाड़ी की सवारी उसे तनिक भी पसन्द नहीं है। उसने कहा, 'आप कष्ट क्यों कीजिएगा? हम लोग घोड़ों पर आवेंगे।' फिर हेडमास्टर को सम्बोधित करके कहा, 'चलिए, कल खाना खाकर चला जाये।'

हेडमास्टर ने कहा—अभी चार नहीं बजा होगा, चलो, आज ही चले चलें; लौटकर मुझे कल स्कूल में तीन बजे से पहिले पहुँच भी तो जाना चाहिए।

'चलिए आज ही सही।' रामप्रसाद बोला, 'दारोगाजी, घोड़ा तो होगा? कहीं बाहर दूर तो नहीं गया?'

'नहीं भाई,' दारोगा ताश के खेल में विघ्न पड़ जाने से कुछ उद्विग्न-से होकर बोले, 'आज तो नाल बँधाने ले गया है सिपाही उसे। कल दोपहर के बाद जाइए।'

सुखलाल ने कहा—चलने का विचार हो तो हुजूर चले चलें, मैं लहड़ू तो ले आया ही हूँ। बैल भी अच्छे हैं।

'वाह-वाह!' चतुरंग ने एक साथ बैलों की प्रशंसा करके कहा, 'ऐसा बढ़िया बैल-ताँगा इस ओर कहीं देखने को न मिलेगा। तहसीलदार साहब, आपकी तबियत फड़क उठेगी, उन्हें देखकर। घंटे-भर में बारह मील का रास्ता तय हो जायेगा।'

रामप्रसाद का मन सुखलाल की बैलगाड़ी का उपयोग करने को अब भी न हुआ। वह अपने सब काम बिलकुल तटस्थ और निष्पक्ष रहने का विचार

करके अब तक करता आया है। किसी अपने समकक्ष सरकारी कर्मचारी का एहसान चाहे ले ले, किन्तु बाहरी व्यक्ति का अपने लिए तनिक भी एहसान उसे बड़ा खलता है। कुछ सोचकर सुखलाल की गाड़ी का उपयोग न करने का मन-ही-मन निश्चय करके उसने कहा—बैलगाड़ी की उस दिन की सवारी, जब मैं पहिले-पहिले यहाँ आया था, अब भी याद है। कई दिन तक पीठ दर्द करती रही। अब कल ही चलेंगे।

'कल भी घोड़ा न आया, तो?' हेडमास्टर ने कहा, 'फिर आप तो घोड़े पर जायेंगे, मेरा क्या होगा? आज सवारी आई है।'

'कल किराये का एक्का कर लेंगे।' रामप्रसाद ने दृढ़ता से कहा, 'बल्लू का वह एक्का काफी अच्छा है।'

सुखलाल ने कहा—बीच में तीन नदियाँ हैं। पानी में आपको उतरना पड़ेगा। बड़ा कष्ट होगा।

'कष्ट कुछ नहीं होगा।' रामप्रसाद ने और भी दृढ़ता से कहा, 'नदी पार करने में तो और भी आनन्द रहेगा, एक्के से ही चलेंगे, यही निश्चय रहा।'

हेडमास्टर ने कहा—मुझे तो इस जाड़े में जूते उतारकर पानी में घुसना अच्छा नहीं लगता। मैं तो बूढ़ा भी ठहरा।'

'घबराइए मत।' रामप्रसाद ने हँसकर कहा, 'मैं आपको अपनी पीठ पर ले चलूँगा।'

*

रामप्रसाद का किराये का एक्का लेकर गाँव जाना हेडमास्टर को बिलकुल ही न रुचा। इसलिए उसने साथ न दिया और दूसरे दिन रामप्रसाद ने अकेले ही अरेठी को प्रस्थान किया। उसने वहाँ जाकर देखा कि नहर की जिस दुर्घटना का वर्णन गाँववालों ने अपनी अर्जियों में किया है उसका वहाँ कोई चिन्ह भी विद्यमान नहीं। उन अर्जियों में लगभग सभी ग्रामवासियों के हस्ताक्षर और अँगूठे थे और लिखा था कि नहर के टूट जाने से, खड़ी फसल चौपट हो गई है, बालू से खेत पट गये हैं, मिट्टी बहकर गड्ढे हो गये हैं; सर-

कार को उचित क्षतिपूर्ति का प्रबन्ध करना चाहिए। किन्तु इसके विपरीत हरे-भरे खेत खूब लहलहा रहे थे।

रामप्रसाद ने पटवारी से कहा—गाँव के जिन पढ़े-लिखे लोगों ने हस्ताक्षर किये हैं उनको बुला लिया जाये, जिसमें उनसे पूछा जा सके कि ऐसी बनावटी बात उन्होंने क्यों लिखी।

पटवारी ने झट उत्तर दिया—जो आज्ञा; कल सुबह स्कूल में, जहाँ आप रात को टिकेंगे, सबको आने को कह देता हूँ। इस समय तो उनका मिलना कठिन है।

रामप्रसाद ने कहा—कोई तो मिलेगा ही। दो-चार पढ़े-लिखे जो भी मिलें उन्हीं को साथ लेते आओ।

उसी समय महाशय सुखलाल सामने आते दीख पड़े। उन्हें देख पटवारी ने कहा महाशयजी तो हुजूर, ये आ रहे हैं, इनसे पूछ लें। इन्हें सब-कुछ पता है।

पटवारी को अपने ही स्थान पर खड़े देख रामप्रसाद ने कुछ रोप से कहा—एक महाशयजी के सामने आ जाने से काम न बनेगा। जाओ और लोगों को भी बुलाओ।

पटवारी ने एक कदम आगे बढ़ाया। सुखलाल के ठीक सामने आने पर उसने आँख से इशारा किया, फिर मुस्कराकर गाँव की ओर चल दिया। रामप्रसाद सुखलाल और पटवारी का भेद-भरा वह दृष्टि-विनिमय देखकर जल-भुन गया। जब सुखलाल ने निकट आकर प्रणाम किया तो रामप्रसाद सोच रहा था कि झूठी इत्तिला देकर जाँच के लिए सरकारी कर्मचारी को बुला भेजने के अपराध में इस पटवारी और अर्जियों पर हस्ताक्षर करनेवाले सभी धूर्तों पर दण्ड विधान की धारा १८२ का मुकदमा चलाना चाहिए।

सुखलाल ने निकट आकर अभिवादन किया। रामप्रसाद ने प्रत्युत्तर में केवल सिर हिला दिया। वह सोचने लगा, यही धूर्तराज है।

सुखलाल ने और भी निकट आकर कहा—श्रीमान्‌जी, मैंने आपके लिए अपनी घोड़ी भेजी थी, लेकिन आप उससे पहिले ही चल पड़े थे।

उत्तर में रामप्रसाद ने फिर सिर हिला दिया। वह उस समय सोच रहा

था कि दर्शनलाल की इस धूर्त से कैसे पट जाती होगी।

मिष्टभाषी सुखलाल ने फिर पूछा, 'हेडमास्टर साहब नहीं आये साहब?' और अपने कन्धे पर से ऊनी चादर को उतारकर नहर की मुँडेर पर फैलाता हुआ बोला, 'हुजूर बैठ जायें। लोग आते ही होंगे।'

रामप्रसाद ने सुखलाल की ओर बिना देखे कहा—नहीं, ठीक है, मैं आराम से खड़ा हूँ।

'हुजूर मुझसे कुछ नाराज हैं क्या?' फिर सुखलाल ने बड़ी नम्रता से कहा, 'उन अर्जियों की बात मैं अभी बतलाता हूँ। सारा दोष मेरा है। मैंने यह सब कुछ कराया। जो सजा देनी हो मुझे दीजिए, गाँव के और लोग उस बारे में कुछ भी नहीं जानते।'

'कुछ भी नहीं जानते?' रामप्रसाद ने यह पूछकर पहिली बार सुखलाल की ओर घूरकर देखा और अपनी कल्पना के विपरीत उसकी मुद्रा को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया। सुखलाल की आँखों में विनय और क्षमा-याचना के साथ-साथ अनोखी कातर स्वामिभक्ति का भाव देखकर उसे अब तक अपने क्रोधपूर्ण व्यवहार के प्रति कुछ खीझ-सी उत्पन्न हुई। जिस प्रकार पालतू कुत्ता प्रेम से खिलाने के लिए रोटी का टुकड़ा थामे अपने ही स्वामी का हाथ गलती से काटकर खिसियाकर दुम हिलाने लगता है वैसे ही सुखलाल भी उस समय खिसियाकर उस ऊनी चादर को कभी बिछा रहा था और कभी समेट रहा था।

पटवारी ने जब थोड़ी देर बाद लौटकर कहा कि गाँववाले लोग इस समय कोई नहीं मिले तो रामप्रसाद ने क्रोध का प्रदर्शन न करके उस समय चुपचाप अपने डेरे पर लौट जाने का निश्चय किया और शान्ति से कहा—महाशयजी, कल आप गाँव के सब लोगों को मेरे सामने लाने में कृपया पटवारी की सहायता करें।

सुखलाल ने कहा—मैं हुजूर के साथ चलता हूँ, अभी सारा हाल समझा दूँगा। शायद उनके आने की आवश्यकता ही न रहे।

रामप्रसाद ने कहा—अच्छा, यह भी देख लिया जायेगा।

रामप्रसाद प्राइमरी स्कूल की पुरानी मेज पर लालटेन के सामने काठ की कुर्सी पर बैठा था। उसके सामने दूसरी वैसी ही कुर्सी पर सुखलाल था। ज़िला बोर्ड के सभी स्कूलों की भाँति इस स्कूल का भवन भी जीर्ण और बेमरम्मत पड़ा था। बिना पल्ले की खिड़कियों से ठंडी हवा का झोंका दीवालों पर लटके बच्चों के बनाये गये चित्रों पर टकराकर पुराने पीपल के पत्तों की-सी खड़खड़ाहट कर रहा था। कमरे में सीलन और कागज़ों की सड़न के कारण एक सौंधी-सी गन्ध आ रही थी।

सुखलाल ने कहा—हुजूर लेट जायँ, जाड़ा अधिक है। लकड़ी के तख्ते की सीटवाली कुर्सी पर आपको आराम भी न मिलेगा।

'ठीक है, मुझे जाड़ा नहीं लग रहा है,' रामप्रसाद ने कहा, 'यदि आपको ठंड लग रही हो तो कम्बल मँगा दूँ?'

'नहीं सरकार', सुखलाल ने दोनों हाथ जोड़कर नम्रता से कहा, 'मैं तो आप लोगों का सेवक हूँ।'

सेवक शब्द को सुनकर मन ही-मन इसकी मीमांसा-सी करते हुए रामप्रसाद ने फिर अपने उस निश्चय को कि उसे सुखलाल से अपने मित्र की भाँति नहीं, एक अधिकारी की तरह तटस्थता का व्यवहार करना चाहिए, दृढ़ करते हुए कहा—हाँ, तो बतलाइए महाशयजी, यह झूठी अर्जी आपने क्यों दी?

सुखलाल क्षण भर लालटेन की ओर ताकता रहा, फिर उसने रामप्रसाद की ओर देखकर कहा—मैं कौन चीज़ हूँ सरकार, मैंने जो कुछ किया वह हुजूर के इशारे पर ही किया! हुजूर के लाभ के....

'मेरे लिए? मेरे इशारे पर?' रामप्रसाद ने उसकी ओर आँखें तरेरकर कहा।

'जी,' सुखलाल शान्ति से बोला, 'आप नहीं तो आपके भाई दूसरे तहसीलदार, जो आपसे पहिले थे।'

रामप्रसाद ने कहा—वह कैसे?

सुखलाल ने अपने चेहरे पर मुस्कराहट का भाव लाकर कहा, 'क्या सरकार नहीं जानते ?' किन्तु उस मुस्कराहट को रामप्रसाद की क्रोधपूर्ण मुद्रा में कहीं भी आसरा न मिला, तब वह गिड़गिड़ाकर बोला, 'क्या सरकार सचमुच मुझसे नाराज हैं ?'

अपने जबड़े कसकर क्रोध के आवेश को यथाशक्ति रोकने का प्रयत्न करके रामप्रसाद अपने को सम्बोधित करके मन-ही-मन कहने लगा, तू क्रोध न कर, तुझे गुस्सा न आयेगा, नहीं।

रामप्रसाद को चुप देख तथा उसकी चुप्पी का दूसरा ही अर्थ लगाकर तत्काल सुखलाल ने ऊनी अलवान के अन्दर हाथ डाला और अपनी वास्कट की जेब से एक खूब फूला हुआ लिफाफा निकालकर मेज पर रख दिया।

रामप्रसाद ने उस अधफटे मैले लिफाफे को देखकर सोचा, क्या यह नहीं जानता कि मैं सिगरेट नहीं पीता, तो भी स्वयं मेरे ही सामने बीड़ी पीयेगा। जाने दो, इतना जाड़ा है, मुझे इसमें क्या आपत्ति। अपना सिर हिलाकर स्वीकृति का-सा संकेत करते हुए रामप्रसाद ने धीमे से कहा, 'हाँ, कोई हर्ज नहीं।' और फिर सुखलाल की ओर देखा।

वह अब भी हाथ जोड़े उसी की ओर देख रहा था। अब 'कोई हर्ज नहीं' शब्दों को सुनकर तनिक प्रसन्न होकर बोला—हाँ साहब, हर्ज क्या, चार सौ रुपए हैं। यही मिलता आया है। बाकी रसूक मुआवजे (क्षतिपूर्ति) के रुपए मिलने पर होता है, वह तो सरकार आप ही का होता है। दर्शनलालजी उसमें से कुछ गाँववालों को दे देते थे। गँवई-गाँव के बेचारे गरीब मनई हैं।

रुपयों की बात सुनते ही भय, क्रोध और आत्मग्लानि की भावनाओं से रामप्रसाद का सारा शरीर काँप गया।

रामप्रसाद कहना चाहता था कि वह तो उस लिफाफे को बीड़ी का बंडल समझे था और उसके 'कुछ हर्ज नहीं' कहने का तात्पर्य, उस रुपए के सम्बन्ध में नहीं, बीड़ी पीने के सम्बन्ध में था। किन्तु उस समय अपनी इस सफाई को देना भी उसके लिए सम्भव न हुआ। क्या यह सफाई एक मूर्खता को छिपाने के लिए दूसरी मूर्खता का प्रदर्शन-मात्र न होगा—इस द्विविधा और आत्म-हीनता के भाव से वह चुपचाप उस लिफाफे पर दृष्टि गड़ाये रहा, यद्यपि

गहन मनोमन्थन के कारण उसकी आँखों के स्नायु न उन नोटों को ग्रहण कर पा रहे थे और न उस लिफाफे को।

यह परिस्थिति कई क्षण तक रही। ये क्षण सुखलाल के लिए भी कम कठिन न थे। वह बाहर से आनेवाली प्रत्येक आहट को आकर्ण होकर सुन रहा था कि इस समय, जब कि नोट मेज पर रखे हैं, कोई चपरासी या मिलनेवाला अचानक न आ धमके। रामप्रसाद के गहन चिन्तन को देखकर कभी तो वह सोचता कि शायद चार सौ रुपये की धनराशि को हेय समझकर तहसीलदार साहब नहीं लेना चाहते अथवा लेने से पहिले अगली रकम भी अभी तय कर लेना चाहते हैं, या कहीं यह संकोच मेरे अपने हिस्से के रुपयों के विषय में तो नहीं है। वह एक-एक क्षण उसके लिए भारी होता जा रहा था। उस समय हवा के झोंके से दीवालों पर के कागजों के फिर ज़ोर से फड़फड़ाने के कारण सुखलाल ने बन्द किवाड़ों की ओर देखकर यह निश्चय कर लेना चाहा कि कमरे में कोई और तो नहीं आ गया! फिर वह बोला—हुज़ूर, रख लें।

इन शब्दों को सुनकर अपनी तन्द्रा से मानो जागकर रामप्रसाद ने सुखलाल की ओर देखा। वह अब भी हाथ जोड़े उसकी विनती-सी कर रहा था।

'यह रुपए हैं किस बात के?' रामप्रसाद ने बरबस अपने होठों पर हँसी लाने का प्रयत्न करके कृत्रिम स्वर में कहा, 'मैं इन्हें क्यों रख लूँ?'

सुखलाल बोला—सरकार, यहाँ दर्शनलालजी के समय से यही रसूक चला आया है। गाँववाले इसी प्रकार हाकिमों की सेवा करते आये हैं।

'यह रसूक, मुझे तो कुछ भी ज्ञात नहीं है।' रामप्रसाद ने कहा, 'ज़रा आप समझाकर बतलाइए।'

सुखलाल ने कहा—जब यह नहर बनी थी, अरेठी गाँव बसा न था। गन्ने की खेती भी यहाँ नहीं होती थी। इसलिए नहर का पानी इस गाँव को नहीं मिलता। लेकिन जब गाँववालों को अपने खेतों के लिए पानी की आवश्यकता होती है तो दर्शनलालजी ने कह रखा है कि हम नहर तोड़कर पानी ले लें और अपने-अपने खेत सींच लें। काम हो जाने पर कच्चे बाँध से टूटी नहर की मरम्मत करके सरकार के पास अर्जियाँ भेज दें कि नहर के एकाएक टूट जाने के कारण गाँव की फसल और खेतों को भारी हानि हुई है। गाँववासियों

के इस नुकसान को सरकार को भरना चाहिए। जब ऐसी अर्जियाँ आपके पास आती हैं और आप जाँच करने आते हैं तो उस समय, मैं हर काश्तकार से, जिसने अपने खेतों की सिंचाई की, दो रुपए फी बीघे के हिसाब से वसूल कर लेता हूँ। उसमें दो आना पटवारी का होता है, तीन आना अपना और बाकी हुजूर का। इस साल गाँव में तीन सौ बीघे गन्ना लगा है। ढाई सौ बीघे की सिंचाई वसूल हो गई है। उसी में से यह चार सौ हुजूर का हिस्सा है।

'अच्छा!' रामप्रसाद ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, 'उसके बाद अर्जियों की जाँच का क्या होता है?'

सुखलाल ने कहा—खेतों के नुकसान का नकशा पटवारी तैयार करते हैं। जैसी लोग सिंचाई दिये होते हैं उसी के अनुसार मुआवजे (क्षतिपूर्ति) की सिफारिश कर दी जाती है। मैंने तेरस साल भी चार सौ रुपए सिंचाई उगाही थी और मुआवजा मिला था सोलह सौ रुपये। दर्शनलालजी ने गाँव-वालों को उनकी पिछली सिंचाई का बीघे पीछे एक-एक रुपया वापिस कर दिया था और उसी से गाँव में भंडारा हुआ था। सौ रुपए उसमें खर्च हुए थे। मुआवजे की रसीदों की लिखाई और दस्तखत कराई के शायद एक आना रसीद पटवारी को दे दी गई थी। खैर, यह तो हुजूर की कलम का खेल है; और उस रुपए में, सच पूछिए तो हमारा हक ही क्या? इतनी सस्ती और ऐसे ठीक समय पर सिंचाई हो जाती है, यही क्या आप लोगों की कम कृपा है। लेकिन दर्शनलालजी की बात ही निराली थी। वे मुआवजे के रुपये में से एक-एक रुपये बीघा निश्चय ही गाँववालों को दिला देते थे।

इस वर्णन को सुनकर रामप्रसाद एक लम्बी साँस लेकर कुर्सी से उठा। अकारण ही खिड़की तक गया, फिर लौटा और फिर वापिस खिड़की तक चला गया। दो-तीन बार कुछ सोचता अकारण ही चक्कर लगाता रहा। जब वह मेज के पास लौटता तो उस लिफाफे को सुखलाल के मुँह पर पटककर कड़ी फटकार सुनाने का निश्चय करता, किन्तु मेज तक आते-आते प्रति बार उसका निश्चय बदल जाता। वह इस कृत्य के लिए दर्शनलाल को ही दोषी मानता। कमरे में सुखलाल की उपस्थिति की नितान्त अवहेलना करके भावा-वेश में इसी प्रकार कई चक्कर लगाने के उपरान्त वह अपने-आप यह सोचकर

हँस पड़ा कि अरे, दर्शनलाल की लोकप्रियता का क्या यही गुर था !

उसे अकारण हँसते और ऐसे व्यर्थ चक्कर लगाते देख सुखलाल सोचने लगा, यह भी क्या कोई अफसराना ढंग है ! तभी तो हेडमास्टर कहते थे कि यह नया तहसीलदार कुछ अजीब-सा व्यक्ति है। यहाँ आनेवाले सभी अफसरों में कुछ-न-कुछ दोष होते हैं। कोई अपने अफसर को नाराज कर लेने के कारण भेजा जाता है, कोई प्रजा-पीड़क, अपने अत्याचार की शिकायतों के कारण, कोई शराबी होने से और कोई व्यभिचारी होने के कारण। यह न शराब पीता है, न इसे स्त्रियों से मतलब है, न रुपए की अधिक हविस ही इसे दीखती है, सीधा तो यह गाय-सा है, अत्याचार क्या करेगा तब ? सम्भव है अपनी सनक और कभी-कभी पागलपन के इन झोंकों के कारण ही इसको तराई की इस ठंडी जगह में नियुक्त किया गया हो। यही हो सकता है। जंजीर में बँधे विलायती कुत्ते की भाँति इसी घेरे में चक्कर लगा रहा है !

इतना सोच लेने के उपरान्त भी सुखलाल गम्भीर भाव से पूर्ववत हाथ जोड़े खड़ा रहा। रामप्रसाद के कुर्सी से उठ जाने पर स्वयं बैठे रहने की अवज्ञा भी तो वह नहीं कर सकता था। किन्तु रामप्रसाद की आँखें तो मानो यह सब देख ही नहीं रही थीं। अपनी उस हँसी के कारण उसके मस्तिष्क की वाष्प का दबाव मानो कम हो गया और वह कुछ स्वस्थ-सा हो सोचने लगा, धन कमाने के अनेक ढंग सुने हैं। उस लहरों को गिननेवाले ने भी, रुपए पैदा करने की तरकीब निकाल ली थी, यह कहावत भी सुनी थी; किन्तु प्रजा और सरकार दोनों ओर से रुपया कमाने की यह युक्ति सबसे निराली है। चार सौ जनता से और सोलह सौ सरकार से, एक गाँव से दो हजार, बड़ा बढ़िया सौदा है। सम्भवतः गरेठी-जैसे और भी गाँव होंगे जहाँ यही रसूक होगा। 'रसूक' ? वाह, क्या ही अच्छा नाम दिया इस दुहरे भ्रष्टाचार को ! जरा सुखलाल से पूछा जाये कि यह 'रसूक' और किन-किन गाँवों में प्रचलित है ? इस विचार के आते ही रामप्रसाद मेज की ओर बढ़ा और तब पहिली बार सुखलाल को उस जाड़े में खड़े देख बोला : महाशयजी, बैठिए, आप खड़े क्यों हो गये ?

रामप्रसाद के उन शिष्ट शब्दों को सुनकर जिनमें सनक का लेश-मात्र

भी न था महाशयजी को सन्तोष हुआ कि अधिकारी को पागलपन के झोंके से शीघ्र मुक्ति मिल गई, फिर भी अपने सन्देह की शान्ति के लिए वह पूछने-वाला था, सरकार को क्या गर्मी कुछ अधिक सताती है ? किन्तु उससे पहिले रामप्रसाद पूछ बैठा—यह रसूक और किस-किस गाँव में चलता है, महाशयजी ?

महाशयजी ने अब तो प्रसन्नता से कहा—तराई का यह इलाका नया-नया आबाद हुआ है। इस ओर यह नहर ऐसे ही चालीस नये गाँवों में होकर गई है। चार-पाँच गाँवों की बात तो मैं ही जानता हूँ। चार साल पहिले हमारे गाँव में पानी की बिलकुल जरूरत नहीं पड़ी, किन्तु दर्शनलाल-जी के भाग्य से आठ मील दूर नयापुरवा के जूट के लिए पानी जरूरी हो गया। मैंने ही सारा काम करवा दिया। दर्शनलालजी ने मेरी सहायता के लिए इस गाँव के पुराने पटवारी का वहाँ तबादिला जरूर कर दिया था, जिससे मुझे भी हिसाब-किताब में कोई कठिनाई नहीं हुई। सात सौ रुपये गाँव से सिंचाई और पच्चीस सौ सरकार से मुआवजा मिला था। लोग भी दुआएँ देते थे; ऐसी सुन्दर फसल हुई थी। उसी गन्ने की बिक्री से लोग मालामाल हो गये। उनके मकान बन गये। पैसे के लिहाज से यह तहसील बुरी नहीं है, सरकार। न यहाँ कभी कलक्टर साहब आ पाते हैं, न कमिश्नर। आप ही हम लोगों के कलक्टर और कमिश्नर हैं। कहते हैं कि तहसीलदार, दारोगा सभी इस तहसील में आते समय भी रोते हैं और जाते समय भी, क्योंकि कुछ लांछना और दोष के कारण उन्हें यहाँ दंड पाने भेजा जाता है और यहाँ मिल जाती है उन्हें मुँह-माँगी लक्ष्मी, छोड़ने को जी नहीं करता। यही दर्शन-लालजी का भी हुआ। वह यहाँ से जाना ही नहीं चाहते थे।

'अच्छा !' रामप्रसाद इस बात को सुनकर फिर हँसते हुए बोला।

'हाँ साहब,' सुखलाल ने कहा, 'मैंने उनके कहने पर गाँववालों की ओर से हाकिमों के पास कई अर्जियाँ भिजवाईं। पंचायतों ने सरकार के पास मंजर-नामा भेजा कि ऐसे योग्य अफसर को हमारे इलाके से इतनी जल्दी न हटाया जाये।'

लोकप्रियता के इस गुर पर हो-हो करके रामप्रसाद अब स्पष्ट रूप से

हंस पड़ा और बोला — अच्छा तो यहाँ के लोग इतने प्रसन्न थे उनसे ?

सुखलाल ने कहा—बतलाया न साहब, उनका यह नियम था कि जब मुआवजे के रुपये सरकार से आते थे तो गाँववालों से रसीद लेते समय बीघे पाछे एक रुपया अवश्य उनको दे देते थे । जितना गुड़ डालिए उतना ही मीठा ।

रामप्रसाद को अप्रभावित देख उस फूले लिफाफे को फिर उसके आगे सरकाते हुए सुखलाल ने कहा—तो इसे रख लें सरकार ।

रुपए को देखते ही रामप्रसाद की भृकुटियाँ फिर चढ़ गईं, वह फिर गम्भीर हो गया, कुछ देर दाँत पीसकर मन-ही-मन यह रट करके कि रामप्रसाद, तू ऐसे लोभ में कभी न पड़ेगा, कभी नहीं; वह फिर शान्त स्वर में बोला—महाशय जी, मैं सच्चाई और ईमानदारी में विश्वास करता हूँ । मैं अपनी रिपोर्ट में सही-सही बात लिखूँगा कि गाँववालों को पानी की आवश्यकता पड़ गई थी इसी लिए उन्होंने नहर तोड़कर अपने खेत सींच लिये और यह कि आप लोगों से अब पानी का दाम ले लिया जाये ।

'गजब हो जायेगा हुजूर ।' सुखलाल चौंककर बोला, 'गाँववाले मर जायेंगे, मैं उनको क्या मुँह दिखलाऊँगा ! और इस रुपए का अब क्या होगा ?'

रामप्रसाद शान्ति से बोला—रुपया पानी के टैक्स की वसूली के समय गाँववालों के काम आ जायेगा ।

रुआँसा होकर सुखलाल बोला—मैं कहीं का न रह जाऊँगा हुजूर ।

रामप्रसाद को विजय के-से उल्लास से एक अभूतपूर्व आत्मविश्वास का अनुभव हुआ; वह अफसराना ढंग से बोला—अपनी बात आप जानिए । अब कल होगी आपसे बात । इस समय आप जा सकते हैं ।

फिर सुखलाल के बाहर जाने की प्रतीक्षा किये बिना ही, वह स्वयं उठकर, कमरे में उसे अकेला छोड़, पास के कमरे में, जहाँ उसकी चारपाई पड़ी थी, चला गया ।

झुँझलाकर सुखलाल ने नोट सँभाले और मन-ही-मन 'निरा पागल है, सनकी, काठ का उल्लू, निरा पागल' बड़बड़ाता हुआ कमरे से बाहर चला गया ।

रामप्रसाद अपने कपड़े उतारते समय सोचने लगा, कल सुखलाल से गाँव-वालों की ओर से नहर को तोड़ने के लिए क्षमायाचना की अर्जियाँ बनवा दूँगा। यह भी लिखवा दूँगा कि वे भविष्य में ऐसी गलती न करेंगे। इससे वे जुर्माने से बच जायेंगे। नहर के पानी का जो लगान उन्हें देना पड़ेगा वह भी नाम-मात्र का लगवा दूँगा। उन्हें ईमानदारी का पाठ सिखाकर मुझे भी आत्मिक सन्तोष होगा। महाशयजी से यह काम लेना कठिन न होगा, वह सचमुच सब-कुछ करा सकता है।

सुखलाल लिफाफे को अन्दर फतुही की खलीत में रखकर जब कमरे से बाहर निकला तो आँगन में उसे पटवारी मिल गया। शायद वह कान लगाये उन दोनों की बातों को सुन रहा था। कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। खेतों के पास आकर पटवारी ने कहा—महाशयजी, यह अफसर नया-नया आया है इसी लिए रुपये लेने से घबड़ाता है। देखिएगा, इस पर भी कुछ दिन बाद आपका रंग चढ़ जायेगा। दर्शनलाल भी तो पहिले बड़े ईमानदार बनते थे, किसी के घर पान तक न खाते थे।

'नही लाला!' सुखलाल ने कहा, 'मुझे तो कुछ और ही लगता है।'

'क्या?' पटवारी ने सशंक होकर कहा और सोचा, यदि वास्तव में यह अफसर ईमानदार निकला तो मेरी कुशल नहीं, तुरन्त हटा दिया जाऊँगा; अब तो पूरी पोल खुल ही गई।

सुखलाल ने कहा—मुझे कुछ सनकी लगता है। हेडमास्टर भी यही कहते थे।

'हाँ, हाँ,' बूढ़े पटवारी ने कहा, 'जब गाँव के लोग चुपचाप चार सौ रुपया दे रहे हैं, वह भी खुशी से, तो डर काहे का। घर आई लक्ष्मी को लौटाना सनक ही तो है।'

वास्तव में वर्षों की जी-हुजूरी के उपरान्त पटवारी की स्वयं सोचने की शक्ति लुप्त हो गई थी। उसकी बुद्धि केवल दूसरों के विचारों को ही प्रति-ध्वनित कर पाती थी।

'नहीं-नहीं, लाला!' सुखलाल ने कहा, 'तुमने देखा नहीं, अगर उसकी रीती-रीती कटहे कुत्ते की-सी नजर और वैसे ही कमरे में उसका नाचना, कभी

हँसना, कभी घुड़कना, तुम देखते तो तुम्हारा मारे हँसी के पेट फूल जाता। मुझे तो ऐसा लगता है कि इसे कुछ पागलपन का रोग समझकर ही सरकार ने इस इलाके में भेजा है कि जंगलों की ठंडी हवा से शायद इसके दिमाग की गर्मी उतर जाये। शाम को खेत पर तुम पर कैसा गरम हुआ था, याद होगा।'

'अच्छा, अब तो कोई बात नहीं।' पटवारी ने कहा 'मैं तो इसकी ईमानदारी से घबड़ा गया था। ठीक है, पागल ही सही।' फिर वह किसी से सुने हुए अपने उस प्रिय वाक्य को, जिसको वह सरकारी नौकरी का मूलमंत्र समझकर प्रायः दुहराया करता था, इस बार भी दुहराकर बोला, 'अफसर खुद करते क्या हैं? उनकी कुर्सी पर किसी को बिठला दीजिए, काम चलने लगेगा, चाहे कोई पागल हो या बुद्धिमान, उससे क्या? सरकारी काम तो हम ही छोटे लोग चलाते हैं। दस्तखत करने-भर को कोई अफसर चाहिए। और वे दस्तखत भी ऐसी जल्दी में और ऐसे खराब करेंगे कि एम० ए०, बी० ए० पास लोग भी उनके लिखे को न पढ़ पायेंगे।'

इस सारी वाक्यावली में 'मूर्ख' शब्द के स्थान पर 'पागल' का प्रयोग ही उसने अपनी ओर से किया था, इसी लिए वह प्रसन्नता से प्रत्युत्तर की आशा में सुखलाल की ओर देखने लगा। सुखलाल स्वयं चिन्तित था, उसने उस बकवास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जाते-जाते बोला—मैं अब घर जाता हूँ। लाला, तुम एक बात याद रखो कि तहसीलदार तुमसे कुछ भी कहे, तुम सिवा 'जी' और 'हाँ' के और कोई बात अपने मन से बनाकर न कहना। सुबह मेरे यहाँ पहुँचने से पहिले गाँव का कोई आदमी मिलने आये तो उसको भी यही समझा देना। नहीं तो तुम्हारी कुशल नहीं। वह किसी को मार बैठेगा। बड़े गुस्से में है।

*

अगले दिन गाँव के लोग स्कूल के अहाते में सुबह से ही एकत्र होने लगे। रामप्रसाद के नहा-धाकर तैयार होते-होते सारा आँगन ग्रामीण लोगों से भर गया। उन सबको अनायास ही जमा हुए देखकर रामप्रसाद का चित्त

प्रफुल्ल हो गया। बाहर निकलकर उनके अभिवादन का उत्तर देते हुए राम-प्रसाद ने पूछा—क्या मुआवजे की अर्जियाँ आप लोगों ने दी थीं ?

किसी ने कोई उत्तर न दिया। सभी लोग पटवारी की ओर देखने लगे और स्वयं पटवारी चिन्तित होकर फाटक की ओर देखने लगा कि यदि इस समय सुखलाल होता तो सुझा देता कि इस प्रश्न का क्या उत्तर देना ठीक होगा। किन्तु सुखलाल कहीं आता न दीख पड़ा। कुछ क्षण बीतने पर पटवारी को सुखलाल का रात को दिया उपदेश याद आ गया। गाँववालों को सम्बोधित करके उसने कहा—अरे, तुम लोग कहते क्यों नहीं, जी हाँ !

पटवारी की आज्ञानुसार सबने एक स्वर से कहा—जी हाँ !

किन्तु वे सभी ग्रामीण लोग व्याघ्र की दहाड़ सुनकर सहमे हुए पशुओं की भाँति चौकन्ने होकर सोचने लगे कि अब आगे न जाने किस विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

रामप्रसाद ने कहा—आप लोग डरिए नहीं। मैं आप लोगों को झूठी अर्जियाँ देने के अपराध में दंड देने के पक्ष में नहीं हूँ। आपने जो कुछ किया वह दूसरों के कहने पर। मुझे पूरा विश्वास है कि आपका कोई दोष नहीं। अब जो बात सही है आप उसे निस्संकोच बतलाइए। मैं आपकी पूरी-पूरी सहायता करूँगा। कह डालिए, सच बात क्या है ?

यह कहकर उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से पहले गाँववालों की ओर देखा, फिर पटवारी की ओर। पटवारी ने फिर दुहराया, 'जी हाँ' और उसी नारे को शेष गाँववालों ने दुहरा दिया, 'जी हाँ।'

'तो बतलाइए क्या बात है ?' रामप्रसाद ने प्रसन्न होकर कहा, 'डरिए नहीं।'

किन्तु शेर की दहाड़ सुनकर खूँटों में बँधे हुए पशु-तुल्य वे लोग अपनी दृष्टि में निपट विवशता ही प्रदर्शित करके चुप रहे। उनकी भयभीत मुद्राओं को देखकर रामप्रसाद ने समझा, इन निरीह गाँव के लोगों में इतना साहस कहाँ कि अपने शब्दों में अपना दोष स्वीकार कर लें। सदय होकर वह स्वयं बोला—आपने नहर तोड़कर पानी ले लिया, क्योंकि गाँव में पहिले भी दो-एक बार ऐसा ही हुआ था। यही बात है कि नहीं ?

उसी प्रश्नात्मक दृष्टि को अपने ऊपर पड़ते देखकर पटवारी ने कहा - कहो भाई, कहो, जी हाँ, सरकार !

'जी हाँ !' सबने कहा।

रामप्रसाद ने कहा -- पटवारी के कहने-सुनने पर ही आपको 'हाँ' या 'ना' करना तो ठीक नहीं लगता। न इससे मुझे सच्ची बात का पता चल सकता है, किन्तु मुझे सुखलालजी से भी सारी बात ज्ञात हो गई है। मैं चाहता हूँ, भविष्य में आपसे ऐसी गलती न हो। मैं ऐसा छल-कपट कतई पसन्द नहीं करता। यदि आपको पानी की आवश्यकता पड़ती रहती है तो सरकार को आपके गाँव के लिए नहर बनाने का प्रबन्ध करना होगा। जहाँ तक इन अर्जियों का सम्बन्ध है इस समय मैं कोशिश करूँगा कि आपको नहर तोड़कर पानी ले लेने के लिए केवल पानी का लगान देना पड़े और जुर्माना न हो। मैं कलक्टर साहब से यही सिफारिश करूँगा, लेकिन आयन्दा ऐसा होने पर जो लोग इस प्रकार नहर तोड़कर पानी लेने का प्रयत्न करेंगे और उल्टे सरकार से मुआवजा पाने के लिए अर्जियाँ भिजवाएँगे, उन पर मुकदमा चलाया जायेगा।

उसी समय किसी ने पीछे से कहा बिलकुल सही कहा श्रीमानजी ने।

बोलनेवाला व्यक्ति साफ-सुथरे कपड़े पहने एक नवयुवक था जो अभी-अभी इस मंडली में आकर सम्मिलित हुआ था, और रामप्रसाद को वह कुछ पहिचाना हुआ-सा लगा।

'आप कौन हैं ?' रामप्रसाद ने पूछा, 'क्या इसी गाँव में रहते हैं ?'

उस व्यक्ति के कुछ कहने से पूर्व पटवारी ने कहा—सरकार, यह रहा मास्टर रामशंकर का बेटा। वह बेचारा तो मर गया। इसी स्कूल में तो अध्यापक था। बाप के मरने पर पढ़ना छोड़कर लड़का आजकल आवारा हो गया है। अपने को समाजवादी कहकर गाँववालों को सरकार के विरुद्ध भड़काता है। इसकी बात हुजूर न सुनें।

उसी समय फाटक के बाहर धूल उड़ती दिखलाई दी; सुखलाल अपनी घोड़ी से उतरा। उसे देख पटवारी की उखड़ती साँस मानो लौट आई। वह बोला सरकार, वह आ गये महाशयजी, उन्हीं से पूछ लीजिए, साहब, यह छोकरा प्रेमशंकर कितना बेहूदा है।

रामप्रसाद ने व्याख्याता की भाँति कहा—जो बात सच है, वह सभी को मान्य होनी चाहिए। आप लोग चोरी से नहर तोड़कर सिंचाई कर लें, झूठे ही सरकार को दोष देकर मुआवजे का दरख्वास्तें भेजें, इस प्रकार जो रुपया सरकार से आपको मिले उसे मैं, आप सबको और सरकार को भी, धोखा देकर स्वयं ले लूँ—यह सब पाखंड मुझसे न होगा। मैंने कह दिया कि मैं स्वयं सच्चाई और ईमानदारी से काम करने का आदी हूँ और वैसी ही सच्चाई और ईमानदारी आपसे भी चाहता हूँ। यही मैं आपसे कहना चाहता था। पटवारी आप लोगों से मुआफी की अर्जी लिखवाकर कल तक मेरे पास ले आयेंगे। सुखलालजी, आप भी इस काम में गाँववालों की सहायता कीजिए।

'मुझे कुछ देर हो गई थी, सरकार।' सुखलाल ने निकट आकर रामप्रसाद का अभिवादन करते हुए कहा और पटवारी के निकट जाकर वह पूछने लगा, "क्या हुक्म हुआ है, सरकार का ?'

पटवारी के कुछ कहने से पूर्व प्रेमशंकर ने, जो अब भी जोश में था, कहा—महाशयजी, अब आपकी न चलेगी, आप सीधे-सादे गाँववालों से रुपया ठगकर अफसरों की जेबें भरते आये हैं, स्वयं भी मालामाल हो गये हैं, अब इस आदत को छोड़िए; यही हुक्म है नये तहसीलदार साहब का।

'चुप रह !' महाशयजी ने लाल-पीले होकर कहा, 'देखिए सरकार, यह लड़का सरकारी काम में ऐसी ही मुजहमत (बाधा) करता है; हुजूर, ऐसे उचक्कों का मुचलका (बन्धपत्र) हो जाना चाहिए। बाप के मरने पर इसे कोई समझानेवाला नहीं रहा।'

'समझानेवाला चाहिए आपको !' प्रेमशंकर ने क्रोधित नारी के-से पतले स्वर में कहा, 'मैं आपको समझा रहा हूँ, लेकिन आप स्वयं भी तो समझिए, रिश्वत लेना और देना क्या यही आपका काम रह गया है ?'

'अरे चुप, अरे चुप !' कहते हुए महाशयजी तथा चार-पाँच और ग्रामीण प्रेमशंकर को खींचकर बाहर धकेलने लगे। बाहर की ओर जाते-जाते भी वह बड़बड़ाता रहा।

●

रामप्रसाद ने पटवारी को बुलाकर कहा—एक्का तैयार कराओ, इस स्कूल के खुलने का समय हो गया। हमें अब चलना चाहिए।

और उस कोलाहल के मध्य रहना उचित न समझकर वह स्वयं भी कमरे के अन्दर चला गया।

पटवारी तो इसी ताक में था कि कब हाकिम जायें और यह बला टले। दो मिनट के अन्दर एक्का जुतकर आ गया। रामप्रसाद ज्योंही एक्के में चढ़ा प्रेमशंकर न जाने कहाँ से फिर उस भीड़ को चीरकर सामने आ गया और अँग्रेजी में बोला—तहसीलदार साहब, मुझे आपसे दो बातें करनी थीं, क्या मुझे पाँच मिनट का समय न देंगे?

अबकी बार पटवारी ने उसे खींचकर अलग कर दिया, और महाशयजी चिल्लाये—दुहाई सरकार की! अब तो यह आप ही पर हमलावर होना चाहता है, अब तो पकड़कर थाने भिजवा दें इसे!

रामप्रसाद ने पटवारी को रोककर एक्के से उतरते हुए कहा—छोड़ दो उनको। कहिए प्रेमशंकर, जो बात कहनी हो, सबके सामने कहिए। मैं ऐसी, गाँववालों से छिपाने योग्य, कोई बात नहीं करना चाहता।

'तब ठीक है।' प्रेमशंकर ने कहा, 'उस रुपए को, जो महाशयजी ने आपके यहाँ आने से तीन-चार दिन पहिले आपके नाम पर गाँववालों से वसूल किया है, आपने लिया तो न होगा। कहीं महाशयजी उसे स्वयं न हड़प लें, इसलिए साफ बतला जाइए, यदि ले लिया हो तो पाक-साफ बनने का ढोंग न रचिए।'

'बाँध दो इसको!' महाशयजी चिल्लाये, 'गुस्ताखी की भी हद होती है।'

रामप्रसाद ठिठककर खड़ा हो गया। उसने प्रेमशंकर को उन लोगों के हाथ से छुड़ाकर कहा—आप लोग शान्त रहिए, इस नवयुवक का कहना बिलकुल ठीक है। मैं आपको एक बात बतलाना भूल गया था। यदि आप शान्त हो जायें तो अब बतला दूँ। महाशयजी, पटवारीजी, आप सब लोग शान्त रहें।

सब के शान्त होने पर उसने व्याख्याता की भाँति सोत्साह कहा—वह रुपया जिसे आपसे वसूल किया गया है, गुलशनलालजी के पास है, उन्होंने मुझे देना चाहा था, किन्तु मैं उसे छूना पाप समझता हूँ। आप चाहें तो उनसे अभी उसे वापिस ले लें, या फिर, जब थोड़े दिनों बाद, आपसे पानी का जो महसूल वसूल किया जायेगा, उसी में उसे दे डालें। भविष्य में आपसे मेरे नाम पर किसी प्रकार का रुपया न लिया जायेगा।

'सत्यता की जय हो !' प्रेमशंकर झट हाथ ऊँचा करके चिल्लाया, 'नये तहसीलदार साहब की जय !'

किन्तु केवल एक ही और आवाज ने उस नारे का साथ दिया। वह साथ देनेवाली आवाज भी स्कूल के एक लड़के की थी, जो अब सारे गाँववालों की अपने ऊपर पड़ती हुई कुपित दृष्टि से, झट यह बोध होते ही कि प्रेमशंकर के साथ जय कहकर उसने महान गलती कर दी, लज्जित-सा हो गया।

रामप्रसाद आगे बढ़कर फिर एक्के पर चढ़ गया। एक्के के फाटक से बाहर निकलते ही प्रेमशंकर ने फिर सामने आकर रामप्रसाद की मिन्नत करते हुए अँग्रेजी में कहा—क्या मैं भी कुछ दूर आपके साथ चल सकता हूँ ? यहाँ ये लोग कहीं मुझे पिटवा न दें।

रामप्रसाद की इच्छा हुई कि वह उस भले नवयुवक को अपने साथ एक्के पर बैठने की आज्ञा दे दे, किन्तु क्षण-भर में फिर अपने आत्म-सम्मान और तटस्थ रहने की प्रवृत्ति का विचार आते ही उसने कहा—यह सम्भव नहीं; उचित भी न होगा। लेकिन मैं आपकी सुरक्षा का प्रबन्ध कर दूँगा।

एक्का रोककर पटवारी और गाँव के मुखिया को बुलाकर उसने कहा—देखो, प्रेमशंकर का बाल न बाँका हो; पहिले इन्हें इनके घर पहुँचा दो। इनकी सुरक्षा तुम्हारे जिम्मे है, आप भी समझ लें, महाशयजी।

प्रेमशंकर ने कहा—धन्यवाद !

उत्तर में रामप्रसाद केवल मुस्करा दिया।

'पागल कहीं का !' महाशयजी मन-ही-मन बड़बड़ाये।

विजय के-से उल्लास में झूमता दोपहर तक रामप्रसाद उस गाँव से लौटकर अपने क्वार्टर पहुँच गया।

मोशनलाल की लोकप्रियता का गुर ज्ञात हो जाने पर रामप्रसाद सोचने लगा कि उसकी अब तक की असफलताओं का कारण उसकी कोई अयोग्यता या दुर्बलता नहीं, किन्तु उसका भ्रष्टाचारग्रस्त गतानुगतिक समाज में एक नये सच्चाई और ईमानदारी के आदर्श का अवलम्बन करने का ही निश्चय है। वह फिर मन-ही-मन सोचने लगता कि जैसे अन्य सभी शुभ कार्यों में अनेक विघ्न-बाधाएँ होती हैं, वैसे ही इस काम में उसे आरम्भ में कठिनाइयाँ प्रतीत होंगी, किन्तु अन्त में यही मार्ग उसके लिए कल्याणकारक होगा। इन विचारों के आने पर उसने मानो अपने खोये हुए आत्मविश्वास को फिर पा लिया। अपने पड़ोसी सरकारी अफसरों के साथ अब अधिक उठने-बैठने की उसे आवश्यकता नहीं जान पड़ती थी। वह अपने को उनसे विभिन्न और उच्चतर-वर्ग का समझकर उनसे ऐसे ही तटस्थ रहने लगा जैसे पाठशाला में सबसे तेज लड़का अपने मन्द बुद्धि दुश्चरित्र सहपाठियों के बीच रहते हुए, उनसे सद्व्यवहार करता हुआ भी उनसे उदासीन रहा करता है। कभी-कभी तो वह उनकी कटूक्तियों का उत्तर अपने सदुपदेशों द्वारा देकर उन्हें मीठी झिड़की भी दे देता।

अरंठी गाँव के मामले की अर्जियों के सम्बन्ध में पूरा विवरण स्वयं ही अपने एस० डी० ओ० मिस्टर घोष को बतलाना उचित समझकर रामप्रसाद उनसे मिलने का निश्चय कर ही रहा था कि उसे ज्ञात हुआ कि बीस मील दूर चीनी के कारखाने में एस० डी० ओ० किसी काम से आ रहे हैं और एक रात वहीं रहेंगे। रामप्रसाद ने उस रात के लिए तहसील से बाहर रहने और उनसे मिलने की अनुमति मँगवा ली। जब उसने अपने पड़ोसियों को बतलाया कि वह उस अधिकारी से मिलने जा रहा है तो सबके कान खड़े हो गये। वैसे तो सभी पड़ोसी रामप्रसाद के व्यवहार से सशंक रहा करते थे। उसका जन-साधारण से मामूली उपहार तक भी ग्रहण न करना उन्हें बड़ा खलता था। यदि वह अपना मन्तव्य उनको न बतलाता तो कोई बात न होती, किन्तु अब वह

एस० डी० ओ० से पुराने तहसीलदार की शिकायत करने जा रहा है, यह जानकर रेंजर, डाक्टर, सफाई के इन्सपेक्टर—सभी को ऐसे तहसीलदार का उस तहसील में अपने मध्य रहना स्पष्टतः खतरनाक लगा। सबसे अधिक चिन्ता दारोगा को हुई। दारोगा के सभी कामों में दलाली का काम सुखलाल ही करता था। तहसीलदार के उस दिन के व्यवहार से सुखलाल की मानो कमर ही टूट गई। वह प्रेमशंकर-जैसे नवयुवकों की दृष्टि में पतित ही बनकर न रहा, किन्तु अपने समवयस्क सयाने ग्रामीण लोगों में भी उसकी धाक जाती रही। अब यदि रामप्रसाद ने सुखलाल की सारी बात अपने अफसरों को बतला दी तो दारोगा को अपने कई मामलों की भी पोल खुल जाने का भय था। वास्तव में उसने रामप्रसाद को एस० डी० ओ० के पास न पहुँचने देने के लिए रात-भर अनेक उपाय सोचे। कभी तो निश्चय किया कि इलाके में कहीं कोई ऐसा व्यापार घटित कर दिया जाये, जिसमें तहसीलदार का घटना-स्थल पर जाना अनिवार्य हो जाये और वह एस० डी० ओ० से मिल न सके। फिर सोचा कि रामप्रसाद के घर से उसके बच्चे या पत्नी की बीमारी की कोई बात गढ़कर उसे तुरन्त छुट्टी लेकर घर भागने को विवश किया जाये, अथवा स्वयं वह भी रामप्रसाद से पहिले चलकर एस० डी० ओ० के पास पहुँचकर उनको सावधान कर दे कि अरेठी गाँववाले तबाह हो गये हैं, उनके खेत चौपट हैं, वे भूखों मर रहे हैं, लेकिन रामप्रसाद अपनी नासमझी के कारण उन्हें क्षतिपूर्ति के रुपए दिलाना तो दूर रहा, उलटे उन पर मुकदमा चलाने के उपाय कर रहा है; उस इलाके में प्रजा से यदि ऐसी ही कठोरता का व्यवहार हुआ तो बलवा हो जायेगा, सरकारी व्यवस्था नष्ट हो जायेगी। फिर सोचा कि महाशयजी के कहने के अनुसार रामप्रसाद के विरुद्ध ही गाँव से ऐसी अर्जी उसी एस० डी० ओ० को दिला दी जाये कि वह निरा पागल है।

रात-भर सोचने के उपरान्त उसने निश्चय किया कि इस काम में और पड़ोसियों को भी साथ ले लेना ठीक होगा। चाय पीने के उपरान्त इसी लिए वह बारी-बारी से रामप्रसाद को छोड़कर शेष सभी पड़ोसियों के पास गया। फिर सब थाने के आँगन में बने फूस के उस वितान में बैठे। वहाँ अनेक गम्भीर समस्याओं पर सोच विचार के उपरान्त निश्चय हुआ कि राम-

प्रसाद एकाएक बीमार हो गया, इस आशय के दो तार किये जायें। एक एस० डी० ओ० को, दूसरा रामप्रसाद की पत्नी को, जिससे रामप्रसाद एस० डी० ओ० से मिलने न जाकर पत्नी को लिवाने स्टेशन को प्रस्थान करे।

रेंजर ने कहा— पत्नी के आने पर रामप्रसाद अवश्य कुछ नम्र पड़ जायेगा। जो बात इस समय हम उससे नहीं करा पाते, उसे उसकी बूढ़ी मा या नयी अनभिज्ञ पत्नी के द्वारा हमारी पत्नियाँ आसानी से करा लेंगी।

'ठीक।' दारोगा ने कहा, 'तब वह बढ़-चढ़कर बातें भी न करेगा। बच्चे और बीवी के आने पर गृहस्थी के भार से दब जाने पर उसको वश में करना कठिन न होगा।'

तार कैसे दिये जायें इस विषय में पहिले कुछ मतभेद रहा। दारोगा की राय थी कि दोनों तार रामप्रसाद को बिना कुछ बतलाये ही कर दिये जायें। ओवरसियर की राय इसके विपरीत रही। उसका कहना था कि ऐसा करने पर सारी बात अत्यधिक गम्भीरता का रूप धारण कर लेगी। इसलिए विनोद की भावना से काम किया जाये और दोनों तार रामप्रसाद के सामने किये जायें जिससे सारी मंडली इस उपहास का आनन्द भी उठाये और किसी का अनिष्ट भी न हो। साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। इस दूसरी योजना के पक्ष में ही बहुमत रहा। इसे कार्यान्वित करने का भार दारोगा को सौंपा गया।

भोजन कर लेने के उपरान्त पूर्व निश्चित योजना के अनुसार दारोगा ने रामप्रसाद के क्वार्टर में आकर पहिले इधर-उधर की बातें करके कहना आरम्भ किया—अच्छा, तो आज शाम एस० डी० ओ० से मिलने का इरादा पक्का है? जाओ, ठीक है, हमारा भी सलाम कह देना। हाँ, एक बात है। तुममें अभी लड़कपन बहुत है, उसी लड़कपन में आकर तुम कहीं अरेठी गाँव का तजकिरा (वर्णन) न कर जाना। बेचारा दर्शनलाल मारा जायेगा।

'क्यों?' रामप्रसाद ने हँसकर कहा, 'अरेठी की उन्हीं अर्जियों पर तो मुझे बातें करनी हैं।'

दारोगा बोला—ऐसी अर्जियाँ सभी महकमों में रोज पचासों आती हैं। यह कोई नयी बात नहीं है। जैसा पहिले से ऐसे मामलों में होता आया है, वही अब भी होना चाहिए। तुममें लड़कपन है, साहबजादे, निरा लड़कपन।

रामप्रसाद ने कहा—जो बात सच है वही तो कही जायेगी। मैं यह कैसे लिख सकता हूँ कि वास्तव में नहर टूट गई थी ?

दारोगा ने कहा—लिखोगे कैसे नहीं ? और न लिखोगे तो गाँववाले फँस न जायेंगे ?

'इतना झूठ ?' रामप्रसाद बोला, 'आप ही सोचिए। इस दोपहर के समय जब कि यह चमचमाती धूप बाहर खिल रही है, मैं कैसे कहूँ कि यह धूप नहीं, अँधेरा है ?'

उस समय ताश की गड्डियाँ लिये ओवरसियर भी वहीं आ पहुँचा। प्रसंग को समझकर वह भी दारोगा का साथ देकर बोला—ऐसे आदर्शवादी बनते हो तो तुमने नौकरी ही क्यों की ? साधु बन जाते। रुपया कमाने के लिए ही तो नौकरी की जाती है।

'नहीं,' दारोगा ने कहा, 'साहबजादे, मैं यह नहीं कहता कि तुम भी रिश्वत लेना शुरू कर दो। पाक-साफ रहना बहुत अच्छा है। मैं जरूर लेता हूँ, न लूँ तो मेरी तो गुजर भी नहीं हो सकती। फिर साले मुझे दे क्या रहे हैं ? मेरे साथी कई दारोगा पुलिस कप्तान बन गये। मैं बीस वर्ष से वही डेढ़ सौ रुपल्ली पा रहा हूँ, जब कि वे हजार-बारह सौ मासिक फटकार रहे हैं। तुम अभी लड़के हो। तुम्हारा खर्च भी कम है। रिश्वत की आदत न डालो तो जरूर तरक्की पा जाओगे। लेकिन रिश्वत न लो तो इसका मतलब यह नहीं कि दूसरों को काट खाओ और अपने साथियों की चुगली करो। तुम्हें अपने साथी अफ-सरों की बुराई कभी नहीं करनी चाहिए। यदि कोई बुरा है, पीता है, लेता है, तो अपना ही बुरा करता है। हमेशा याद रखो कि अपने महकमे के अपने ही कोलीग (सरकारी) की बुराई कभी अपने अफसर से मत करो। अच्छा अफसर तो खुद भी कभी ऐसी बात सुनना न चाहेगा। एक बात और है। जब तुम दूसरे लोगों से मिलो तो अपने महकमे की बुराई हरगिज़ न किया करो। जैसे अपना वंश वैसे ही अपना महकमा। सभी के पुरखाओं में कुछ अच्छे होते हैं और कुछ निहायत बुरे, किन्तु उन बुरों का वर्णन, अपने ही कुल को कलंक लगाना, क्या कभी अच्छा कहा जा सकता है ?'

ओवरसियर ने ताश की दोनों गड्डियों को मेज़ पर रखकर कहा—आज

तो तुम जा नहीं सकते, चौबीस घंटे अखंड ब्रिज चलेगा। मैं रेंजर को भी बुलाता आया हूँ।

रामप्रसाद दारोगा की बातों पर मन-ही-मन गम्भीरता से विचार कर रहा था। उसे ध्यानमग्न देख झकझोरकर ओवरसियर बोला—हम तुमसे बातें करने आते हैं तो तुम दार्शनिकों की-सी समाधि में मग्न हो जाते हो। ऐसे सोचना बन्द करो, नहीं तो पागल हो जाओगे।

पागल शब्द को सुनकर दारोगा मन-ही-मन पुलकित हुआ। उसे सुखलाल की वह बात कि रामप्रसाद को पागल घोषित करके तहसील से हटाने का प्रयत्न किया जाये, याद आ गई। किन्तु उसने गम्भीरता से कहा—एस० डी० ओ० से मिलने न जाओ तो अच्छा है। बाद में उन अर्जियों पर सोच-समझकर कोई मामूली-सी रिपोर्ट लिख देना। मेरे पास ले आना, मैं लिखवा-दूँगा। आज तुम तार कर दो कि एकाएक बीमार हो गया हूँ।

'यह कैसे हो सकता है?' रामप्रसाद ने कहा, 'बीमारी का तार दे दूँ? अर्थात् एक और झूठ गढ़ लूँ? यह तो मुझसे कदापि न होगा।

'लीजिए!' उसी समय रेंजर ने भी कमरे में आकर कहा, 'मैं तार के दो फार्म लेता आया हूँ। डाक्टर से भी कह आया हूँ, आपकी, बस, वही तरकीब ठीक है, दारोगाजी।'

'अच्छा, तो आप सब लोग पहिले ही से कोई तरकीब बनाकर आये हैं? रामप्रसाद ने ऐसे जाल में न फँसने का दृढ़ निश्चय करके आत्मविश्वास-जन्य प्रसन्नता से कहा, 'क्या षड्यंत्र है? कुछ मैं भी सुनूँ।'

गम्भीर स्वभाव के दारोगा को अपनी सुझाई तरकीब का इतनी जल्दी प्रकट हो जाना अच्छा न लगा।

'यदि मैं प्रमाणित कर दूँ' उसी समय डाक्टर ने आकर उस मंडली में सम्मिलित होते हुए कहा, 'कि आप बीमार हैं, आपका चुपचाप पलंग पर लेटे रहना अनिवार्य है, तो मेरी, एक मेडिकल अफसर की, बात कौन टाल सकता है? लाओ भाई, तार का फार्म कहाँ है?'

पहले एस० डी० ओ० को तार लिखा गया—'एकाएक भीषण पेट-दर्द के कारण रामप्रसाद आपसे मुलाकात करने में असमर्थ।—मेडिकल आफीसर।'

डाक्टर ने इस तार पर हस्ताक्षर कर दिये। ओवरसियर को आज्ञा हुई कि अस्पताल के बड़ बाबू के पास जाकर रोगियों की सूची में रामप्रसाद का नाम लिखवा दें; फिर तार पर सरकारी टिकट लगाकर स्वयं तार बाबू को दे आयें।

रामप्रसाद ने प्रबल विरोध करके कहा—यह क्या करते हो भाई ? मुझे वहाँ अवश्य जाना है।

बड़ी देर तक तर्क-वितर्क होता रहा। रामप्रसाद का तार के फार्म को हथियाने का सारा प्रयत्न निष्फल रहा। बात गम्भीर होती जा रही थी। अतः रामप्रसाद ने उन सब का अनुनय करके उनको समझाना चाहा। लेकिन उसकी एक न चली, फिर उसने स्वयं ही पोस्ट-मास्टर के पास जाकर उनसे ऐसा तार न लेने की प्रार्थना करने के लिए जाने की मन-ही-मन ठानी। जब ओवरसियर जाने को उद्यत हुआ तो रामप्रसाद ने भी अपने को छुड़ाकर डाकखाने जाना चाहा। किन्तु दारोगा ने ही एक नयी चाल चलकर कहा—एक शर्त पर हम आपको एस० डी० ओ० से मिलने जाने दे सकते हैं। वचन दीजिए कि वह शर्त आपको मान्य होगी।

रामप्रसाद ने पूछा—क्या शर्त है ?

दारोगा ने कहा—आपको एक दूसरे तार के फार्म पर हस्ताक्षर करने होंगे।

रामप्रसाद पराजित-सा सोचने लगा।

दारोगा ने फिर कहा—निश्चय ही ऐसी-वैसी कोई बात नहीं होगी। अभी तार द्वारा ही आपको अपनी पत्नी को बुलाना होगा, बस इतनी-सी बात है।

ओवरसियर ने कहा—क्यों ब्रह्मचारीजी, है यह शर्त मंजूर ?

'बस, इतनी सी बात ?' रामप्रसाद ने किसी प्रकार अपनी जान छुड़ाने के उद्देश्य से तथा यह समझकर कि सभी साथी विनोद की भावना से ही ऐसा कह रहे हैं, कहा, 'अच्छा, वह बात मुझे मान्य होगी।'

दूसरे तार का फार्म लेकर दारोगा ने कहा—इस पर दस्तखत कीजिए।

'पहिले वह तार वापिस कीजिए।' रामप्रसाद ने हँसकर कहा।

दारोगा ने कहा—आप दस्तखत कर दीजिए तो पहला तार आपको वापिस कर दिया जायेगा।

सबने फिर एक स्वर से कहा—हाँ, हाँ, यही होगा।

दारोगा के संकेत पर ओवरसियर ने पहिला तार का फार्म वापिस कर दिया। फिर सबने रामप्रसाद को दूसरे तार के फार्म पर अपने हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया। सारा आयोजन विनोद की भावना से किया गया।

रामप्रसाद के हस्ताक्षर हो जाने पर तार लिखा गया : 'तुरन्त चली आओ, परसों सुबह स्टेशन पर पहुँचो, बीमार हूँ—रामप्रसाद।' उसकी पत्नी का पता तो पहले ही उन लोगों ने ज्ञात कर रखा था। उसे तार पर लिखा गया। दारोगा ने तार को अपने ही हाथ में लेकर फाटक पर आकर अपने एक सिपाही को पुकारा और दो रुपये उसके हाथ में टिकाकर तुरन्त तार कर आने की आज्ञा दी। रामप्रसाद 'ना-ना' करता रहा किन्तु उस चतुरंग के अट्टहास में उसकी बातों पर किसी ने ध्यान न दिया।

अब रामप्रसाद के सम्मुख समस्या थी कि तीस मील दूर दक्षिण रेलवे स्टेशन की ओर जाकर पत्नी को लिवा लाये, अथवा बीस मील दूर पश्चिम चलकर अपने अफसर से मिलने जाये। उसने अन्त में निश्चय किया कि वह अपने अफसर से ही मिलने जायेगा और वहाँ पहुँचकर पत्नी को भी चुपचाप दूसरा तार कर देगा कि उसे अभी नहीं आना चाहिए।

'अच्छा हो कि तुम अब यह दूसरा तार एस० डी० ओ० को कर दो।' दारोगा ने कहा, 'लेकिन यदि जाना ही चाहो तो चिन्ता न करो। मैं अपने नायब दारोगा को लिख दूँगा। वह रेलवे स्टेशन पर तुम्हारे बच्चों के यहाँ आने के लिए बैलगाड़ी का मुकम्मिल इन्तजाम कर देंगे। दो सिपाही थाने से चले जायेंगे; फिर बहू अकेली आयेगी भी तो नहीं। उसके साथ घर से कोई सयाना आदमी जरूर ही आयेगा। तुम्हारे लौटने तक तुम्हारा क्वार्टर बसा रहेगा। हाँ, तुम दर्शनलाल का ध्यान अवश्य रखना। उस बेचारे पर आँच न आने पाये।'

*

एस० डी० ओ० चीनी के कारखाने के मालिक की अतिथिशाला में टिके थे। रामप्रसाद से बड़े तपाक से मिले। तहसील की सभी समस्याओं पर वार्त्तालाप हुआ। लगान की वसूली, सरकारी ऋण-पत्रों की बिक्री, पंचायत के मुक-

दमों की जाँच-पड़ताल और आगामी चुनाव की सूचियों की बातें हो जाने पर रामप्रसाद ने अरेठी गाँव की उन क्षतिपूर्ति की अर्जियों की बात छेड़ी।

एस० डी० ओ० ने कहा—दर्शनलाल ने कहीं कोई पुराना कागज हमें दिखलाया था कि उस सारी नहर की बुनियाद बड़ी कच्ची है। कहीं-न-कहीं उसके टूटने की प्रतिवर्ष सम्भावना बनी रहती है। हाँ, तो कितने रुपये देना चाहते हैं आप? लिख दीजिए, दे दिया जायेगा। पारसाल से अधिक है क्या?

'मैं तो बिलकुल ही नहीं देना चाहता।' रामप्रसाद ने कहा, 'नहर टूटी ही नहीं थी, उन्हीं लोगों ने स्वयं तोड़ी थी।'

'अच्छा!' कहकर एस० डी० ओ० चुप हो गये। रामप्रसाद सारा दोष गाँववालों को देता हुआ जब उस नहर की पूरी बात बतलाने लगा तो वह अधिकारी मानो अविश्वास से उसकी ओर देखता रहा। अन्त में बोला, 'तो क्या ये सब बातें दर्शनलाल को ज्ञात न थीं? आप गलती तो नहीं कर रहे हैं?'

अब तक दर्शनलाल या सुखलाल का नाम भी रामप्रसाद ने न लिया था। वह कह गया था कि गाँववाले स्वयं नहर तोड़कर सिंचाई कर लेते थे और फिर रुपये पाने के लिए अर्जियाँ भी भेज देते थे। अब एस० डी० ओ० के अपनी जाँच के प्रति इस अविश्वास का निवारण करने के लिए रामप्रसाद को कहना पड़ा कि किस प्रकार महाशय सुखलाल के कहने में आकर दर्शन-लाल एक ओर जनता से और दूसरी ओर सरकार से मिला रुपया अपने-आप आपस में बाँट लेते थे।

सुनकर अधिकारी की मुद्रा सहसा ही ऐसी गम्भीर हो गई मानो किसी गम्भीर प्रकृति के अध्यापक के समक्ष अबोध छात्र ने अज्ञानवश स्त्री-पुरुष के गुप्त सम्बन्ध की कोई बात कह डाली हो। रामप्रसाद से आगे बात करना भी उचित न समझ अधिकारी ने अँग्रेजी में कहा, 'और कोई बात?' उस स्वर में ऐसा भाव था मानो रामप्रसाद का अब उनके समीप रहना भी उचित नहीं।

रामप्रसाद को ऐसे व्यवहार की आशा न थी। वह चुपचाप बैठा सोचता रहा; फिर बोला—मैंने गाँववालों को समझा दिया है, भविष्य में वे ऐसा न करेंगे। इस समय उन्होंने सरकार से क्षमा चाही है।

अधिकारी ने अपना सिर हिलाकर केवल हुँकार भर दी।

रामप्रसाद ने कहा—मैं भी चाहता हूँ कि इस समय न तो उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाये और न उन पर जुर्माना किया जाये। मामूली-सा टैक्स, उस पानी के लिए, जिसका उन्होंने उपयोग किया है, ले लिया जाये।

अधिकारी ने कहा—अपराधियों के प्रति ऐसी नम्रता का व्यवहार करने का सरकार के पास कोई कारण नहीं।

रामप्रसाद ने कहा—मैं उन्हें वचन दे चुका हूँ।

अधिकारी ने कहा—यह आपने किस से पूछकर किया? मैं अपराधियों से ऐसा सद्व्यवहार करने के विरुद्ध हूँ। गाँव के लोगों से जितनी कठोरता की जाये उसका उतना ही अच्छा प्रभाव होता है।

रामप्रसाद कहना चाहता था कि ऐसा करने में दोनों पक्षों का हित है, गाँववाले भी प्रसन्न रहेंगे और सरकार को भी कुछ व्यय न करना पड़ेगा। व्यवस्था की दृष्टि से सरकार का अधिक हित है, क्योंकि सरकार क्षतिपूर्ति में जो हजारों रुपये व्यय करती उसके बदले में अब उलटे गाँववालों से पानी के लगान के रूप में कुछ रुपया वसूल हो जायेगा, अतः इस समय वे लोग प्रसन्नता से जो दे डालें वही बहुत है। किन्तु अधिकारी की निपट अव्यवहारिकता से उसका मन उसे ही कचोटने लगा। लखनऊ में उस दिन बड़े साहब ने ग्रामीण जनता को प्रसन्न रखने का उसे जो उपदेश दिया था ठीक उसी के विपरीत तर्क अब मिस्टर घोष, यह एस० डी० ओ०, कर रहा था। वह उससे मिलने आया ही क्यों? उन अर्जियों पर उसने जो कुछ लिख दिया था वही पर्याप्त था।

कुछ क्षण के उपरान्त अधिकारी ने उन अर्जियों को रामप्रसाद को वापिस करते हुए रुखाई से कहा—आप इन अर्जियों को अपने पास रखें। जल्दी में बिना समझे कोई रिपोर्ट न भेजें। मैं घटनास्थल पर जाँच करने स्वयं ही उस तहसील में आऊँगा।

'मैं अपनी रिपोर्ट भेज चुका हूँ।' रामप्रसाद ने अपने हाथ के कागज़ उस अधिकारी को देते हुए शीघ्रता से कहा, 'यह उसी रिपोर्ट की एक प्रति आपको दिखाने लाया हूँ।'

अधिकारी के माथे पर बल पड़ गये। उसने न तो रामप्रसाद के बढ़े हुए हाथ से उस फाइल को लिया और न उस रिपोर्ट को ही पढ़ा। कुछ देर तक उद्विग्नता से माथे पर हाथ फेरकर वह सोचता रहा और फिर बोला—अच्छा, मैं देख लूँगा, आप जा सकते हैं।

रामप्रसाद जब कमरे से बाहर निकला तो उसके मन में पराजय का सा वैराग्य व्याप्त था। सब-कुछ छोड़कर कहीं दूर एकान्त में तपस्वी का-सा जीवन व्यतीत करने की इच्छा होती थी। वह सोचने लगा, दर्शनलाल की रिश्वत लेने की बात सुनकर एकाएक उस अधिकारी के घबड़ा जाने का कारण उसकी कापुरुषता ही तो थी। अपने दैनिक व्यवहार में सभी सरकारी अधिकारी सुखी और शान्त जीवन के अभ्यासी हो गये हैं। उन्हें परम्परागत कुत्सित प्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाने का भी साहस नहीं होता। अपने उस सुख-मय जीवन में विघ्न न पड़ जाये इसी लिए अपने ही अधीन कर्मचारियों के पापाचार के प्रति बाहर की दुनिया से ये आँखें मूँद लेते हैं। ये कागज़ के कीड़, कागज पर अंकित वस्तुओं से अधिक प्रभावित होते हैं। संसार में क्या हो रहा है, जिस जनता के कर पर वे पल रहे हैं उस पर क्या बीत रही है, भ्रष्टाचार का कैसा बोलबाला है, यह सब इनके लिए महत्व का नहीं। कम-से-कम परिश्रम करके ये वेतन पा लेना चाहते हैं। जब तक कोई समस्या इनके सम्मुख लिखकर प्रस्तुत न कर दी जाये और जब तक कानून की पुस्तक या विभाग की मैनुअल इनकी आँखों के सामने रखकर इन्हें यह विश्वास न दिलाया जाये कि अमुक मामले में कार्रवाई करना इन्हीं का लिखित कर्त्तव्य है, तब तक ये अपनी प्रयासहीन गति की लीक को न छोड़ेंगे। मैंने उन अर्जियों पर सही बात लिख दी है, यही तो उनकी घबड़ाहट का कारण था। इन्हें अपनी लीक से हटकर किसी भी नयी समस्या का सामना करते बड़ा डर लगता है। ऐसे अफसरों के अधीन कल-पुर्जे की भाँति काम करना अपने विवेक को खोकर मूक पशु का-सा जीवन बिताना है। पशु भी अपने मन की न होने पर अपने अंगों की चेष्टा से, अपना विरोध प्रकट करता है, यह तो पंगु पशु का-सा जीवन है।

*

चीनी के कारखाने की दुर्गन्धमय अतिथिशाला के फाटक से निकलकर खुली सड़क की स्वच्छन्द हवा में, आम के बाग से होते हुए, रेलवे स्टेशन तक पैदल चलकर अपने मन का बोझ हलका करने की इच्छा से रामप्रसाद आगे बढ़ा ही था कि एक चपरासी ने पीछे से आकर उसका ध्यान भंग करते हुए कहा---सलाम साहब।

रामप्रसाद ने मुड़कर देखा---वह उसी एस० डी० ओ० का अर्दली था। रामप्रसाद ने उसके अभिवादन के उत्तर में किंचित् सिर हिलाकर सलाम कह दिया।

अर्दली बोला---साहब, हमारा इनाम ?

'इनाम ?' रामप्रसाद ने पूछा, 'कैसा इनाम ?'

अर्दली बोला---हुजूर, साहब से मुलाकात हो गई आपकी, उसी का इनाम माँगता हूँ।

रामप्रसाद ने कहा---मैं मिलने के लिए ही तो आया था, मिल लिया, तुम्हें इनाम किस बात का ?

'आप भी हुजूर, ऐसी बात करते हैं।' अर्दली बोला, 'हुजूर का काम बन गया, इसी लिए इनाम माँगता हूँ।'

'क्या तनख्वाह नहीं मिलती' रामप्रसाद ने कहा, 'जो इनाम माँगते फिरते हो !'

अर्दली बोला---हुजूर, यह तो दस्तूर चला आता है। आपसे पहलेवाले तहसीलदार साहब जब भी साहब से मिलने आते थे पाँच रुपये हम लोगों को इनाम दे जाते थे। उनसे पहलेवाले भी पाँच ही रुपये देते थे।

'पाँच रुपये ?' रामप्रसाद ने कहा, 'मेरे पास ऐसे फालतू रुपये नहीं हैं। सरकारी वेतन जैसा तुम्हें मिलता है वैसा ही मुझे भी।'

अर्दली कुछ पाने की आशा से साथ-साथ हो लिया। मार्ग के दूसरी ओर से एक रिक्शे को अपनी ओर ही आता देख उसे रोककर बोला---साहब, बैठ जायें, स्टेशन तो जाइएगा ?

इच्छा न होते हुए भी रामप्रसाद को रिक्शे में बैठना पड़ा। अर्दली उसके बैठ जाने पर फिर रिक्शे को थामकर रिक्शेवाले की उपस्थिति की नितान्त

अवहेलना करके बोला—साहब, हमें इनाम मिल जाये, देर हो रही है।

रामप्रसाद बोला—कह दिया, कुछ नहीं मिलेगा।

अर्दली अब भी रिक्शे को थामे रहा।

रामप्रसाद ने परेशान होकर बटुआ निकाला और एक रुपया उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—लो।

अर्दली नाक-मुँह सिकोड़कर बोला—साहब, हम तीन अर्दली हैं, चौथा है महाराज, वही साहब का रसोइया। एक रुपये से क्या होगा ? कम-से-कम चार तो देते जाइए।

रामप्रसाद ने कहा—लेना है तो लो, नहीं तो यह भी न मिलेगा। फिर रिक्शेवाले को सम्बोधित करते हुए वह बोला—चलो, रिक्शावाले, देर क्यों करते हो ?

अर्दली बोला—नहीं साहब, एक रुपया तो मैं न लूँगा, और अर्दली लोग क्या कहेंगे ? इतना कम, आप तो सरकार....

रामप्रसाद ने कहा, 'मत लो।' और वह रिक्शेवाले से फिर शीघ्र आगे बढ़ने को कहने लगा। किन्तु रिक्शावाला भी अर्दली के सहायतार्थ कुछ देर वहीं अटका-सा रहा। रामप्रसाद ने जेब से फिर बटुआ नहीं निकाला। अर्दली से पल्ला छुड़ाने के लिए वह स्वयं रिक्शे से उतरकर पैदल ही चलने को उद्यत हो गया। इस पर 'अच्छा लाइए साहब' कहते हुए अर्दली ने वह रुपया रामप्रसाद के हाथ से झटक लिया और बड़बड़ाता हुआ कारखाने की अतिथि-शाला की ओर लौट चला।

रामप्रसाद के कानों में उसके ये शब्द पड़े, 'हूँ, ऐसे भी अफसर होने लगे; ऐसे खसीस ! छः महीने बाद तो मिलने आये और उस पर भी एक रुपया टिका गये। पुराने अफसरों की तो बात ही और होती थी, ये नये कंगाल कहीं के !'

★

सदर पहुँचकर उस सप्ताह के अन्त में एस० डी० ओ० मिस्टर घोष ने जब अरेठी गाँव का दौरा करने का निश्चय किया तो अर्दली ने बिस्तर के

बंडलों और कपड़े की पेटियों के साथ-साथ काठ का एक भारी-भरकम बक्स भी कूड़ेखाने से धकेलकर दौरे पर ले जाने के लिए बरामदे में रख दिया।

सन्ध्या समय क्लब से लौटने पर अपनी बैठक के सामने उस बक्स की बड़े मनोयोग से सफाई होते देख साहब ने अर्दलियों से बिगड़कर कहा—इस बड़े पैकिंग बॉक्स को क्यों निकाला गया? इसकी दौरे पर क्या आवश्यकता?

वास्तव में काठ की वह भारी पेटी तबादिले के समय ही कूड़ेखाने से निकलती थी और उसी में घर-गृहस्थी का सारा सामान रेल पर चढ़ाने के लिए ठूँस दिया जाता था।

अर्दली ने कहा—हुजूर, वहाँ जंगली इलाके का दौरा है, खाने पीने का सामान तो घर से ही ले जाना पड़ेगा।

साहब ने और भी बिगड़कर कहा—तुम बड़े मूर्ख हो। वहाँ क्या लोग नहीं रहते? अब तक भी तो वहाँ का दौरा होता था। यह बक्स तो कभी नहीं गया। खाना क्या वहाँ मिलता नहीं है?

अर्दली ने और भी नम्र होकर कहा—सरकार, बात यह है न, कि नये तहसीलदार साहब तो बड़े कानूनी हैं; बड़े कृपण भी, पैसा तो दाँत से पकड़ते हैं। नये अफसरों से हम छोटे लोग कुछ कह भी नहीं सकते। वहाँ खाने-पीने का ठीक प्रबन्ध न हुआ तो हुजूर को तकलीफ होगी। उस दिन मैंने इनाम माँगा तो तहसीलदार साहब लाल-पीली आँखें करके बोले, क्या तुम्हारे साहब तुम्हें तनख्वाह नहीं देते!

अन्तिम शब्दों को अर्दली ने नाटक के विदूषक की भाँति ऐसे मुँह बिचकाकर कहा कि साहब का क्रोध ही वाष्पीकृत नहीं हुआ, उन्हें हँसी भी आ गई।

रामप्रसाद के सूखेपन की बात सच ही थी। चपरासियों का उस दौरे के लिए ऐसी तैयारी करके जाना अधिकारी को युक्ति-संगत ही लगा।

रामप्रसाद ने अधिकारी से मिलने से पहले ही अपनी पत्नी को न आने के लिए तार कर दिया था, अतः वह स्टेशन न जाकर सीधे अपनी तहसील को लौट गया; किन्तु जब वह दूसरे दिन अपने क्वार्टर पहुँचा तो उसने वहाँ अपनी पत्नी को पहिले ही उपस्थित पाया। उसके साथ उसकी मा और छोटे भाई भी आये थे। कमरे के अन्दर प्रवेश करते ही इन तीनों व्यक्तियों ने रामप्रसाद की ओर ऐसे देखा मानो वह युद्ध से लौटा सैनिक हो। उसकी मा डबडबाती हुई आँखों से रामप्रसाद के माथे पर हाथ फेरकर तब उसकी चिबुक को छूकर उसकी बलैया लेती हुई बोली—क्या हो गया है। मेरे लाल, तुम्हें ?

रामप्रसाद झटपट अपने को छुड़ाकर कोट को खूँटी पर टाँगकर बोला—छिः, यह क्या कर रही हो तुम ?

सचमुच उसे मा का वह दुलार अपने छोटे भाई रवीन्द्र और अपनी पत्नी के सम्मुख किंचित् भी अच्छा न लगा। कपड़े बदलते-बदलते वह सोचने लगा, मेरा वह दूसरा तार इन लोगों को निश्चय ही न मिला होगा। अन्यथा ये लोग न आते। अन्दर बच्चे की किलकारी और बाहर कमरे में मा, भाई और पत्नी की स्नेहिल दृष्टियाँ उसे आनन्दित करने लगीं। वह सोचने लगा, अच्छा हुआ ये लोग आ गये। सूना-सूना-घर अच्छा न लगता था। यह परिस्थिति भी ठीक है। फिर उसने पत्नी के निकट आकर पूछा—क्या तुम्हें मेरा वह दूसरा तार नहीं मिला ?

सुशीला बोली—मिल गया था, लेकिन आपने ऐसा क्यों किया ? हमारे आने के लिए न पहले कोई पत्र ही भेजा, न सन्देश ही। कभी किसी पत्र में अपनी बीमारी का उल्लेख भी नहीं किया कि क्या रोग था और कैसे बीमार हो गये थे। मैं पहले तार के मिलते ही घबड़ा गई थी। उस पर फिर शाम को दूसरा तार कि मत आओ !

रामप्रसाद ने मन्द-मन्द हँसते हुए कहा—ये हमारे पड़ोसी बड़े शैतान

हैं। अब तुम देखोगी कि उन सब में सबसे शैतान है—डा० भीमराज, यह उसी की शैतानी थी।

रामप्रसाद की मा पास ही खड़ी गम्भीरता से पति-पत्नी की बातें सुन रही थी। रामप्रसाद की उस हँसी में उसकी माता ने किंचित् सहयोग न दिया। उसके कानों में तो डा० भीमराज की बहू के वे शब्द अब भी गूँज रहे थे कि तहसीलदार साहब को विभ्रान्ति का-सा रोग हो गया है। अभी सुशीला को भी उसने वह बात नहीं बताई थी।

पत्नी ने उलाहने के स्वर में कहा—स्टेशन पर भी तुम नहीं आये। मैं समझी, तुम बहुत बीमार होगे। यहाँ आकर देखा, क्वार्टर खाली था। मेरे तो होश उड़ गये। कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करूँ और क्या न करूँ? किसी से कुछ पूछने का भी साहस न हुआ। चपरासी ने जब कहा कि साहब से मिलने गये हैं, तब जाकर कुछ शान्ति मिली।

उत्तर में रामप्रसाद केवल हँस दिया। इच्छा तो उसकी हुई कि ऐसी सहानुभूति की साक्षात् मूर्ति सुशीला को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर ले, किन्तु माता के समीप होने से वह ऐसा न कर सका। दूसरे कमरे में, पालने में पड़े, उस बच्चे के ऊपर अपना प्यार उड़ेलने के लिए जब वह उन किवाड़ों की ओर बढ़ा तो उसकी मा भी उसके पीछे-पीछे हो ली। बच्चा पालने में हाथ-पाँव चला रहा था। रामप्रसाद ने उसके कोमल कपोलों पर स्नेह से हाथ फेरकर उसकी ठोढ़ी को गुदगुदाते हुए कहा—क्यों महाशय, कैसा लगा आपको हमारा यह नया मकान?

शिशु-सुलभ अज्ञानता से जब बालक ने अनायास ही अपना दन्तविहीन पोपला मुँह सिकोड़कर रामप्रसाद की ओर दृष्टि फेरी तो उसके उन विकृत होठों को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हो रामप्रसाद स्वयं भी अपना मुँह बिचका-कर बोला—उँह, पसन्द नहीं आया, क्या बहुत गन्दा है?

रामप्रसाद की बूढ़ी मा अपने लड़के के इस व्यवहार को उसकी विभ्रान्ति का एक और लक्षण समझकर सहम-सी गई। अपनी उस व्याकुलता में उसने सोचा, भला, बच्चे से यह करने योग्य प्रश्न था! एक तहसीलदार होकर भी उसका बेटा ऐसी बचकानी बातें करने लगा। सचमुच उसके मस्तिष्क में कहीं

हलकापन आ गया है। झट उसके निकट पहुँच, उसे छूकर वह बोली—बेटा, नहा लो, खाना बन चुका है।

अपनी विनोदप्रियता के कारण रामप्रसाद बोला—मा, तुमने तो मुझे, उस पालने में लेटे अपने पोते से भी छोटा समझ लिया, वैसा ही दुलार कर रही हो। और वैसी ही चिन्ता भी। मैं जरा रुककर नहाऊँगा, पहले देख लूँ, कुछ डाक-आक तो नहीं है।

ऐसा कहकर रामप्रसाद कुछ गुनगुनाता हुआ-सा बाहर बैठक की ओर चला आया। मेज़ पर बैठकर दो दिन की अपनी उस अनुपस्थिति में आये हुए पत्रों को तल्लीनता से देखने लगा। उन सरकारी कागज़ों में कुछ पर पटवारियों को भेजने की आज्ञा देनी थी, कुछ थानेदार के पास भेजने थे और कुछ तहसील के नाज़िर के पास। सब को निपटाकर रामप्रसाद ने चपरासी को बुलाया और उन कागजों को उसे सौंपकर वह फिर घंटे-भर बाद जब अन्दर की ओर लौटा तो उसने देखा उसकी मा किवाड़ों पर दुबकी-सी अब तक उसी की गति-विधि का निरीक्षण कर रही थी। उसके इस व्यवहार को बूढ़ी स्त्रियों की स्वभावगत जिज्ञासा ही समझकर वह बिना कुछ कहे फिर बच्चे के पालने की ओर बढ़ गया। अब भी उसकी मा की दृष्टि उस पर से नहीं हटी थी।

अब मा के दुबारा नहाने के लिए कहने पर वह झटपट स्नानघर में घुस गया।

नहाते समय रामप्रसाद सोचने लगा, मा का प्रेम भी कैसा निष्कपट और कैसा उत्कट होता है! हम लोग बड़े होने पर अपने माता-पिता को भुला देते हैं। उनके इस वात्सल्य का हम अनुभव ही नहीं करते। मेरी मा आज मुझे एक क्षण भी आँखों से ओझल नहीं होने देती। अब मेरी समझ में आ गया, जब मैं पढ़ता था, फिर जब मैं उस तहसील में था तो मेरे पत्र न पहुँचने पर उलाहने के रूप में वह कैसी स्नेहभरी लम्बी-चौड़ी चिट्ठी लिखती थी। मैं उस चिट्ठी की हँसी उड़ाता था। सुशीला के आने पर तो मैंने उन चिट्ठियों की ओर देखना तक छोड़ दिया था। वही उनका उत्तर लिखती थी। स्वावलम्बी होने पर हम मा-बाप के प्रति कैसी उपेक्षा का व्यवहार करने लगते हैं। इस स्वार्थपरता को धिक्कार है!

सुशीला को यह नया मकान भी अपने उस पुराने मकान की भाँति पसन्द आया। इसकी बनावट भी उसी पुराने क्वार्टर-जैसी थी। अन्दर खूब खुले-से आँगन के किनारे हाथ से पानी खींचने का नल था। पिछवाड़े छोटे से साफ-सुथरे बगीचे में कटहल और आम के पेड़ पर सावन का झूला अब भी बँधा था। जाड़े के कारण मकानों में कुछ अधिक ठंडक जान पड़ती थी, किन्तु गर्मी और बरसात में यह मकान और भी अधिक सुहावना लगेगा, सुशीला यह सोचकर प्रसन्न थी। पति से दूर, गाँव का वह जीवन तो उसे बहुत ही नीरस लगता था। वहाँ मन की उमंगों और शरीर की स्फूर्ति का मानो दम घुट जाता था। इसी लिए वह गाँव से बाहर निकलने के लिए छटपटा-सी रही थी कि उस दिन पति का तार मिल गया। उनकी रुग्णावस्था में उनकी सहायता के लिए शीघ्र गाँव छोड़कर उनके समीप आने में उसके मन की ही अभिलाषा पूर्ण हुई। पति कितने बीमार हैं, न जाने कैसा रोग है, ये दुश्चिन्ताएँ जहाँ उसे मार्ग-भर व्याकुल किये रहीं, वहीं पति के जीवन के चढ़ाव-उतार के साथ उनकी विपदाओं को बँटाने, उनके लिए कुछ बलिदान करने और उनके प्रति अपने स्नेह को प्रदर्शित करने का यह अवसर उसे पुलकित करता रहा।

नये मकान में पहुँचने पर जब उसने पति को पूर्णतया स्वस्थ पाया और देखा कि घर का सारा वातावरण बहुत सुन्दर है, तो उस निश्चिन्तता में उसकी इच्छा अपनी पड़ोसिनों से शीघ्र ही मिलकर उनसे परिचय बढ़ाने की हुई। वे सभी उसे एक-से एक सुन्दर लगीं। डा० भीमराज की हँसोड़ घरवाली, सफाई के इन्सपेक्टर की ऐनक लगानेवाली दुबली-पतली खिलौने-सी सजी पत्नी, दारोगा की सलवारवाली बूढ़ी-सी थुलथुल बीबी, रेंजर की चंचल लड़कियाँ, उनकी पोपली दादी, सब एक-से-एक अच्छे स्वभाव की थीं। उसे आश्चर्य हुआ कि उसके पति ऐसे अच्छे लोगों से अधिक परिचय न बढ़ाने के लिए उसे क्यों शिक्षा दे रहे थे, जब कि वे सभी स्त्रियाँ उसका हृदय से स्वागत कर रही थीं, उसके प्रति इतनी अधिक आत्मीयता दिखला रही थीं और उसके लिए गृहस्थी की छोटी-मोटी चीजें जुटाने में सच्चे हृदय से सहायता कर रही थीं। सुशीला के मन को एक ही दिन में उनकी वेश-भूषा, उनकी शैतानियों, उनके व्यवहार और उनके बोलने-चालने के ढंग ने मोह लिया। इन पड़ोसिनों के

पुरुषों ने उपहास की भावना से ही उसके पति की बीमारी के विषय में उसे झूठा तार दिलवाकर बुला लिया था। उपहासजन्य प्रपंच की यह बात अब उसे किंचित् भी न खली। उलटे इससे सुशीला का मनोविनोद ही हुआ। निश्चय ही उसकी सास को बहू की यह नयी संगति कुछ उच्छृंखल अवश्य लगी, किन्तु इसे नये युग की साधारण बात समझकर उसने सन्तोष कर लिया। पुत्र के मस्तिष्क के यदा-कदा हलके हो जाने के रोग की बात अब भी उसके मन-ही-मन में चुभ रही थी, किन्तु इस संगति ने अपनी बातचीत में उस रोग को तनिक भी महत्व नहीं दिया, यही उसे एकमात्र सन्तोष था। उसे भी अपने लिए एक बूढ़ी साथिन मिल गई। वह थी रेंजर की मा, जिसे वे सब लोग भक्तिन कहा करते थे।

रामप्रसाद को पत्नी के आने के दूसरे ही दिन से व्यस्त हो जाना पड़ा। उस कस्बे के पास ही खटिकों के एक गाँव में तड़के प्रातःकाल को आग लग जाने की सूचना मिली। रामप्रसाद तहसील के अन्य सरकारी कर्मचारियों के साथ वहाँ पहुँच गया। खटिकों के इस गाँव के लगभग पचास मकानों में केवल दो-एक को छोड़कर सभी फूस से छाये थे। हवा के झोंकों से अलाव से उड़ी चिनगारी से एक मकान की छत ने आग पकड़ी थी। अब सारा गाँव फुँक रहा था। मकान की छतें, तेज हवा के कारण, एक के उपरान्त एक आग पकड़ रही थीं। लोग विवश थे। दोनों कच्चे कुओं में पानी उलीचते उलीचते अब लगभग समाप्त हो चुका था। इसलिए आग बुझाने के लिए गये हुए पुलिस के सिपाही और तहसील के चपरासी गाँववालों का कुछ भला करने के स्थान पर उनके खेतों से हरे चने और मटर तोड़कर उनकी और अधिक हानि ही कर रहे थे। दारोगा और रेंजर भी विवश हो जलती हुई कड़ियों को छप्पर से खींचकर उनसे अपनी ठिठुरन का निवारण कर रहे थे। रामप्रसाद के पहुँचने पर हेडमास्टर भी अपना स्काउट-दल लेकर पहुँच गये। किन्तु आग बुझाने का कोई साधन न देख वे मील-भर दूर तालाब की ओर चिड़ियों का शिकार करने का प्रस्ताव करने लगे। उधर गाँव की स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े, जिनके पास पूरे वस्त्र भी न बचे थे, पेड़ के नीचे एकत्र होकर आँसू बहा रहे थे। कुछ युवक और युवतियाँ कुएँ से कीचड़-युक्त गदले गाढ़े पानी को जलती

हुई कड़ियों पर छिड़क रही थीं। रामप्रसाद ने गाँववालों की इस दुर्दशा से अत्यधिक प्रभावित होकर ओवरसियर से कहा कि पानी का कुछ प्रबन्ध करना ही चाहिए। ओवरसियर हँस दिया और दोनों हाथ फैलाकर बोला—तालाब मील-भर दूर है और शहर तीन मील दूर, पानी आये भी तो कहाँ से ?

रामप्रसाद ने कहा—पानी का कुछ तो प्रबन्ध हो ही सकता है। आपके पास जो नया हैंड पम्प आया है उसे आप ले आयें तो काम बन जाये।

ओवरसियर ने कहा—बिना इंजीनियर की आज्ञा के मैं उसे कैसे लाऊँगा ! फिर उसे खोदकर लगाने में दिन-भर तो लग ही जायेगा।

कुछ सोचकर रामप्रसाद ने कहा—अच्छा यह बताओ कि नल के उखाड़ने में कितना समय लगेगा।

ओवरसियर बोला—उखड़ तो केवल आध घंटे में जायेगा।

रामप्रसाद ने कहा—तब मैं लौटता हूँ, अपने ही मकान का, हाथ का नल, अभी उखाड़कर ले आता हूँ। हो सके तो तुम भी उस नये नल को ले आओ। आग बुझाने के उद्देश्य से उस नल को दिन-भर के लिए इस गाँव में ले आने पर इंजीनियर भी कुछ न कहेंगे।

एक बैलगाड़ी जुतवाकर रामप्रसाद गाँव के चार आदमियों को साथ लेकर अपने क्वार्टर पर लौट आया और उसने अपना नल उखाड़ना आरम्भ कर दिया। सुशीला को जब नल के उखाड़ने का प्रयोजन ज्ञात हुआ तो उसने भी प्रसन्नता से उस पुण्य कार्य में सहयोग दिया। थोड़ी देर में नल उखड़-कर गाड़ी पर लद गया। और वे लोग फिर गाँव लौट आये। रामप्रसाद ने नल को कुएँ के अन्दर ही फिट कर दिया, जिससे वह घंटे-भर में साफ पानी देने लग गया। दोपहर तक दूसरा नल भी लगा दिया गया। अब दो-दो आदमी बारी-बारी से पानी खींचने लगे।

छतों पर से उखाड़कर नीचे गिराई हुई कड़ियों के बुझाने का प्रबन्ध तो हो गया और आग भी वश में हो गई, किन्तु जाड़े की रात-भर वे बूढ़े और बच्चे बिना पर्याप्त कपड़ों के कैसे जी सकेंगे, यह भी एक बड़ी समस्या थी।

लड़ाई के दिनों में उस कस्बे में एक छोटी-सी छावनी में गोरा पलटन की टुकड़ी तहसील के निकट ही रहती थी। उसी पलटन के लिए ये खटिक सूअरों

को पालते थे। अब सूअरों का व्यापार न चलता था और केवल खेती और मज़दूरी करके ही ये लोग पेट पालते थे। यद्यपि अब छावनी के उन क्वार्टरों में कोई सिपाही न रहते थे, किन्तु अधिकार उन पर अब भी सैनिक विभाग का था। खटिकों के चौधरी की प्रार्थना पर रामप्रसाद ने उन क्वार्टरों के चौकीदार से गाँववालों को दो-एक रात बिताने की आज्ञा दे देने के लिए कहा। किन्तु चौकीदार ने, जो एक पुराना गोरखा हवलदार था, अपनी बन्दूक तानकर कहा—कोई भी उस अहाते के अन्दर बिना कमांडिंग अफसर की आज्ञा के पाँव नहीं रख सकता। यदि किसी ने भी अनधिकार प्रवेश किया तो उसे ऐसी हिम्मत करनेवाले को गोली से उड़ा देने का हुक्म है।

वे सैनिक अधिकारी, जिनसे छावनी में खटिकों के रहने का हुक्म प्राप्त हो सकता था, तीस मील दूर शहर की बड़ी छावनी में रहते थे। रामप्रसाद ने सोचा, यदि रात तक भी शहर से हुक्म मँगा लिया जाये तो गाँववालों की रक्षा हो सकती है। किन्तु शहर तक की साठ मील आने-जाने की यात्रा करना आसान न था। जिन दो सिपाहियों को चिट्ठी लेकर जाने का हुक्म दिया गया वे छावनी के अधिकारियों से अपरिचित थे और उनसे काम बनने की आशा कम ही थी। वे इसी लिए आनाकानी कर रहे थे।

यह सब देखकर रामप्रसाद ने स्वयं ही तत्काल शहर जाने का निश्चय किया। इस निश्चय में भी बाधा पड़ने लगी। आज उसे दारोगा भी अपना घोड़ा साठ मील की यात्रा करने के लिए देने को तत्पर न थे।

रामप्रसाद ने अन्त में अपनी साइकिल पर ही शहर जाने की ठानी, और वह गाँव से बिना घर लौटे ही साइकिल पर उसी समय अकेला कच्ची सड़कों पर चल पड़ा। तीस मील साइकिल चलाकर तीन बजे छावनी के बड़े दफ्तर पहुँचकर जब वह अपना कार्ड कमांडिंग अफसर के पास भिजवाकर उनके द्वारा बुलाये जाने की प्रतीक्षा में बरामदे में कुर्सी पर बैठा तो अपने को नित्य की भाँति स्फूर्तिमय अनुभव कर रहा था। परोपकार के लिए की गई यह तीस मील की यात्रा उसे एक पिकनिक-सी आह्लादक लगी। कमांडिंग अफसर को जब यह ज्ञात हुआ कि तहसीलदार साहब गाँववालों की सहायता करने के लिए तीस मील साइकिल पर चलकर आये हैं तो उन्होंने न केवल उन क्वार्टरों में

सप्ताह-भर गाँववालों को रहने की आज्ञा दे दी, अपितु अपनी जीप गाड़ी भी उसे गाँव तक पहुँचाने के लिए भेज दी।

सूर्यास्त के समय धूलि-धूसरित रामप्रसाद जब ग्रामीण बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों की अगवानी-सा करता उन क्वार्टरों में पहुँचा तो प्रसन्नता से उसका हृदय बाँसों उछल रहा था। दिन-भर के उपवास के उपरान्त भी उसे न भूख सता रही थी न प्यास, और थकान का तो नाम भी न था। गत सप्ताह की सारी आत्मग्लानि, अपने अफसर की वह प्रतारणा, सब-कुछ अपने इस उल्लास में वह भूल गया था।

रात को सुशीला से भी उसे युद्ध से लौटे सैनिक का-सा सत्कार मिला। किन्तु पुत्र का खटिकों का वह साथ उसकी मा को किंचित् न रुचा। कल से अछूतों के द्वारा उपयोग किये हुए क्वार्टर के नल का पानी कैसे पिया जायेगा, यही उसके लिए एक बड़ी अड़चन हो रही थी। भक्तिन के साथ अब तीर्थयात्रा का प्रबन्ध हो अथवा छोटे लड़के को लेकर वापिस गाँव चल दिया जाये, यही दोनों बातें वह उस रात सोच रही थी। कल नल के वापिस आने के पहिले वह अपना निर्णय कर लेना चाहती थी। अतः खाना खा चुकने पर वह अपने कमरे की ओर जाने से पहिले रामप्रसाद के पास अटकी-सी रही।

रामप्रसाद तो आज सेवाभाव से मानो ओत-प्रोत था। सोचने लगा, बाहर खटिकों के साथ सारा दिन बिताकर आया हूँ, दो घड़ी इस बूढ़ी मा से बातें करके इसका भी मनोरंजन कर दूँ।

मा के कन्धे पर हाथ रखकर वह उसे सहारा-सा देता हुआ बरामदे की ओर बढ़ा। बरामदे के उस पार रसोई के पासवाले कमरे में मा की चारपाई लगी थी। बरामदे में आकर मा को इस आत्मीयता के प्रदर्शन से ठिठकी हुई-सी देखकर वह बोला—चलो मा, देखें तुम्हारा बिस्तर ठीक से लगा भी है या नहीं। ओढ़ना-बिछौना तो पर्याप्त है तुम्हारे पास?

अनमनी-सी हो बुढ़िया अपने कमरे की ओर बढ़ गई। मा को चारपाई पर बिठा उसे रजाई ओढ़ाकर रामप्रसाद उसी चारपाई के पैताने बैठ गया। फिर उसने गाँव की, घर की, आम की बगिया के छोटे-बड़े पेड़ों की, चाचा-ताऊ की, चाची और ताई की एक-एक करके सभी बातें पूछ लीं। बेटे की गाँव

के प्रति ऐसी जिज्ञासापूर्ण पृच्छाओं से बुढ़िया का मन भी उल्लसित हो गया। यह शंका कि बरामदे में से अभी कुछ मिनट पहिले रामप्रसाद का उसे लगभग धकेलकर इस ओर ले आना उसकी सनक का द्योतक तो न था, अब दूर हो गई।

फिर गाँव के टूटे मकान की, आयोजित मन्दिर के भवन की बात करके बुढ़िया ने धर्म-कर्म की बातें कहीं। अन्त में कहा—बेटा, तुम ठहरे कलियुगी गृहस्थ। मैं तो आई थी कि कुछ दिन तुम्हारे साथ काट लूँगी, लेकिन मन नहीं मानता। तुमसे हो सके तो भक्तिन के साथ मेरी तीर्थयात्रा का प्रबन्ध करा दो। सुना है चित्रकूट होती कोई यात्रियों की रेलगाड़ी गंगासागर तक जा रही है।

सहज स्नेह से रामप्रसाद ने कहा—क्यों मा, तुम इतनी जल्दी हमें अकेले छोड़ जाओगी? मुन्ना तुम्हारे बिना कैसे रहेगा? जाड़े के बाद जाना।

बुढ़िया ने फिर इधर-उधर की बातें कहकर बतलाया कि अब इस घर में, इस बुढ़ापे में, खटिकों के छुए उस नल का पानी पीने को उसका मन ही नहीं मानता।

नल की बात सुनकर रामप्रसाद 'हो-हो' करके इतनी जोर से हँस पड़ा कि बुढ़िया पुत्र की ओर विस्फारित नेत्रों से देखती रह गई।

उस प्रचंड अट्टहास से मकान की छत तक गूँज गई। कुछ देर बाद स्वस्थ हो रामप्रसाद अपने हँसी के आँसू पोंछकर बोला—मा, तुम्हारे लिए कुएँ का जल आ जायेगा। इसकी चिन्ता न करो।

दो दिन से रामप्रसाद का सिर भारी था। अंग-अंग टूट रहा था, किन्तु उसका रोज का कार्यक्रम चलता रहा। वह नित्य की भाँति पाँच बजे पलंग छोड़कर शौचादि से निवृत होता, फिर टहलने निकलता। लौटकर थोड़ी देर बगीचे में काम करके पसीना आ जाने पर नहाने चला जाता। आज ठंडे जल से नहाने में उसे जाड़ा-सा लगा। नहाकर नित्य की भाँति उसने अपनी उस

प्रार्थना को आँख मूँदकर दुहराया। इस प्रार्थना में न कोई श्लोक था न गीत, न किसी महात्मा या गुरु का दिया मंत्र था। यह किसी देवी या देवता की स्तुति नहीं थी। वह उसी की बनाई कुछ इस प्रकार की प्रार्थना थी : 'मेरे विधाता, मिट्टी के इस शरीर में चेतना फूँककर फिर इसे मिट्टी में मिलाना ही तो तेरा उद्देश्य न रहा होगा। जिस उद्देश्य से मुझे यह देह मिली, मेरे लिए वह चाहे नित्य अज्ञात रहे, किन्तु तू मुझे मेरे उस मार्ग पर प्रेरित करता रहेगा, इसका मुझे विश्वास है। गत चौबीस घंटों में मैंने ये काम किये। क्या ये ठीक थे?'

इतना मन-ही-मन कह वह विगत दिन के कार्यों का विश्लेषण-सा करता। कभी इस क्रिया में उसको कल से बहुत पीछे अपना सारा अतीत सामने दीख जाता, फिर वह वर्तमान पर आता; सोचता, आज मुझे क्या करना है? भूतकाल पर वह झुँझलाता, वर्तमान में भी उसका मन छटपटाता। वह सोचता, क्या मैं अपने वेतन के अनुपात में कार्य कर रहा हूँ? मेरे ही निकट रहनेवाले इन गाँवों के लाखों व्यक्ति अन्न, जल, वस्त्र के अभाव से ग्रस्त हैं। रात-दिन काम करते हैं, फिर भी भरपेट भोजन नहीं जुटा सकते। कोई ऐसे भी हैं जिनके पास आजीविका के साधन ही नहीं हैं। कुछ बीमार हैं, कुछ अशक्त। सारी व्यवस्था बेईमानी, छल-प्रपंच, निर्लज्ज स्वार्थपरता पर निर्भर है। हम लोग जन-सेवक कहलाते हैं और हमारा कार्य हो गया है जनता को लूटना। उनसे उचित या अनुचित रीति से अधिक-से-अधिक धन कमाना। परम्परागत यह व्यवस्था क्या न बदलेगी? मेरे रचयिता, मेरा विश्वास है, निश्चय ही इस व्यवस्था का मुझे एक कल-पुर्जा-सा बनाना ही तेरा उद्देश्य न रहा होगा। तब जो मेरे करने योग्य है उसी में मुझे प्रेरित कर।

बीते हुए दिन के कार्यों से रँगी हुई ये भावनाएँ उसके हृदय में नित नये रूप में आतीं। पाँच मिनट से भी कम समय में मन का यह व्यापार समाप्त हो जाता। गम्भीरता का आवरण मुद्रा से उतर जाता और फिर वह पत्नी के होने पर उसके साथ, और उसके न होने पर अकेले ही चाय पीने बैठ जाता।

आज बैठक में चाय पीते समय उसे पीड़ा-सी अनुभव हुई। सम्भवतः गले में तीन दिन पहिले की धूल से कुछ खराश हो आई हो। शाम तक ठीक हो

जायेगी, यह सोचकर वह चाय पीता रहा; किन्तु चाय का स्वाद भी उसे फीका-फीका-सा लगा।

उस रात रामप्रसाद को तेज ज्वर हो आया। रात-भर वह छटपटाता रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ज्वर कुछ हलका-सा लगा। पत्नी के कहने पर उसने डाक्टर भीमराज को बुलाया। थर्मामीटर लगाने पर तापमान सौ निकला।

डाक्टर ने कहा—कुछ सरदी का प्रभाव है। बिस्तर पर लेटे रहिए। दवा भेजता हूँ। शाम तक आप ठीक हो जायेंगे।

ज्वर के आ जाने से रामप्रसाद मन-ही-मन सोचने लगा कि बीमारी का बहाना करके पत्नी को बुलाने का ही यह मूल्य सम्भवतः मुझे चुकाना पड़ रहा है। विधाता के साथ कभी धोखा नहीं चल सकता! जब वह ऋण चुक जायेगा तो ज्वर अपने-आप उतर आयेगा। ऐसे ज्वर में भी थोड़ा-बहुत सरकारी काम करते रहना चाहिए। जो कर्त्तव्य है उसकी अवहेलना न होनी चाहिए। दो दिन तक बिस्तर पर लेटे-लेटे वह डाक देखता, उन पर यथोचित आदेश देता तथा तहसील के कर्मचारियों को बुलाकर उनके कागजों और रजिस्टरों को नित्य की भाँति निबटाता रहा।

उस दिन समाचार मिला कि एस० डी० ओ० घोष साहब अरेठी गाँव में पहुँच गये हैं। यह अनोखी बात थी। रामप्रसाद नित्य अपने हाथ से डाक खोलकर सरकारी आदेशों को स्वयं देखता था। उनमें एस० डी० ओ० के दौरे का प्रोग्राम आया ही न था। गाँव में अधिकारियों के रहने का प्रबन्ध तो तहसील के कर्मचारियों का काम होता था; लकड़ी, कोयले तथा घी दूध की व्यवस्था भी वही लोग करते थे। डाक-बँगले में स्थान न होने पर तम्बू लगाने के लिए खलासी भी तहसील से ही भेजे जाते थे। इस बार ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। रामप्रसाद को एस० डी० ओ० ने अपने कार्यक्रम की सूचना तक न भेजी। न उसे अब तक बुलाया ही गया। उसे स्वयं गाँव तक उनसे मिलने, बिना उनके बुलाये जाना भी चाहिए या नहीं, इसी विषय पर वह देर तक सोचता रहा। अन्त में उसने निर्णय किया कि उस-जैसे एक अधीनस्थ कर्मचारी को अपने मान-अपमान से क्या प्रयोजन। फिर सोचा, हो सकता है किसी त्रुटि के कारण घोष साहब का भेजा पत्र मुझे न मिला हो।

घोष साहब बुरे नहीं हैं। सब उनकी प्रशंसा करते हैं। अब जब मुझे उनका आना ज्ञात हो गया है तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं तुरन्त ही उनसे मिलूँ।

सुशीला को बुलाकर उसने झटपट दलिया बनाने को कहा और चपरासी से भी घंटे-भर बाद इक्का ले आने के लिए कह दिया।

सुशीला ने कहा—आज न जाइए, आज ही तो ज्वर उतरा है, कल चले जाइएगा।

रामप्रसाद ने हँसते हुए कहा—रोग का बहाना करके मैंने तुमको बुलाया था। उसका प्रतिकार तो कर लिया। अब डरने की बात नहीं। अब काम में लग जाना चाहिए। यह भी हो सकता है कि मेरी बीमारी की बात सुनकर, मुझे व्यर्थ कष्ट न देने के लिए ही, घोष साहब ने मुझे अपने आने की सूचना न दी हो।

दो चपरासियों को शीघ्र अरेठी पहुँचने की आज्ञा देकर स्वयं भी रामप्रसाद अरेठी के लिए चल पड़ा। आधे मार्ग में उस नाले को पार करने के उपरान्त उसे एस० डी० ओ० का सन्देशवाहक भी मिल गया जो उसे ही बुलाने जा रहा था।

★

डाक-बँगले में पहुँचते ही उसने अपने आने की सूचना कर दी। घोष साहब उस समय खाना खा चुके थे, किन्तु उन्होंने रामप्रसाद को देर तक न बुलाया। बरामदे की धूप में बैठे-बैठे रामप्रसाद का जी मचलाने-सा लगा। प्यास के कारण उसने पीने को पानी मँगाया। वही अर्दली जिसे उसने उस दिन केवल एक रुपया दिया था, 'अभी मँगाता हूँ पानी, हुजूर' कहकर चला गया और बड़ी देर में खाली हाथ उसके पास से गुजरकर बोला, 'यहाँ न कोई बरतन मलनेवाला है, न सामान ला देनेवाला। कोई आदमी भी, साहब कह रहे थे, तहसील से पूछने तक नहीं आया। पटवारी भी वैसा ही भोंदू है।'

सुनकर रामप्रसाद को क्रोध आ गया। बिना किसी सूचना के कोई व्यक्ति आ कैसे जाता; किन्तु अपने क्रोध को शान्त करके वह कुछ न बोला।

दो घंटे के उपरान्त भी जब उसे न बुलाया गया तो उसे शंका होने लगी

कि शायद चपरासी ने उसके आने की सूचना ही उन्हें न दी हो। वह कुर्सी से उठकर बरामदे में टहलने लगा कि यदि एस० डी० ओ० अन्दर बैठे दीख पड़ें तो स्वयं ही आज्ञा माँगकर अन्दर चला जाये।

कोने के कमरे में चिक के अन्दर उसने देखा कि घोष साहब दो और व्यक्तियों के साथ तल्लीनता से बात कर रहे हैं। वह सोचकर कि वे अभी व्यस्त हैं रामप्रसाद बरामदे से उतरकर पीछे की ओर पटवारी या किसी और व्यक्ति को ढूँढ़ने निकला, जिसके द्वारा पानी मँगाकर वह अपनी प्यास शान्त कर सके। वह कुछ ही दूर चला था कि चपरासी ने पीछे से पुकारा— साहब ने सलाम दिया है, आपको।

रामप्रसाद लौट गया। कमरे के अन्दर प्रवेश करते ही उसने जिन दो व्यक्तियों को अन्दर से निकलते देखा वे थे दर्शनलाल, पुराना तहसीलदार और सुखलाल, उस गाँव के प्रसिद्ध महाशयजी।

नित्य की भाँति मिस्टर घोष उससे बड़े तपाक से मिले। उन्होंने उठकर हाथ मिलाया और रामप्रसाद से कुशल-क्षेम पूछने के उपरान्त अपने सिगार का एक सिरा मेज़ पर ठोंका। उसकी दूसरी नोक को दाँत से काटा, फिर शान्ति से अँग्रेजी में कहना आरम्भ किया—बुरी बात है यह, तहसीलदार साहब, इन छोकरों के कहने में आकर उलटी-सीधी बातें सरकारी कागज़ों पर बिना समझे-बूझे लिख देना अच्छा नहीं है।

'क्षमा करें, मैं समझा नहीं, सर!' रामप्रसाद ने कहा, 'आपका तात्पर्य किस बात से है?'

अब अधिकारी ने आँखें तरेरकर कहा—अब आप इतने भोले बनने का बहाना न कीजिए। मैं मूर्ख नहीं हूँ। मुझे आश्चर्य होता है कि इस बुढ़ापे में भी कल के लड़के, जिन्हें सरकारी नौकरी करते दो-चार वर्ष बीते हैं, हमको मूर्ख बनाते हैं।

रामप्रसाद ने फीकी हँसी हँसकर कहा—मैं तो ऐसी धृष्टता करने की बात तक नहीं सोच सकता।

अधिकारी सिगार के दो कश लगाकर मुँह टेढ़ा करके धुआँ उड़ाकर बोला—गाँववालों को उनके टूटे खेतों के लिए सरकार की ओर से दिये

जानेवाले हरजाने के उन रुपयों से वंचित रखना कहाँ तक ठीक था, यह तो मुझे बतलाइए। आपकी उस बात का तो यहाँ कोई समर्थन नहीं करता कि गाँववालों ने स्वयं नहर को तोड़कर सिंचाई कर ली थी और सरकार से हर-जाना पाने के लिए झूठमूठ अर्जियाँ दे दी थीं।

रामप्रसाद सुनकर हक्का-बक्का रह गया। भावावेश में हकलाकर बोला --वह तो सब को ज्ञात है, सभी कहने को तत्पर होंगे, सुखलालजी से ही पूछिए।

अधिकारी ने सिर नचाते हुए कहा—मैंने सुखलाल से पूछ लिया; वही तो आपकी बात का सब से प्रबल प्रतिवाद करता है। मैंने गाँववालों से भी पूछ लिया है। मैं गुप्त रूप से आया ही उसी जाँच के लिए था। केवल उस सनकी छोकरे प्रेमशंकर के और कोई भी तो आपकी उस बात का समर्थन नहीं करता। उस छोकरे का क्या विश्वास ?

रामप्रसाद की अनोखी दशा थी। आत्म-विवशताजन्य आवेश से उसका शरीर तिलमिला रहा था। जो सच बात थी उसे प्रमाणित करने में वह असमर्थ था। सच बात को कहने का यह अनोखा दंड अब उसे मिल रहा था। नख-शिख प्रकम्पित होकर वह बोला—साहब, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। इस गाँव में ऐसा होता ही आया है, इसके अनेक प्रमाण आपको दे सकता हूँ।

उसकी अत्यधिक व्यग्रता और सच्चे हृदय की इस अभिव्यक्ति से प्रभा-वित होकर मि० घोष ने कहा—मैं व्यर्थ के झंझट में नहीं पड़ता। न मैं किसी की चुगली या शिकायत सुनना चाहता हूँ। किसी का बुरा करने के लिए मेरी कभी प्रवृत्ति नहीं हुई। चाहे तुम हो या तुम्हारे भाई, किसी को, अपनी पच्चीस वर्ष की नौकरी में मैंने कभी परेशान नहीं किया। न कर सकता हूँ। अतः जो काम सुगमता से निकल जाये उसमें गहरे पैठकर झंझटों में फँसना कभी ठीक नहीं होता।

दर्शनलाल की शिकायत करने से शायद मिस्टर घोष कुपित हैं यह सोच-कर रामप्रसाद ने कहा—यह ठीक है साहब, मैं भी यही चाहता था, किन्तु उस दिन आपके द्वारा पूछे जाने पर ही मुझे दर्शनलाल का नाम लेना पड़ा था अन्यथा तो....

घोष ने कहा—फिर वही बात, आप मुझसे यह क्यों कहलाना चाहते हैं कि आप किसी और अधिकारी से कम बेईमान नहीं हैं। मुझे खटिकों के उस गाँव की बात ज्ञात है। विपद्ग्रस्त उन बेचारों से आपने सरकारी क्वार्टरों के किराये के नाम पर जो रुपया वसूल किया है, उसके विषय में बतलाइए, आपको क्या कहना है ?

'रुपया ! खटिकों से !' रामप्रसाद ने साश्चर्य कहा, 'मैंने तो एक पाई वसूल नहीं की। वे क्वार्टर तो उन्हें मुफ्त ही दिये गये हैं। किराये का प्रश्न ही नहीं उठता।'

'हुँ !' कहकर मिस्टर घोष ने सिर हिलाया और एक कागज को रामप्रसाद की ओर बढ़ाकर कहा, 'यह देखिए, यह क्या सब झूठ लिखा है ?'

वह खटिकों की दी हुई अर्जी थी। लिखा था कि तहसीलदार साहब के द्वारा उन क्वार्टरों का दो सौ रुपये किराया वसूल कर लिया गया। वे पचास और माँगते हैं। दो नल, जो दिन-भर गाँव में लगे थे उनके लिए सौ रुपये अलग माँगे जा रहे हैं; आदि।

रामप्रसाद ने कहा—यह बिलकुल झूठी बात है; इसमें क्या रहस्य है यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु आप अभी चलकर देख लीजिए और खटिकों से पूछ भी लीजिए। बात सरासर झूठ है।

अविश्वास-भरी दृष्टि से मिस्टर घोष उसकी ओर देखते रहे। वह स्वयं नहीं निर्णय कर सके कि कौन बात सच है, कौन झूठ। रिश्वत के रुपये-पैसे के लेन-देन की बात पर वह किसी भी अधीनस्थ कर्मचारी से बात न करते थे। उनका विश्वास था कि सभी लोग थोड़ी-बहुत 'ऊपर की आमदनी' करते हैं, चपरासी मुलाकातियों से इनाम माँगकर, पेशकार लोग अभ्यर्थियों की अर्जियों पर रुपया-दो रुपया लेकर, ओवरसियर कमीशन के रूप में, किन्तु जहाँ तक ये बातें उनकी दृष्टि में न आयें, उतना ही अच्छा। उनका विचार था कि अपने-अपने कृत्य के लिए सभी उत्तरदायी हैं। दूसरों के व्यवहार में उन्हें हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार ? स्वयं ऐसे कुकृत्य से बचे रहें, यही बहुत है। कोई अपनी अवैध आय के मामलों में कितना लग्न है, इसका जानना उन्होंने कभी अपना कर्त्तव्य नहीं बनाया। स्वयं भी कभी अचानक प्रयासहीन रूप से उन्हें

कुछ असाधारण प्राप्ति हो गई है, जिसकी बात कभी प्रकट नहीं हुई है। यह भी ठीक ही है। ऐसा चला ही आया है। किन्तु किसी को तंग करके ऐसी ऊपर की आमदनी को अपना ध्येय ही बना लेना उनको सह्य नहीं। रामप्रसाद ने ऐसा किया होगा, यह भी विश्वास नहीं जमता; किन्तु उस गन्दे मामले में गहरे पैठकर वास्तविकता का पता लगाने की भी रुचि नहीं होती। कोई-न-कोई बात अवश्य हुई होगी, यह तो वह समझते हैं।

अधिकारी को चुप देखकर उसे उनका अपने प्रति बढ़ता अविश्वास समझ, आकुल होकर रामप्रसाद बोला—साहब, आप अभी चलें और इस मामले की स्वयं जाँच कर लें।

यह कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आईं।

अधिकारी ने कहा—मुझे इतना समय नहीं। तुम अपनी भलाई चाहते हो तो इसे ले जाओ। मैं केवल यही चाहता हूँ कि भगवान मुझे ऐसे झंझटों से बचायें। आप लोगों का मैं बुरा नहीं चाहता। वहाँ जाकर इसे ठीक-ठाक कर लो। मैं इसकी जाँच तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूँ।

अब आँसू बहाकर रामप्रसाद बोला—सच जो है उसे तो आपको जानना ही चाहिए साहब, मैं अरेठी गाँव की ओर इस....इस....

कहते-कहते रामप्रसाद का मुँह झाग से भर गया। उसके मन में कहने योग्य बातें अनेक आती थीं, किन्तु शब्द जुटते न थे, विवश हो वह बच्चों की भाँति सिसकने लगा।

अधिकारी को मानो कुछ याद आ गया। हाथ से मेज पर व्यर्थ हलकी थपकी देकर वह बोला—आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या? यहाँ का जल-वायु क्या आपके अनुकूल नहीं है?

'तबीयत कुछ खराब थी।' रामप्रसाद ने अपना रुँधा गला और नाक साफ करके कहा, 'अब तो ठीक है। तीन-चार दिन ज्वर रहा। यही तो मैं कहता हूँ साहब, मैं इन दिनों घर से बाहर भी नहीं निकला, भला खटिकों से रुपया क्योंकर वसूल करता?'

ऐसा कहते-कहते रामप्रसाद के पेट में एकाएक तीव्र जलन-सी हुई; उसके मुँह से एक कराह निकल पड़ी। फिर पेट पर हाथ रखकर वह आँखें मूँदे

अपने को कुर्सी से गिरने से सँभालने का भरसक प्रयत्न करने लगा। पेट की जलन तीव्र पीड़ा में बदल गई। पास ही मेज पर पानी की बोतल को देख उसकी इच्छा पानी पीने की हुई, किन्तु संकोचवश वह कुछ कह न सका।

मिस्टर घोष थोड़ी देर तो घृणा-मिश्रित दयार्द्र भाव से उसे देखते रहे, फिर क्षण-प्रतिक्षण मुरझाते चेहरे को देखकर निकट आकर उसके माथे को छूकर बोले—आपको तो ज्वर है, जाइए-जाइए, लौट जाइए।

लड़खड़ाता हुआ रामप्रसाद अभिवादन करके बाहर निकल आया।

रामप्रसाद के घर लौटने तक अँधेरा हो गया था। उसको ज्वर था। पेट में सुइयाँ-सी चुभ रही थीं, किन्तु सबसे बड़ी व्यथा तो उसे अरेठी गाँव की उस घटना पर हो रही थी। यह जानते हुए भी कि गाँववालों ने दर्शनलाल के कहने पर वे झूठी अर्जियाँ दी थीं, घोष साहब उस मामले को उभाड़ने के लिए उसे ही दोषी ठहरा रहे थे। गाँववालों को क्षतिपूर्ति का रुपया दिलाना उस बेईमानी का परिपोषण-मात्र था। उसपर भी खटिकों का वह दोषारोपण! सैनिकों के क्वार्टरों का रुपया वसूल करने की वह उसके विरुद्ध झूठी शिकायत! स्मरण-मात्र से रामप्रसाद तिलमिला जाता था।

अपने क्वार्टर के अन्दर जाते ही उसने सुशीला को बुलाया। चाहता तो वह था कि तुरन्त चारपाई पर लेट जाये, किन्तु किसी को भेजकर खटिकों के चौधरी को तत्काल बुलाना आवश्यकीय समझकर वह चारपाई के किनारे बैठा सुशीला के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने आतुरता से दुबारा सुशीला को बुलाया। 'आई' कहकर भी सुशीला कई मिनट तक अन्दर खटपट करती रही। झुँझलाकर जब तीसरी बार उसने पुकारा तब भी सुशीला अकेली नहीं आई, उसके आगे-आगे उसकी सास भी थी।

रामप्रसाद के मुँह खोलने से पहिले ही सुशीला ने कहा—माजी जाना चाहती हैं, तुम्हारे ही आने की प्रतीक्षा कर रही थीं। भक्तिन की बैलगाड़ी तैयार है।

दोपहर को ज्योंही रामप्रसाद अपने साहब से मिलने अरेठी गाँव गया उसकी मा उसके आरोग्य-लाभ से आश्वस्त हो माघ-स्नान के पुण्यार्जन के लिए छटपटाने-सी लगी थी। माघ की अमावस्या के गंगा-स्नान पर भक्तिन के साथ का अवसर वह चूकना न चाहती थी। इस घर में उसके नहाने और खाना बनाने के लिए पानी बाहर कुएँ से आ रहा था, फिर भी पुत्र और पुत्रवधू का वह साथ उसे अन्त्यज के घर के निवास-सा खल रहा था।

रामप्रसाद ने एक उच्छ्वास लिया। मन-ही-मन कहा, यह है मेरा जीवन! मैं इस भारी व्यथा का बोझ वहन करने में असमर्थ हूँ, सुशीला को मुझसे बात करने तक का अवकाश नहीं। ठीक है, मेरा उस पर क्या जोर? सरकारी काम की झंझटों से उसे क्या प्रयोजन?

उधर सुशीला चाह रही थी कि रामप्रसाद उठकर अपनी मा को बैलगाड़ी तक पहुँचाकर बिठला आये; किन्तु उसे अँधेरे में चुपचाप बैठे रहते देख वह बोली—मैं जरा रेंजर साहब के घर तक जाकर मा को बिठला आऊँ। क्या तुम्हें कुछ काम है?

पत्नी के शब्दों को सुनकर रामप्रसाद की इच्छा अपनी निपट असहाय अवस्था पर रो देने की हुई। अपने भावावेश को रोककर वह उठ खड़ा हुआ और मा के पैर छूकर बोला—अच्छा मा, लौटकर यहीं आना।

पुत्र से इतनी शीघ्रता से बिना किसी प्रतिरोध या न जाने के आग्रह के विदाई मिल गई, इससे बुढ़िया का मन प्रसन्न न हुआ। वह अपने होंठ चबाती कमरे से बाहर हो गई।

उस रात रामप्रसाद ज्वर की उग्रता के कारण मूर्च्छित हो गया। अगले दो दिन तक तीव्र ज्वर के कारण उसे बेहोशी के दौरे आते रहे। वह बीच-बीच में अपनी अर्द्ध-चेतनावस्था में कभी अरेठी के गाँव के विषय में तो कभी खटिकों के विषय में बड़बड़ाता रहा। पहिले की भाँति पड़ोसी अधिकारी उसे देखने आते रहे। डाक्टर भीमराज ने रोग के निदान के लिए पिचकारी से उसका रक्त लेकर परीक्षण के लिए सदर भेज दिया। उसका अनुमान था कि वह मलेरिया या विषम ज्वर होगा।

चौथे दिन ज्वर कुछ कम हुआ। रामप्रसाद अरेठी गाँव की घटना और

खटिकों की उस शिकायत के विषय में शीघ्र ही कुछ करने की मन-ही-मन ठानने लगा। उसी दशा में वह लेटा था कि दारोगा भी मिलने आ गये। उन्हें देखकर रामप्रसाद सोचने लगा कि बुखार के कारण तो चार दिन नष्ट हो गये, गाँव के खटिकों की बात का पता लगाने में इतनी देर लग गई, अब मिलनेवाले लोग आकर उस विषय में उसे सोचने का अवकाश भी नहीं देते। उसने दारोगा की ओर करवट बदली। अपनी जिह्वा से शुष्क होठों को गीला करके उनसे शीघ्र छुट्टी पाने के विचार से वह बोला—दारोगाजी, मैं अब ठीक हूँ, आज ज्वर भो नहीं है।

दारोगा ने अपनी कुर्सी को चारपाई के निकट खिसकाकर मुँह में पान भरे रहने के कारण असाधारण मोटे स्वर में कहा—आप उसी रात से बेहोश रहे। खुदा ने चाहा तो, अब जल्दी ठीक हो जायेंगे।

वह चाहता था कि किसी प्रकार दारोगा उसके सम्मुख से हटें और वह सिर ढाँपकर चुपचाप सोने का बहाना करके पिछले सप्ताह की उन सब घटनाओं को अपने मस्तिष्क में व्यवस्थित कर अब तन्दुरुस्त हो क्या करना चाहिए, इस बारे में अच्छी प्रकार मनन कर सके। अपनी दुर्बलता के कारण अकेले ही उस व्यथा का निवारण करने का उसका संकल्प भी अब भंग हो गया था। वह सुशीला से भी परामर्श करना चाहता था।

दारोगा ने चारपाई के नीचे रखी चिलमची को अपने बूट से ही निकट खिसकाकर उसमें पान की पीक को थूका। उनके थूकने का वह ढंग और बूट से फिर खड़खड़ाते हुए चिलमची को खिसकाकर चारपाई के नीचे करना रामप्रसाद को बड़ा खला।

दारोगा ने अब अपनी कुर्सी को रोगी के सिरहाने के और भी निकट कर लिया। पान के तम्बाकू और दारोगा के काले सड़े दाँतों की लार की दुर्गन्ध अब हवा में व्याप्त होकर रामप्रसाद की नासिका के छिद्रों से उसके फेफड़ों में प्रवेश करने लगी। रामप्रसाद ने माथा सिकोड़ लिया और कंठ तक आये हुए कम्बल को खींचकर नासिका तक लाना चाहा। उसकी चेष्टा को देखकर दारोगा ने उसके सिरहाने झुककर अपने भारी-भरकम हाथ की हथेली को उसके माथे पर चट से उतारकर उसे सहलाना-सा चाहा। उनके मुँह की तीव्र

दुर्गन्ध अब रामप्रसाद के लिए असह्य हो गई। आधे मिनट तक तो उसने जोर का रेचक प्राणायाम-सा करके अन्दर की ओर साँस ही न ली। फिर झट से दारोगा की हथेली को हटाने के उद्देश्य से आँखें मूँद अपना हाथ भी अपने माथे की ओर बढ़ाया। उसका हाथ दारोगा की चिबुक से टकराया और उनका पान भरा हुआ मुँह जुगाली लेते-लेते रुक गया।

'हुँ-हुँ !' करते हुए धम-से कुर्सी पर बैठकर दारोगा ने कहा, 'वाह, अच्छा मजाक सूझा भाई, तुमको, मेरी तो जबान कटते-कटते बची। बीमारी में तो कम-से-कम यह लड़कपन छोड़ा होता।'

'क्षमा कीजिए !' रामप्रसाद ने खिसियाकर कहा, 'मैंने देखा नहीं। क्या आपको चोट लग गई ?'

वह कहना चाहता था कि आपके मुँह से आती हुई तम्बाकू की दुर्गन्ध मेरे लिए असह्य है, किन्तु शिष्टाचारवश कुछ कह न सका। यदि दारोगा को चोट न लगी होती तो सम्भवतः कह भी देता।

'नहीं-नहीं,' दारोगा ने कहा, 'अधिक चोट नहीं लगी। आजकल के नवयुवकों में संजीदगी का नाम नहीं। एक लिहाज से यह ठीक भी है। हँसते-खेलते दिन कट जायें तो मुहर्रमी सूरत बनाकर रहने से क्या ! बीमारी में भी आपकी यह जिन्दादिली काबिले तारीफ है।'

दारोगा को जमकर बैठते और कोई भी आसरा न देख रामप्रसाद ने सोचा, क्यों न खटिकों की शिकायत की बात इसी दारोगा से कही जाये। इसके द्वारा पुलिस के सिपाही को भेजकर भी खटिकों के चौधरी को अभी बुलाया जा सकता है। पान के पीक की गन्ध से बचने के लिए चादर को नाक तक खींचकर उसने कहा—दारोगाजी, ये खटिक बड़े झूठे हैं, बड़े कृतघ्न !

'बेशक।' दारोगा ने कहा, 'छोटी जात के लोग, इनके बराबर कमीना और कौन होगा !'

रामप्रसाद कहता गया—उस दिन इन्हीं लोगों ने घोष साहब के पास शिकायत की कि मैंने उनसे उन क्वार्टरों के किराये के बहाने दो सौ रुपये वसूल कर लिये।

'शिकायत की' दारोगा ने चौंककर कहा, 'जुर्रत की है, इन कमीनों ने ?'

पर मन-ही-मन वह प्रसन्न हुआ कि रामप्रसाद के रिश्वत से दूर रहने की उस प्रशंसा पर कुछ आँच तो आई। घोष साहब स्वभावतः ऐसे मामलों में छानबीन न करेंगे यह तो वह जानता ही था।

रामप्रसाद कहता रहा—मैं चाहता हूँ कि उनके चौधरी को अभी बुलाकर घोष साहब से उसका सामना करा दूँ। इतनी भलाई मैंने इन लोगों की की, उस पर यह झूठी शिकायत !

'झूठी तो खैर नहीं है।' दारोगा ने कुटिल हँसी हँसते हुए कहा, 'रुपया तो मैंने वसूल किया ही था, लेकिन ऐसी हिम्मत बढ़ गई इनकी कि कमीने शिकायत करने लगे।'

बिस्तर से उछलते हुए रामप्रसाद ने पूछा—रुपया वसूल किया था आपने ? मेरे नाम पर रुपया ?

दारोगा ने अपनी हथेली को अपने ही होंठों तक ले जाकर कहा—जरा खामोशी रखिए, वह तुम्हारे हिस्से के सौ रुपये जो बहू को दिये थे, कमीने खटिकों से ही तो मिले थे, चौंको मत !

'सौ रुपये बहू को ?' रामप्रसाद तकिए का सहारा लिये चारपाई के सिरहाने बैठता हुआ आश्चर्यचकित हो चिल्लाया, 'सुशीला ! सुशीला !'

सुशीला दारोगा के सामने नहीं आती। इस समय रामप्रसाद के ऐसे विकराल स्वर को सुनकर आतंकित हो अन्दर से दौड़ी हुई आई।

रामप्रसाद ने कहा—क्या तुमने दारोगाजी के भिजवाये सौ रुपये रख लिये ?

'क्यों, क्या हुआ ?' सुशीला बोली, 'वही रुपए लेकर तो भाजी यात्रा को गई। क्या आपने नहीं भिजवाया था उन्हें ? उस दिन जब आप अपने साहब के पास गये थे, सिपाही यही तो कह गया था कि आपने गाँव से भिजवाया था उन रुपयों को।'

'हाय राम !' कहकर रामप्रसाद ने दोनों हाथों से अपना सिर पीटा और कहा, 'तुमने आज तक उन रुपयों का जिक्र क्यों नहीं किया ? सुशीला, यह तुमने क्या कर दिया ?'

भयभीत-सी रोती हुई सुशीला बोली—मैं समझी थी कि भत्ते के रुपये होंगे;

जेब में पड़े गिर न जायें इसलिए शायद आपने रास्ते में याद आने पर उन्हें मेरे पास भिजवाया होगा।

प्रचंड क्रोध से अन्धा हो रामप्रसाद ने दाँत पीसकर तकिए को जोर से पत्नी की ओर पटककर कहा—मेरी नाक कटा दी तुमने ! रिश्वत के रुपये ले बैठी ! जिस नरक से मैं आज तक बचने का प्राण-प्रण से प्रयत्न करता आया हूँ उसी में तुमने मुझे, अपनी होकर भी, धकेल दिया न ?

'क्या लड़कपन की बात करते हो !' दारोगा हँसकर बोला, 'बीमारी में तो ऐसा मजाक छोड़ो !'

दारोगा ने ऐसी भयानक गम्भीर बात को पति-पत्नी के प्रेम-कलह का रूप देकर उपहास्य बनाना चाहा। पर उसका यह व्यवहार रामप्रसाद की क्रोधाग्नि में घी का काम कर गया।

क्रोध से उन्मत्त रामप्रसाद चट उठकर लड़खड़ाता दारोगा की ओर बढ़ा और गरजकर बोला—निकल जा यहाँ से। शैतान कहीं का ! गेट आउट !

'क्या हो गया तुम्हें ?' सुशीला ने रोकर कहा, 'अरे, चुप भी रहो। दारोगा-जी, समझाइए इन्हें।'

'मुझे समझाइए ! मुझे !' रामप्रसाद क्रोधावेश में आँसू बहाकर दारोगा को धकेलता हुआ बोला।

दारोगा ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये, फिर उसे खींचकर चारपाई पर बिठा दिया। रामप्रसाद चादर को फेंककर फिर खड़ा हो गया और दारोगा के बलिष्ठ पंजों से अपने को छुड़ाने लगा, किन्तु अपने को ऐसा करने में असमर्थ पाकर उसने लात से कुर्सी को ही धक्का दे दिया। दारोगा घुटनों के बल फर्श पर गिर पड़ा। झटके में रामप्रसाद भी पीठ के बल चारपाई के सिर-हाने टकराया और गिरते-गिरते बचा।

'अरी दैया !' कहकर सुशीला पति की ओर झपटी, किन्तु रामप्रसाद ने उसे भी धकेल दिया। पीठ की चोट से रामप्रसाद की हड्डी-हड्डी झनझना उठी। इस पीड़ा के कारण वह अपने बिस्तर की चादर दाँतों से नोचने लगा। वह ऐसी असह्य पीड़ा थी, मानो किसी ने हजारों छुरों से एक साथ उसकी नाड़ियों को छेदना आरम्भ कर दिया हो। पीड़ा के उस झंझावात में साँस लेते ही उसे

मुँह में कुछ नमकीन स्वाद-सा लगा। यह रक्त का स्राव था।

उस रक्त की घूँट को थूककर उसने हाँफते हुए कहा—सुशीला, जाओ सौ रुपये लाकर अभी वापस दो। लाओ, लाओ!

घुटने झाड़कर दारोगा बोला—बहू, तुम पड़ोस में जाकर किसी को भेज-कर डाक्टर भीमराज को तो बुला लो। तहसीलदार साहब के दिमाग में बुखार की गरमी चढ़ गई है। बाप रे, बीमारी में भी इतना जोर! जाओ बहू, जल्दी करो। यह सब बुखार का ही जनून है!

'बुखार का जनून?' रामप्रसाद ने कहा, 'मुझे कोई जनून नहीं। मैं आपकी चालाकी समझ रहा हूँ। सुशीला, ले आओ रुपये, सौ तो होंगे ही घर में?'

'बहू, बहू!' दारोगा बोला, 'इनके पागलपन की बात न सुनो, देखती नहीं नाक-मुँह से खून आने लगा। दिमाग की गरमी नहीं तो और क्या है। जाओ, रुपया तो फिर भी आ जायेगा। पहले इनकी जान तो बचा लो।'

सुशीला सिर नीचा किये रोती हुई आँगन की ओर चल दी।

*

डाक्टर भीमराज के आते ही दारोगा उसे लेकर बरामदे के एक कोने की ओर ले गये। दोनों में कानाफूसी होने लगी। सुशीला ने सौ रुपये लाकर पति के सिरहाने मेज पर रख दिये।

रामप्रसाद ने टपटप आँसू बहाते हुए पत्नी के दोनों हाथ पकड़कर कहा—सुशीला, यह तुमने क्या कर दिया? तुम्हारी उस गलती के कारण ही आज मुझे इतना क्रोध आ गया। बिना समझे-बूझे रुपया लेकर तुमने मेरा कितना अनिष्ट कर दिया!

सुशीला भी सिसक-सिसककर रोने लगी। रामप्रसाद ने तत्काल योजना बना ली, खटिकों की उस अर्जी पर वह तत्काल अपनी रिपोर्ट लिखकर सही-सही बात घोष साहब को लिख देगा। यह भी स्पष्ट कर देगा कि किस प्रकार धोखे में आकर उसकी पत्नी ने सौ रुपया दारोगा के कहने पर लेकर रख लिया था। वह यथोचित दंड के लिए प्रस्तुत रहेगा। चाहे उसे ऐसा करने के कारण नौकरी से अलग ही क्यों न होना पड़े। वह कोई बात घोष साहब से नहीं छिपायेगा।

उसे अपना यह संकल्प उस निपट अन्धकार में एक प्रकाश-सा सुखद लगा। झट इसे कार्यान्वित करने के अभिप्राय से वह पत्नी से बोला—जाओ, उस दिन जो कपड़े मैं पहिने था उन्हे देख लो। कोट या पतलून की जेब में कहीं खटिकों की वह अर्जी पड़ी होगी, उसे ले आओ। कलम भी लेती आना।

कलम, दावात और अर्जी की बात समझ में न आने से सुशीला पुनः आशंकित हो क्षण-भर देखती रही।

रामप्रसाद उतावला होकर जोर से बोला—देख क्या रही हो ? ले आओ।

उसे चिल्लाते सुन दारोगा और भीमराज लौटकर रोगी की चारपाई की ओर लपके।

रामप्रसाद ने कहा, 'डाक्टर, ऐसी दृष्टि से क्या देख रहे हो ? मैं आज ठीक हूँ। शायद ज्वर भी नहीं है। मुझे तो दारोगाजी की करतूत पर क्रोध हो आया। उन बेचारे खटिकों से इन्होंने रुपये वसूल कर लिये, वह भी मेरे नाम पर, बिना मुझसे पूछे।' फिर दारोगा की ओर मुड़कर वह बोला, 'यह रहे आपके सौ रुपये। इन्हे ले जाइए। जो आप ले चुके हैं उन्हें भी मिलाकर सारा रुपया आज ही वापिस करना होगा।'

रिश्वत के रुपयों की बात दारोगा ने किसी से न कही थी। पड़ोसी अफसरों से तो वह कभी ऐसी रहस्य-भरी बातों को कहता ही न था। घबड़ाकर बोला - पागलपन है, निरा पागलपन ! न किसी ने रुपया दिया, न किसी ने लिया। सनक है बस इनकी।

'सनक ?' रामप्रसाद फिर क्रोध से बोला, 'डाक्टर साहब, आप ही समझाइए इन्हें। इतने सयाने व्यक्ति को उन गरीबों से रुपया लेते शर्म न आई ! अब इसे मेरी सनक कहते हैं !'

'अच्छा, अच्छा !' कहकर डाक्टर ने थर्मामीटर निकाला। बुरी तरह हाँफते हुए रामप्रसाद को लिटाकर उसके मुँह में थर्मामीटर लगा दिया। फिर उसकी नाड़ी देखी। फेफड़े, गले और छाती की परीक्षा की।

दारोगा की रिश्वत की बात सुनने से वह भी बचना चाहता था।

तापमान निन्नानबे था। गले के अन्दर अब भी लाली थी।

डाक्टर ने सोचा कि ज्वर का कारण सम्भवतः गलसुओं का सूजना हो,

है; सल्फा-ड्रग्स का देना पूर्ववत् जारी रखा जाये तो ज्वर जल्दी ही ठीक हो जायेगा।

डाक्टर के कुछ कहने से पहले दारोगा ने कहा—टाइफाइड के अलामात हैं, वह कल-परसों का बड़बड़ाना, आज मार-पीट करने दौड़ना, ऐसा उसी मर्ज में होता है। मेरे लड़के को भी हुआ था। डाक्टर ने चारपाई से उसके हाथ-पाँव बाँध दिये थे।

'दारोगाजी,' रामप्रसाद चीत्कार करके बोला, 'आप बाहर न निकलेंगे? मारे बदबू के मेरा माथा फटा जा रहा है, सामने से हट जाइए।'

'बदबू!' दारोगा ने हँसकर कहा, 'आप देखो! बदबू यहाँ कहाँ?'

डाक्टर को भ्रम होने लगा कि जब ज्वर इतना अधिक नहीं है तो यह प्रलाप कैसा? रोगी का इस प्रकार भड़कना, ऐसी असंगत बातें करना क्या उसके पागल हो जाने का प्रमाण नहीं है?

उसी समय उस घर की चीत्कार सुनकर रेंजर, सफाई के इन्सपेक्टर और ओवरसियर भी कमरे में आ गये।

रामप्रसाद चट उठ बैठा और उन सबसे कहने लगा—भाई साहब, आप जरा अपने इन दारोगाजी को समझाइए। उन गरीब खटिकों से मेरे नाम पर इन्होंने दो सौ रुपए वसूल कर लिये। सौ आप खाकर, सौ मुझे बिना बताये मेरे घर भिजवा दिये। अब जब मैं इन्हें वे रुपये वापिस लेने को कह रहा हूँ तो मुझे पागल कहते हैं।

'या खुदा!' दारोगा ने फुसफुसाकर कहा, 'किसने रुपये लिये? कहाँ लिये? इन्हें कैसा जनून सवार हो गया। बहू को धमकाकर ये रुपये भी मँगवा लिये। च्च-च्च! किसी ख्वाब का तो असर नहीं है इन्हें?'

दाँत पीसकर रामप्रसाद ने कहा—चुप रह, शैतान, झूठा! मैं झूठ बोल रहा हूँ या यह सुशीला झूठ बोल रही है? वह अर्जी जो खटिकों ने दी है क्या वह भी झूठी है?

सभी पड़ोसी आतंकित हो रामप्रसाद की उन पागलों-सी लाल-लाल आँखों की ओर देखने लगे।

दारोगा ने कहा—डाक्टर साहब, देखते क्या हैं? दिमाग में बुखार की

गर्मी है, फिर उत्पात करने लगेंगे। अभी धोती से हाथ-पाँव इस पलंग पर बाँध दीजिए।

क्रोध से विह्वल हो रामप्रसाद बोला—मुझे पागल बताता है! सुशीला, लायी हो तुम वह अर्जी?

सुशीला किवाड़ों के पीछे खड़ी थी। अब घूँघट खींचे सिरहाने आई और उसने एक मुड़ा कागज रामप्रसाद को दे दिया।

'अरी यह नहीं!' रामप्रसाद चिल्लाया, 'और नहीं कोई कागज वहाँ? बन्द गले के कोट की जेब में देखो।'

सुशीला फिर लौटकर अन्दर गई।

दारोगा ने पड़ोसियों से कहा—क्यों होगा कोई ऐसा कागज? होता तो क्या वह न लाती? सब इनका भ्रम है।

उसने फिर फुसफुसाकर डाक्टर के कान में कहा—अब बहू की खैरियत नहीं। मरीज में अब दया-माया का भाव नहीं रहा। उसके कागज के न लाने पर यह पागल उसे मारने दौड़ेगा। लाइए, वह रही धोती। बाँध दें।

सुशीला को लौटने में कुछ देर हो गई तो रामप्रसाद स्वयं ही उस कागज को ढूँढ़ने के लिए उतावला हो गया। चट चारपाई से कूदकर नीचे उतरा। ऐसा करते देख सब पड़ोसियों ने पकड़कर फिर उसे चारपाई पर लिटा दिया। दारोगा ने धोती ली और उसके दोनों हाथों को पलंग की पट्टियों से बाँधकर फिर पाँवों का भी चादर से उसी प्रकार निवाड़ से कस दिया।

वह कहता गया, 'दुष्टो, निठुरो! क्या तुम सब पागल हो गये? सुशीला क्या तू नहीं समझती? तू भी क्या इन्हीं का साथ देने लगी? तू भी मुझे पागल समझती है? सुशीला कहाँ गई? हे भगवान, इन्हें कब समझ आयेगी? मुझे पागल कहते हैं। सच्ची बात को पागलपन कहते हैं!' फिर वह एक-एक करके उन पड़ोसियों के नाम ले-लेकर प्रत्येक से कहने लगा कि वह पागल नहीं, उसे खोल दिया जाये। जो भी पड़ोसी उसके सामने पड़ता उससे वह यही प्रार्थना करता।

उसका प्रबल विरोध, रोना, चिल्लाना और बिलखना व्यर्थ गया। सुशीला को वह अर्जी मिल गई, किन्तु पति के उस भीषण रूप को देख उन अनेक

हितैषियों की भारी भीड़ को पार करके उसके समीप तक जाने का साहस उसे न हुआ। पति पागल हो या न हो, परन्तु उसे तो घड़ी-भर में इस कांड ने पागल बना दिया था। वह कुछ समझ ही नहीं पा रही थी।

डाक्टर ने कहा—कोई इसके सामने न पड़े। सुनसान कमरे में इसे शान्त होने के लिए अकेला छोड़ दिया जाये।

चिल्लाते-चिल्लाते थककर जब रामप्रसाद की साँसें धीमी पड़ने लगीं तभी डाक्टर ने सुशीला को उसके समीप जाने दिया।

कुछ देर बाद 'ऊँ-ह-ह' करके, सम्भवतः क्लान्त होकर, रामप्रसाद सो गया।

शाम को सास तीर्थ से लौटनेवाली थी, उसी के लौटने की प्रतीक्षा में किसी प्रकार अपनी मूर्च्छा रोके सुशीला घर की रक्षा करती रही।

अँधेरा होने के बाद बूढ़ी लौटी। पुत्र और बहू किसी को भी स्वागतार्थ रेंजर के दरवाजे न पाकर उसका मन वैसे ही खिन्न था। घर आकर जब बहू ने पति की उस भयंकर बीमारी का जिक्र किया तो बुढ़िया ने दो आँसू बहा-कर कहा—मैं तो उसी दिन समझ गई थी। वह निरे पागलपन की बातें कर रहा था। हाय, हम अब क्या करेंगे?

सुनकर सुशीला के संयम का बाँध टूट गया। मुमूर्षु पति के समीप वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

चार बजे सुबह रामप्रसाद की आँख खुली। बाहर आकाश में बादल छाये थे। रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। उसके हाथ-पाँव अब भी बँधे थे।

'सुशीला!' रामप्रसाद ने धीरे से कहा। वह चारपाई से जकड़े रहने के कारण केवल कमरे की छत की ओर ही देख पा रहा था। दीपक का मन्द प्रकाश कमरे में सजीव उदासी-सा व्याप्त था।

सुशीला पास ही फर्श पर पड़ी थी। सकपकाकर खड़ी हो गई। कब उसे

नींद आ गई, किसने उसे रजाई उढ़ा दी थी, यह उसे कुछ याद न था।

रामप्रकाश ने छत पर आँखें गड़ाये कहा—सुशीला, क्या तुम भी मुझे पागल समझती हो?

निश्चय ही यह किसी पागल का स्वर न था, कदापि नहीं। इससे पूर्व आज तक, विवाह से अब तक, कितनी ही बार पति ने उसे पुकारा है। प्रेम से, आग्रह से, क्रोध से, व्यंग्य से; सैकड़ों-हजारों बार उसने पति के स्वर से अपने इस सुशीला नाम को उच्चारित होते सुना है, किन्तु किसी दिन भी उनका स्वर इतना करुण, इतना स्नेहिल, ऐसा समुद्र-सा गम्भीर, मानसरोवर-सा निर्मल और ऐसी उत्कट विवशता से ओत-प्रोत न था।

सुशीला पति के सिरहाने झुककर टपटप आँसू बहाने लगी। रुलाई के कारण उसका कंठ-स्वर न फूट सका। पति की वह वाणी शीतल निर्झर-सी झरती जा रही थी।

रामप्रसाद उसी सन्नाटे को सम्बोधित करके बोला—सुशीला, तुमने मुझ पर यह पशुवत निर्मम व्यवहार होते कैसे सह लिया, मुझे पागल ही समझ कर न?

प्रत्युत्तर में अब भी उसे सिवा सिसकियों के और कुछ न सुनाई पड़ा। वह उसी स्वर में कहता गया—तुम मुझसे जो चाहे पूछ लो; मेरी बुद्धि की, मेरे विवेक की, जैसी चाहे परीक्षा ले लो; लेकिन मुझे पागल न समझो। सुशीला, अभी तक तो मैं पागल नहीं हूँ, किन्तु तुम्हारा अविश्वास मुझे पागल बना देगा। तुम मेरे साथ रहो, पड़ोसियों के साथ नहीं।

पति के माथे पर हाथ फेरकर रोती हुई पत्नी ने फफककर कहा—मैं स्वयं पागल हो गई हूँ, मेरे स्वामी, नहीं तो वह अत्याचार तुम पर न होने देती।

रामप्रसाद ने कहा—अच्छा, तब इन बन्धनों को खोल दो।

धीरे-धीरे सुशीला ने रामप्रसाद के हाथ और पाँव खोल दिये। तब रामप्रसाद चारपाई पर तीन-चार बार करवट बदल-बदलकर अपने जकड़े हुए दुखते अंगों को सहलाता रहा। फिर चारपाई पर बैठकर प्रसन्नता से बोला—बुखार जरा भी नहीं है। क्रोध की आग में वह सब भस्म हो गया।

सुशीला ने देखा, जिस पति को वह नित्य के लिए खो चुका समझने लगी

थी, वही फिर सजीव हो उठा। उसका लुटा सुहाग फिर अखंड हो गया। स्वयं उसकी अपनी मृत आत्मा मानों पुनः जीवित होकर स्फूर्तिमय हो गई।

सुशीला को भी अपने समीप बिठाकर रामप्रसाद बोला—माजी वापस आ गईं कि नहीं?

सुशीला ने बतला दिया कि वह आकर अपने कमरे में सो रही हैं।

'तब तो काम बन जायेगा।' रामप्रसाद ने दीपक की ओर लपककर उसके प्रकाश को तीव्र करके कहा, 'मैं जितनी शीघ्रता से बीमार होता हूँ उतनी ही जल्दी आरोग्य-लाभ भी कर लेता हूँ। गहरी नींद ही मेरी बीमारी का इलाज है। अब देखो, मैं ऐसा चंगा हो गया हूँ, मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं था। यदि तुम मुझे पागल नहीं समझती हो तो मेरा कहना मानोगी न?

सुशीला उसकी ओर देखती रही। उसने आँखों-आँखों में स्वीकृति दे दी।

रामप्रसाद ने कहा—पहिले तुम मुझे एक प्याला गर्म चाय पिला दो। नीबू रखा हो तो ग्लुकोज के साथ गर्म पानी में दे दो, फिर बतलाऊँगा।

गर्म पानी में ग्लुकोज़ और नीबू का शरबत आ गया। फिर चाय भी।

रामप्रसाद ने कहा, 'अब यदि तुम्हें पूर्ण विश्वास हो कि मैं पागल नहीं हूँ तो तुम मा को जगा दो। वह घर की देख-भाल कर लेंगी। हम दोनों इसी अँधेरे में टहलने निकलेंगे।' फिर रुककर मुस्कराते हुए वह बोला, 'यह मेरा पागलपन नहीं है। लेकिन तुम इसे मेरा पागलपन समझो तो जाओ, सो जाओ। मैं भी फिर लेट जाता हूँ।'

गद्गद होकर सुशीला बोली—चलो, मैं चलती हूँ, तुममें पूर्ण विश्वास है।

पर मन-ही-मन वह सोचने लगी कि इतने अशक्त होते हुए भी इन्होंने टहलने का कार्यक्रम बना लिया! लेकिन मैं तो इनके साथ स्वर्ग-नरक, आकाश-पाताल कहीं भी चलने को उद्यत हूँ।

सास के पास जाकर सुशीला ने धीरे से कहा—मा, वह तो बिलकुल ठीक हैं। आप जरा घर का खयाल रखें, मैं उनके साथ बाहर टहल रही हूँ।

सास के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह झटपट कपड़े पहनकर तैयार हो गई। अपने उस उल्लास को वह उस समय, जो भी मिल जाये, उसी से व्यक्त करने को आतुर थी।

रामप्रसाद ने अब तक मेज पर बिखरे उन नोटों को सँभालकर जेब में डाला। ओवरकोट पहना। गले में मफलर लपेटा और कमरे से बाहर निकला। सुशीला उसके साथ-साथ हो ली।

पति के साथ कदम मिलाकर चलती हुई सुशीला का मन प्रसन्नता से बाँसों उछल रहा था।

अहाते से बाहर निकलर रामप्रसाद सीधे छावनी के क्वार्टरों की ओर बढ़ा। लगभग आधे मील चलकर उसकी बसाई वह बस्ती आ गई। खटिक लोग जाग गये थे। कुछ अलाव ताप रहे थे। कुछ सूअरों को बाड़े से खोल रहे थे। सारी बस्ती जाड़े के उस प्रातःकालीन सूर्य की प्रथम रश्मियों में उच्छ्वास सी लेती जान पड़ती थी। किनारे के क्वार्टर के पास जाकर रामप्रसाद ने पुकारकर कहा—चौधरी, चौधरी, सोहनलाल !

गुड़गुड़ी थामे, बूढ़ा चौधरी बाहर निकला ! तहसीलदार को दरवाजे पर खड़ा देख घबड़ाकर बोला—सरकार, हुक्म ?

रामप्रसाद ने जेब से सौ रुपये निकालकर कहा—दारोगाजी ने तुम लोगों से जो दो सौ रुपये वसूल किये थे उनमें से सौ यह लो। बाकी सौ क्वार्टर पर आकर ले जाना। क्वार्टरों का एक पाई किराया न लिया जायेगा। जाकर यही बात अपने सब भाइयों से कह दो। कोई उन्हें फिर न ठगने पाये।

जमीन पर माथा टेककर प्रणाम करके आँसू बहाता चौधरी बोला—मैं तो खूब समझ रहा था कि ऐसा हुक्म हुजूर कभी नहीं कर सकते। मास्टरजी ने भी कहा कि मैं खुद सरकार के पास जाकर खुलासा कर लूँ, लेकिन हुजूर, आपके पास तक आने की हिम्मत न पड़ी। धन्य हमारे भाग, सरकार ही दरवाजे पर आ गये।

'मास्टरजी ?' रामप्रसाद ने पूछा, 'वह कौन हैं ?'

चौधरी ने कहा—अरेठी गाँव के प्रेमशंकर, सरकार। वह बिना फीस गाँव के बच्चों को पढ़ाने आते हैं। रात को स्कूल चलता है।

रामप्रसाद ने कहा—प्रेमशंकर से कहना, हो सके तो वह मुझसे मिल लें। तुमने उस अर्जी में उन सिपाहियों के नाम नहीं दिये, जो रुपया वसूल करने आये थे। उस अर्जी के बारे में भी तुमसे पूछना है।

'अर्जी !' चौधरी ने कहा, 'अर्जी तो हम लोगों ने कोई नहीं दी। भला, हम लोग सरकार से बैर ले सकते हैं। पुलिस हमें ऐसा करने पर एक रात न रहने देगी।'

रामप्रसाद ने कहा—अर्जी, जो घोष साहब के पास भिजवाई थी, तुम्हीं लोगों ने तो पेश की थी।

चौधरी थोड़ी देर आश्चर्यचकित-सा रहा। रामप्रसाद को झुँझलाहट-सी होने लगी कि चौधरी डर के कारण अर्जी की बात छिपा रहा है।

चौधरी ने कहा—समझ गया सरकार। घरवाली कह रही थी कि महाशयजी आये थे, वह सुखलालजी। वह लिखी-लिखाई कोई अर्जी लाये थे। मैं तो घर पर था नहीं, छोटे से अँगूठा लगवा ले गये थे।

रामप्रसाद सुनकर मुस्कराता हुआ लौट आया।

★

एक सप्ताह के उपरान्त।

जाड़े की अन्तिम वर्षा के उपरान्त बड़ी सुहावनी धूप खिल आई थी। इस वर्ष जाड़ा बड़ा लम्बा, बड़ा दुःखद रहा था। रामप्रसाद अपने आँगन में बच्चे के पालने के पास कुर्सी पर बैठा अखबार पढ़ रहा था। पास ही सुशीला कुछ बुन रही थी। बूढ़ी मा सन्तुष्ट थी। वह अब उन्हें असुविधा न देगी। आज उसने रामप्रसाद की बात मानकर नल के ही पानी से स्नान किया था और उसी से भोजन भी बनाया था।

रामप्रसाद प्रसन्न था। गत सात दिनों में सारी बातें सुलझ गई थीं। उसकी बीमारी के विषय में पड़ोसियों का भ्रम दूर हो गया था। खटिकों के चौधरी ने आकर सारी बात अफसरों को सुना दी थी। रामप्रसाद ने दारोगा से न लेकर अपनी ही ओर से शेष सौ रुपये भी गाँववालों को लौटा दिये थे। अरेठी गाँव में भी प्रेमशंकर ने सच्ची बात किसी नेता से कहकर मामला फिर उभाड़ दिया था। अब वहाँ पर्याप्त लोग ऐसे हो गये थे जो स्वतंत्र जाँच के पक्ष में थे; और ऐसी जाँच के होने पर सच बात कहने को उद्यत थे। पत्नी के कहने पर रामप्रसाद ने प्रतिशोध की सारी भावना त्याग दी थी। उलटे

रामप्रसाद ने ही दारोगा से क्षमा माँग ली थी। उन्होंने भी समझौता करके अगले मास का वेतन मिलते ही सौ रुपये वापस भिजवा देने का वचन दिया था।

बाल-वसन्त के उस सुहावने दिन सब-कुछ बड़ा ही सुन्दर, बड़ा सुखकर और सन्तोषप्रद लग रहा था। पेड़-पौधों तक में एक नया जीवन, एक नई स्फूर्ति झलक रही थी। निरभ्र आकाश जिस भाँति स्वच्छ और सुन्दर लगता था, उसी भाँति रामप्रसाद का मन भी चिन्ताओं से मुक्त और सन्तुष्ट था।

उसी समय डाकिए ने आकर एक बड़ा बादामी लिफाफा रामप्रसाद को दिया। यह रजिस्ट्री डाक से आया था।

लिफाफे के बायें, नीचे कोने पर प्रेषक के स्थान पर बड़े कार्यालय की मुहर थी। रामप्रसाद ने प्रसन्नता से पत्र खोला। अन्दर टाइप किया हुआ कागज निकला। उस पर बड़े साहब के हस्ताक्षर थे। वह एक साँस में उस पत्र को पढ़ गया। लिखा था :

"श्री रामप्रसाद को तराई के मेडिकल आफिसर की सिफ़ारिश के अनुसार उनकी अस्वस्थता के कारण चार मास की औसत वेतन पर छुट्टी दी जाती है। एस० डी० ओ० श्रीघोष के परामर्श के अनुसार इस तहसील में श्रीदर्शनलाल की बीमार तहसीलदार के स्थान पर पुनः नियुक्ति की जाती है। श्रीदर्शनलाल श्रीरामप्रसाद को तुरन्त ही कार्यभार से मुक्त करें, ताकि उस तहसील की स्थिति और अधिक न बिगड़ने पाये।"

इस आदेश के नीचे पृष्ठांकन था :

"प्रतिलिपि मानसिक चिकित्सालय के अध्यक्ष को इस सूचना सहित कि डाक्टर भीमराज रोगी अधिकारी को अपनी देख-रेख में शीघ्र उनके पास ले जायें, रोगी को अस्पताल के सरकारी कक्ष में एक अलग कमरा दे दिया जाये।"

रामप्रसाद ने पत्र को सुशीला की ओर बढ़ा दिया। मन-ही-मन उसने दुहराया, अच्छा, तुझे सरकार ने भी पागल घोषित कर दिया! इस विचार ने उसे एकदम स्तम्भित-सा कर दिया। वह उस समय न अपने भविष्य के विषय में

सोच रहा था, न नौकरी के विषय में, न उसे बच्चों का ध्यान था, न माँ का। न उसे उस निपट झूठे रोग से अपने रोगी हो जाने का भय था। उसके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार काम कर रहा था कि क्या सुशीला भी उसे पागल समझकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार तो न करने लग जायेगी?

उधर पत्र पढ़कर दोपहर की वह चमचमाती धूप सुशीला को रात्रि के निविड़ अन्धकार-सी लगने लगी।

जाड़े की वह सुहावनी धूप, वह साफ-सुथरा आँगन, नीम के पेड़ों से छनकर आती वह सुखद वायु, पास बैठी हुई स्नेहमयी पत्नी और किलकारियाँ मारता हुआ गुलाब सा सुन्दर बालक, सबके ऊपर उस सरकारी आदेश ने सहसा एक तमाच्छन्न मेघ की भाँति छाकर ऐसी घनी छाया-सी डाल दी कि रामप्रसाद सब-कुछ देखते हुए भी कुछ भी नहीं देख रहा था। उसकी आँखें खुली थीं, हाथ में अखबार था, स्वयं वह अपने चतुर्दिक फैले अन्धकार में अकेले ही उतराने-डूबने-सा लगा।

सोचने लगा, इस हुक्म में कहीं अवश्य गलती है। हो सकता है यह आदेश तब दे दिया गया हो जब मेरी तबीयत बहुत खराब थी, मेरे शीघ्र स्वस्थ होने की आशा ही न थी। उस दिन, उस झगड़े के उपरान्त जब उन लोगों ने मुझे चारपाई से बाँध दिया था और मैं परास्त होकर, थककर चूर हो प्रगाढ़ निद्रा में अचेत था तो उस गहरी नींद को मेरी बेहोशी समझकर पड़ोसियों ने तहसील का काम सँभालने के लिए किसी दूसरे तहसीलदार को बुलाने के लिए कहीं घोष साहब को तार न भेजा हो और उस तार पर ही सरकार द्वारा जल्दी में यह कार्यवाही की गई हो। फिर उसे याद आ गया कि दारोगा अपने कृत्य की सफाई देते हुए क्षमा माँगकर दबी जबान से कुछ कह रहे थे। हाँ, उन्होंने कहा था कि उस शाम इसी मार्ग से सदर लौटते हुए घोष साहब ने मेरी बीमारी का हाल पूछा था तो उन्हें बतलाया गया था कि मैं मूर्च्छित हूँ। हो सकता है, दारोगा ने उनसे खूब बढ़ा-चढ़ाकर बातें कही हों। शायद कहा हो कि राम-

प्रसाद पागल हो गया है, मारने दौड़ता है, उसे बड़ी कठिनाई से बाँधकर रखा गया है।

फिर वह पिछले सप्ताह की घटनाओं का चिन्तन करने लगा। दारोगा का क्षमा माँगना, भीमराज का विनीत भाव, हैडमास्टर का अपने स्कूल की समस्याओं को लेकर उससे परामर्श करना, ओवरसियर का उससे बचते रहना और मिलने पर अपनी ईमानदारी के दृष्टान्त देना, इस सबको उसने पड़ोसियों के उच्छृङ्खल स्वभाव में निरन्तर होता हुआ शुभ परिवर्तन, अपनी उस भयंकर बीमारी के उपरान्त हुआ हृदय-परिवर्तन समझा था। अब उनके उस परिवर्तन को वह एक नये ही रूप में देखने लगा। पहली बार उसकी समझ में आया कि वे सब उनके अभिनय-मात्र थे, तहसीलदार से अपनी किसी नयी योजना को गुप्त रखने के लिए किये गये षड्यन्त्र। यह जानकर कि उस मंडली में उसका कोई सच्चा मित्र नहीं कोई हितचिन्तक नहीं, वह निराशा का निबिड़ अन्धकार और भी सघन हो गया। एक उच्छ्वास लेकर नित्य प्रातःकाल की अपनी वह प्रार्थना इस समय अनायास ही उसने दुहराई। वह निर्निमेष बैठा निराशा के अँधेरे गर्त में डूबता हुआ पाँव तले किसी स्थिर भूमि की आशा में अपने उसी विधाता को पुकारकर कहने लगा—मेरे विधाता यह क्या हो गया? इन पड़ोसियों की नृशंसताओं का शिकार बनाकर मेरा अन्त कर देना ही क्या तेरा उद्देश्य था? यदि नहीं तो मेरे बचाव का जो उपाय है उसी पर मुझे प्रेरित कर। तू ही बता, अब इस आपत्ति से बचने के लिए क्या करूँ? किसकी शरण जाऊँ? किससे परामर्श लूँ?

उस नये स्थान में आगने कहे जानेवाले लोगों का, उन लोगों का जो सम्भवतः उसके वास्तविक रूप को समझे हों, स्मरण करते हुए वह प्रेमशंकर नाम के उस देहाती लड़के और खटिकों के चौधरी मोहनलाल के विषय में सोचने लगा। फिर उनकी मूर्ति को भी अपने मनस्पटल से हटाते हुए उसने अपने ही से तर्क किया—उन दोनों से क्या आशा? वे भोले-भाले सच्चे हृदय के मित्र हो सकते हैं, किन्तु न वे इतने पढ़े-लिखे हैं, न इतने समझदार कि मेरी इस परिस्थिति में सहायता कर सकें।

अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर देने के लिए उसने अब आँखें मूँद लीं। और

एक तरकीब झट सोच डाली, इस आदेश के कार्य-रूप में परिणत होने और दर्शनलाल के यहाँ पहुँचने से पहले ही मुझे यहाँ से अन्यत्र जाकर किसी अच्छे डाक्टर से अपने पूर्ण रूप से स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र लेकर इस हुक्म को रद्द कराने का प्रयास करना चाहिए। लेकिन बाहर जाने के लिए अपने हेडक्वार्टर को छोड़ने की आज्ञा तो एस० डी० ओ० से लेनी पड़ेगी। बिना आज्ञा के तहसील छोड़कर जाने से मेरे विरुद्ध अनुशासनहीनता की कार्यवाही हो सकती है। हो सकता है, मेरी दो-एक दिन की अनुपस्थिति में ही दर्शनलाल यहाँ चार्ज लेने आ धमके। तब क्या होगा? वह मेरी अनुपस्थिति का पूरा लाभ उठायेगा। हो सकता है, वह मुझे नीचा दिखाने के लिए अफवाह उड़ा दे कि रामप्रसाद बिना चार्ज दिये भाग गया। सम्भव है कि तहसील में जो आठ-दस हजार रुपए और स्टाम्प आदि के कागज हैं उन्हें भी इधर-उधर कर दे। यह भी घोषित कर दे कि पागल तहसीलदार ने उसके आने से पहिले ही सारा खजाना खाली कर दिया था। किन्तु आज ही मेरे पास यह हुक्म आया है, दर्शनलाल को भी इसकी प्रति आज ही मिली होगी। साधारणतौर पर ऐसे आदेश का पालन एक सप्ताह तक होना चाहिए, फिर यहाँ पहुँचने के लिए उसे एक सप्ताह का और समय मिलेगा। मेरे पास इस प्रकार चौदह दिन हैं।

फिर वह सोचने लगा, सच्चाई की अन्त में विजय निश्चित है और लोग जो भी करें, मुझे तो सब-कुछ स्पष्ट और सीधे-सादे रूप में करना चाहिए। मैं कहीं किसी से छल न करूँगा तभी विधाता मेरी सहायता करेगा। क्यों न आज ही घोष साहब से हेडक्वार्टर छोड़ने की आज्ञा मँगवा लूँ? इस आशय की अर्जी अभी लिखकर डाक में छोड़ दूँ तो कल तक उसका उत्तर आ जायेगा। कल उत्तर न भी आया तो परसों तो आ ही जायेगा। तब मैं यहाँ से चला जाऊँगा। पहले घोष साहब से ही कहूँगा कि मैं बिलकुल भला-चंगा हूँ। मुझमें कहीं किसी बीमारी का लवलेश भी नहीं है, वे स्वयं देख लें या किसी डाक्टर को दिखला लें। यह भी कहूँगा कि मुझे छुट्टी की आवश्यकता ही नहीं है। क्या वह न मानेंगे? अवश्य मानेंगे। वह, उतना सब होते हुए भी, सुना है, उस शाम मेरी बीमारी के विषय में पूछ रहे थे, शायद मुझे देखना चाहते थे। निश्चय ही वह सहृदय व्यक्ति हैं।

मन-ही-मन घोष साहब से मिलने की योजना बनाकर उस यात्रा के लिए रुपयों की बात पर आकर वह रुक गया। इस महीने दो सौ रुपये अधिक व्यय हो गये थे। दारोगा के लिये हुए रुपयों को खटिकों को वापस करने के कारण हाथ तंग था। पड़ोसियों के आगे हाथ फैलाना ठीक नहीं। डाकखाने की किताब भी अभी नहीं आई। बाहर जाने से पहले घर के व्यय की भी व्यवस्था करना आवश्यक था। पहली तारीख तक घर का खर्च भी चलना चाहिए। किन्तु यदि इकतीस तारीख से पहले ही चार्ज दे देना पड़ा तो इस महीने की तनख्वाह यहाँ मिलेगी भी नहीं।

इस समय उसका ध्यान अपनी गाय की बिक्री से प्राप्त सौ रुपये के उस चेक की ओर गया जो दो दिन पहिले पुरानी तहसील के तहसीलदार ने भेजा था। इस गाय को वह अपने किसी पड़ोसी के पास छोड़ आया था। यद्यपि चेक को तत्काल भुनाना आसान न था, क्योंकि उस ग्रामीण इलाके में कहीं कोई बैंक न था, किन्तु सदर जाने पर तो सौ रुपये मिल ही सकते थे। उन रुपयों को लेकर लखनऊ तक की यात्रा, परीक्षण करनेवाले डाक्टर की फीस आदि का व्यय किया जा सकता था। तब घोष साहब से मिलने और चेक भुनाने सदर जाना ही चाहिए। घोष साहब के विषय में सोचते ही उसे उनका वह रूखा व्यवहार याद आ गया। चीनी मिल की अतिथिशाला में अरेठी गाँव की उन अर्जियों की बात आने पर उन्होंने कैसी रूक्षता प्रदर्शित की थी, यह वह कभी नहीं भूल सकता। हो सकता है, वह उसकी उस रिपोर्ट से नाराज़ हों जो उसने खटिकों की दी गई उस अर्जी पर लिख भेजी थी, जिसमें किराये के नाम पर उनसे दो सौ रुपये रिश्वत लेने का आरोप उस पर झूठे ही लगा दिया गया था। फिर यह सोचकर कि उसने अपनी उस रिपोर्ट में कोई अनुचित या असंगत बात तो नहीं लिखी थी, रामप्रसाद ने दराज में रखे कागजों को टटोलकर वह कागज पढ़ने के लिए निकाल लिया जो एस० डी० ओ० को लिखकर भेजी गई उस रिपोर्ट की नकल थी।

उसने लिखा था : 'महोदय, खटिकों की इस शिकायत को मूल रूप में आपके पास वापस करते हुए पहिले मैं आपको धन्यवाद देना अपना फर्ज समझता हूँ कि आपने मेरी ईमानदारी और सच्चाई पर विश्वास करके इस शिका-

यत की जाँच के लिए मुझे ही सौंप दिया, यद्यपि शिकायत मेरे ही विरुद्ध थी।

'मैं यह स्वीकार करता हूँ कि शिकायत बिलकुल सही है। यह लिखते हुए मुझे दुःख होता है कि वास्तव में खटिकों से दो सौ रुपये वसूल किये गये थे! थाने के सिपाही क....और म....ने यह रुपया थानेदार श्रीहामिदअली के आदेश पर वसूल किया था। यही नहीं, वसूल किये गये रुपये में से मेरी अनुपस्थिति में सौ रुपया मेरे घर भी भिजवा दिया गया था। दारोगा अपनी गलती के लिए बहुत शर्मिन्दा हैं। उन्होंने जो सौ रुपये इन दो सौ में से लिये हैं उनको वह वापस कर देने का वचन दे चुके हैं। मैंने खटिकों के चौधरी मोहनलाल को पूरे दो सौ रुपये वापस कर दिये हैं, तथा वे रुपये जिन-जिन खटिकों से जिस हिसाब से वसूल हुए थे उसी हिसाब से वापस कर दिये गये हैं और उनकी रसीद प्राप्त कर ली गई है जो इस अर्जी के साथ नत्थी है।

'सिपाहियों के ख़िलाफ कार्यवाही करना उचित दीखता है, किन्तु यह आप अपने स्तर पर पुलिस अधिकारियों से बात करके निर्णय कर सकते हैं, क्योंकि ऐसी घटनाएँ बहुधा और विभागों में भी हो रही हैं और इसके विरुद्ध किसी ठोस, सक्रिय तथा सबल प्रयत्न की आवश्यकता है।'

'चूँकि रिपोर्ट पर आपने मुझे इसके निबटारे का आदेश दिया था अतः मैं इसे आपके पास बढ़ाने के लिए बाध्य नहीं था, फिर भी मैं इसे आपकी सूचना के लिए आपको भेज रहा हूँ। दारोगा के पश्चात्ताप-पूर्ण व्यवहार के कारण उनके विरुद्ध कार्यवाही करना शायद उचित न हो, किन्तु यदि आप मेरे अथवा उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही करना उचित समझें तो इस परिस्थिति में यथोचित आदेश देने की कृपा करें। अपनी सफाई में मुझे यही कहना है कि यह रुपया मेरी जानकारी के बिना तथा बिना मुझसे पूछे लिया गया था....'

रिपोर्ट पढ़ चुकने पर उसने उस कागज को फिर दराज के अन्दर रखते हुए सोचा कि हो-न-हो मेरी इसी स्पष्टवादिता के कारण वह मुझसे नाराज हों। शायद वह सोचते होंगे कि जब वह शिकायत मेरे पास निबटारे के लिए दी गई थी—तो फिर उस पर मुझे जाँच करके स्वयं ही कार्यवाही कर देनी चाहिए थी, उनके आदेश की अपेक्षा के लिए अर्जी को उनके पास भेजना ही नहीं चाहिए था।

फिर आज ही प्राप्त उनके आदेश का स्मरण करके वह सोचने लगा, घोष साहब, अरे हाँ, इस आदेश में साफ लिखा है कि उन्हीं की सिफारिश के अनुसार दर्शनलाल को यहाँ भेजा जा रहा है। उस दिन अरेठी गाँव में, सुखलाल और दर्शनलाल ही तो उनसे घुल-मिलकर बातें कर रहे थे। तब घोष साहब से सहानुभूति की आशा करना व्यर्थ है। हो सकता है, इस षड्यंत्र में उनका भी हाथ हो। बिना उनके प्रश्रय के इन लोगों का साहस इतना नहीं बढ़ सकता था कि ये लोग मुझे बीमार ही नहीं, एकदम निरा पागल घोषित कर दें। यही लोग नहीं, मेरा विभाग भी तो अब मुझे निरा पागल समझता है, तभी तो दर्शनलाल को चार्ज ले लेने का आदेश हुआ है।

आँगन से बाहर उस समय फाटक की ओर से आता कहीं खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई पड़ा। रामप्रसाद उसे सुनकर कुर्सी पर से उठा, बरामदे तक गया, किन्तु फिर लौटकर अपने बोझिल मस्तिष्क के भार को हथेली पर लेकर कुर्सी पर बैठ गया।

दूसरी बार अपने हितचिन्तकों का स्मरण करते ही उसे छावनी के उन सैनिक अफसरों का स्मरण हुआ जो उसे उस दिन, जब गाँव में आग लगी थी, सच्चे हृदय से मिले थे और उसके सेवा-भाव से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने आग से पीड़ित गाँव के लोगों के लिए छावनी के क्वार्टर खाटकों के रहने के लिए दे दिये थे। सैनिक डॉक्टर ने कुछ ही क्षणों के परिचय के उपरान्त रेडक्रास की गाड़ी शीघ्र गाँव तक उसके जाने के लिए भेज दी थी। अब उन लोगों के पास पहुँचकर छावनी के किसी अच्छे डाक्टर के द्वारा अपनी शारीरिक परीक्षा कराकर पूर्ण स्वस्थ होने का प्रमाण प्राप्त करना आसान होगा। वैसे सरकारी नियमों के अनुसार अपने जिले के सरकारी डाक्टर उसके विभाग के बड़े अफसरों की आज्ञा के बिना उसके स्वास्थ्य की जाँच करना या प्रमाणपत्र देना स्वीकार भी न करेंगे। वे यह भी कह सकते हैं कि उसे अस्पताल में दाखिल करने का जो आदेश हो गया है उसके विरुद्ध कुछ और करना उनके लिए सम्भव न होगा; किन्तु सैनिक डाक्टरों से वह उस आदेश को गुप्त रख सकता है।

अन्त में उसने निश्चय किया कि किसी चपरासी के द्वारा तत्काल चिट्ठी

भेजकर घोष साहब से हेड-क्वार्टर छोड़ने की आज्ञा प्राप्त कर ली जाये। कल आज्ञा के मिलने पर वह उनसे मिलने जायेगा और उनको सभी बातें समझायेगा; यदि वहाँ सफलता न मिली तो छावनी के डाक्टर और उस सहृदय कमांडिंग अफसर से मिलेगा।

रामप्रसाद के सभी काम आवेग की झोंक में ही हुआ करते थे। इस समय भी इस निश्चय के करते ही चट उठकर मेज पर जाकर उसने घोष साहब को पत्र लिखने के लिए कागज निकाला। मेज पर तहसील के भवनों के सरकारी मकानों की वार्षिक मरम्मत के व्यय के अनुमान-पत्र पड़े थे। मार्च से पहले मरम्मत होकर यह रुपया व्यय होना था। उन अनुमान-पत्रों को भी उसे तुरन्त घोष साहब के पास भेजना था। उसे अब तक इनका ध्यान ही न था। उसने लिखा :

'श्रीमान्,

'तहसील के वार्षिक जीर्णोद्धार के इन तखमीनों पर शीघ्र कार्यवाही हो जाये, इस उद्देश्य से इन्हें डाक से न भेजकर चपरासी द्वारा आपकी सेवा में भेजते हुए निवेदन है कि मुझे एक अति आवश्यकीय काम से कल शाम शहर जाना जरूरी है, अतः यदि आप मुझे दो दिन की आकस्मिक छुट्टी और साथ ही उस छुट्टी में अपनी तहसील से बाहर जाने की आज्ञा प्रदान कर दें तो अनुग्रहीत हूँगा।

'मैं इसी अवसर पर आपसे कुछ मामलों पर परामर्श ले लेना भी चाहता हूँ, इसी लिए शहर आकर परसों प्रातः यदि आपको सुविधा हो तो आपसे कुछ मिनटों के लिए मिलना चाहूँगा। इसी चपरासी द्वारा उत्तर मिल जाये तो अतिशय कृपा होगी।

विनीत सेवक,
रामप्रसाद।'

इस बीच खड़खड़ाहट का शब्द निकट आता गया मानो कोई भारी पहियोंवाली गाड़ी आ रही हो। सुशीला ने खिड़की से झाँककर देखा। एक गाड़ी नहीं, आठ-दस बैलगाड़ियाँ एक साथ अहाते में आ रही थीं। उन पर बड़े-बड़े बक्से लदे थे; बिस्तरों के पुलिन्दे थे। चमड़े की छोटी-बड़ी अनेक पेटियाँ

थी। कुर्सियाँ थीं, मेजें थीं—चाय की, लिखने की, ब्रिज खेलने की और बहुत-से सोफा-सेट थे। करीने से बँधे और टाट से पैक किये उस सामान पर यत्र-तत्र बड़े-बड़े अँग्रेजी अक्षरों में छपे हुए लेबिल लगे थे—दर्शनलाल बी० ए०, एल-एल० बी०, तहसीलदार, तराईपुर।

पत्र लिखकर उसे एक बड़े लिफाफे में और कागजों के साथ रखकर उसने चपरासी को पुकारा। चपरासी के न आने पर बरामदे में आकर इधर-उधर देखा। बाहर की उस खलबली से बेखबर पति को उस मोटे लिफाफे को हाथ में लिये नित्य की भाँति गंभीले स्वर में चपरासी को पुकारते देख सुशीला की आँखें डबडबा आईं। तीन-चार बार पुकारने पर पीछे के दरवाजे से चपरासी आया।

रामप्रसाद ने कहा—नाजिर के पास जाओ और कहो कि एक आदमी इस बहुत जरूरी डाक को लेकर अभी घोष साहब के पास सदर भेजा जाये।

चपरासी ने लिफाफा ले लिया, किन्तु वहीं खड़ा रहा। सभी चपरासी शहर की ओर जाने के लिए उत्सुक रहते हैं, कोई सिनेमा देखने और कोई कपड़ा-लत्ता खरीदने और कोई वहाँ पढ़नेवाले अपने बच्चों से मिलने के लिए।

'अच्छा, क्या तुम्हारा भी शहर में कुछ काम है ?' रामप्रसाद ने कहा, 'तुम खुद जाना चाहते हो ? तुम्हीं जा सकते हो।'

चपरासी फिर भी अटका रहा। उसने गरदन उठाकर बाहर सामान से भरी और भी अधिक संख्या में आनेवाली गाड़ियों की खड़खड़ाहट की ओर मौन संकेत-भर कर दिया।

तब रामप्रसाद ने खड़खड़ाहट की ओर पहिली बार ध्यान देकर कहा—वह क्या है ?

'जी हुजूर, चपरासी ने कहा, 'सामान रखवाना भी तो है। नये साहब का जो सामान आ रहा है उसे—उसे रखवाने को आदमी चाहिए।'

'सामान ?' रामप्रसाद ने भी उचककर देखा और यह जानकर कि वह दर्शनलाल का सामान है, वह समझ गया कि जो हुक्म उसे आज मिला है वह दर्शनलाल को कम-से-कम आठ दिन पहिले मिल गया होगा। तभी तो चार्ज देकर वह यहाँ तक पहुँच भी गया है।

मेरे साथ यह अन्याय ? मुझे चार्ज देने के लिए कुछ भी समय नहीं दिया गया । कुछ क्षण भी नहीं और वह दरवाजे पर आ धमका । यह सोचते हुए क्रोध के एक आवेग से वह तिलमिला उठा, किन्तु चपरासी की उपस्थिति और अभी-अभी सोची हुई अपनी तरकीब को कार्य-रूप में परिणत करने के दृढ़ निश्चय से वह दूसरे ही क्षण अपने को संयत करने में सफल हुआ । उसने दृढ़ता से कहा—सामान के रखवाने से कहीं अधिक जरूरी ये सरकारी कागज हैं । तुम जाओ । झटपट शहर जाने के लिए खुद तैयार होकर आओ । लाओ, लिफाफा अभी यहीं छोड़ जाओ । हम तब तक इस पर मुहर लगाकर इसे डाक-बही पर चढ़ा देते हैं ।

अपनी छोटी-सी किन्तु सुखपूर्ण शान्त गृहस्थी के स्वर्ग-प्रासाद, उस क्वार्टर को चारों ओर से दर्शनलाल के नाम की, उन नयी-नयी, किसी शत्रु-सेना के चमचमाते टैंकों-सी पेटियों से घिरा देख और स्वयं सबको अपने ही-सा सौम्य समझनेवाले अपने पति को उस घेरे से बेखबर अपनी धुन में मस्त देख सुशीला के धैर्य का बाँध टूट गया था । वह न पति को उस आक्रमण से अवगत कराने का साहस बटोर पा रही थी और न उस आक्रमण के भय से छुटकारा ही पा रही थी, केवल चुपचाप बैठी टपटप आँसू बहा रही थी ।

अब पति को अविचलित और नित्य की भाँति दृढ़ देख उसने झटपट आँसू पोंछ डाले और आलमारी के किनारे, जहाँ मुहर करने की लाख और स्पिरिट लैम्प रखा रहता था, वहाँ जाकर उस लिफाफे को मुहरबन्द करने में पति की सहायता करने लगी ।

पिघली हुई लाख को लिफाफे के कोनों पर टपकाते हुए रामप्रसाद ने पत्नी से कहा—यहाँ क्या चपरासी, क्या ये पड़ोसी, सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं । किसी का विश्वास नहीं । इस लिफाफे पर एस० डी० ओ० का पता लिखा देखकर वह शक्की दारोगा मार्ग में कौतूहलवश इसे चपरासी से माँग-कर पढ़ने न लग जाये, इसलिए मुहर कर देना ठीक है ।

सुशीला अब तक भय और आशंका के कारण पति से आँखें चुरा रही थी, अब रामप्रसाद की आँखों में दृष्टि गड़ाकर बोली—बाहर सामान आ गया है । चार्ज लेने दर्शनलाल शायद स्वयं भी आते ही होंगे ।

रामप्रसाद ने दाँत पीसकर कहा—अपने चारों ओर व्याप्त यह जाल, यही छल-प्रपंच तो मेरी समझ में नहीं आता। सरकारी आदेश है कि मेरी जगह पर उसकी नियुक्ति हो, सो तो ठीक है; लेकिन उसे वह हुक्म मुझसे पहिले कैसे मिल गया ? इस चपरासी के लौटने तक वह न आये तो कुछ आशा है। किसी प्रकार तब तक उसे टालना है।

फिर तत्काल ही स्वयं तरकीब सोचकर वह बोला—धनुपुर की सहकारी समिति का वह मामला अभी तय नहीं हुआ। अभी दौरे पर उस ओर निकल जाऊँ और कल शाम तक लौटूँ तो जल्दी चार्ज देने की बात आसानी से टल जायेगी।

अपने माथे को सिकोड़कर वह फिर विस्फारित नेत्रों से कुछ सोचता रहा। उसकी उद्विग्नता देखकर सुशीला ने कहा—थोड़ा दिमाग को आराम दो। कल रात तुम उन कागजों से बारह बजे तक उलझते रहे। आज भी खाना खाकर आराम नहीं किया। अब तुरन्त ही कहीं बाहर जाना ठीक नहीं। अभी चार्ज न देना चाहोगे तो क्या वह जबरदस्ती करेगा ?

चपरासी को डाक देकर तथा शहर का थोड़ा-बहुत काम भी उसे सौंपकर जब रामप्रसाद बिस्तर पर लेटा तो अनेक भाँति की परेशानियों और चिन्ताओं से उसका मस्तिष्क मधुमक्खी के छत्ते की भाँति भनभना रहा था। उस स्थिति में सो जाना उसके लिए कठिन था।

थोड़ी देर में एक और चपरासी आकर आँगन में खड़ा हो गया। 'साहब कहाँ है ?' उसने कहा। उसकी मुद्रा पर किसी नवीन समाचार के शीघ्र व्यक्त करने की उतावली को स्पष्ट ही अंकित देख सुशीला ने अपने बच्चे के पालने की ओर संकेत करके फुसफुसाकर कहा—जरा धीमे से बोलो; बच्चा अभी-अभी सोया है। जग न पड़े। हाँ, क्या है ?

उसने कहा—नये तहसीलदार साहब आ गये हैं। दारोगाजी के पास बैठे हैं। पूछ रहे हैं कि साहब घर पर हैं ? मालूम होता है कि वह आज ही चार्ज लेना चाहते हैं।

अपने उमड़ते भावों को यथाशक्ति रोककर संयत भाव से सुशीला ने फिर कहा—कल रात तुम्हारे साहब देर तक काम करते रहे। अब जरा उन्हें भी

आराम करने दो। चार बजे आना, तब जो कुछ कहना हो बतला देना।

अन्दर आकर उसने देखा, सचमुच रामप्रसाद की आँख लग गई थी।

आरेठी गाँव में रामप्रसाद के द्वारा लज्जित किये जाने पर और दारोगा से यह जानकर कि वह उस सम्बन्ध में अपने एस० डी० ओ० से मिल आया है, सुखलाल चुपचाप नहीं बैठा रहा। ऐसे भी घर के बाहर नित्य किसी-न-किसी काम में लगे रहना उसका स्वभाव हो गया था। गाँव में खेती का काम उसकी विधवा मा और बड़ा भाई देख लेते थे। वह तो अपना अधिक समय इलाके के नेताओं, अफसरों और कुछ न हुआ तो साधु-सन्तों का काम करने—उनके लिए कहीं से घी, कहीं से चावल और कहीं से गेहूँ सस्ते भाव या मुफ्त में प्राप्त करने में बिताता था। बड़े अफसरों के लिए शिकार का प्रबन्ध करने में उसे सबसे अधिक आनन्द आता था, और उससे भी अधिक आनन्द गाँव के ताजे समाचार और अपराधों की कहानियाँ इलाके के हाकिमों तक पहुँचाने में। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने जीवन में मानो परमसुख की एकमात्र कुंजी को जान लिया था—वह कुंजी थी दूसरों के लिए जीना, उनके लिए नित्य कुछ-न-कुछ करते रहना। अफसरों के काम के अतिरिक्त कभी गाँववालों के काम करने में भी वह उसी लगन से जुट जाता था। किसी की सयानी लड़की के लिए अच्छे घर और वर की तलाश करना, लड़के के लिए बहू की खोज में निकल जाना, मुंडन, विवाह, तेरहवीं आदि के समय दावतों का प्रबन्ध करना, इस सब में वह अगुआ ही नहीं बन जाता वरन सारा उत्तरदायित्व भी अपने उपर ले लेता था।

कई दिन तक तो वह यही निश्चय नहीं कर सका कि नये तहसीलदार को प्रसन्न किया जाये अथवा किसी और उपाय से उससे निबट लिया जाये। तहसील के अन्य कोई भी अधिकारी रामप्रसाद से प्रसन्न नहीं हैं। यह बात जब उसकी समझ में आ गई तो उसने अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए दूसरे उपाय की शरण ली। एक सप्ताह की यात्रा का प्रबन्ध करके वह घर

से चल पड़ा। पहले घोष साहब के घर जाकर उसने चपरासियों से दुआ-सलाम की। यह जानकर कि घोष साहब उस इलाके का दौरा करने शीघ्र ही आनेवाले हैं उसने उस समय उनसे मिलने का प्रयत्न नहीं किया और दारोगा के परामर्श के ही अनुसार दर्शनलाल के इलाके में जाकर उसने उसे आनेवाली विपत्ति से अवगत कराया। दर्शनलाल स्थिति की गम्भीरता को समझ गया, कि यदि समय पर परिस्थिति न सँभाली गई तो इतने वर्षों की विभाग में बनी हुई उसकी प्रतिष्ठा इस आघात से चौपट हो जायेगी, उसे नौकरी से निकाला ही नहीं जायेगा, सरकार को धोखा देने के अपराध में कड़ा दंड भी मिल सकता है। सुखलाल का ऐसी विपत्ति के समय पर पहले ही उसे सूचित करने आना कितना उपयुक्त हुआ यह जानकर वह उस पुराने मित्र की सहृदयता से गद्‌गद हो गया। उसने खुले दिल से उसका स्वागत किया। दोनों ने वहीं बैठकर दो योजनाएँ बनाईं। एक थी रामप्रसाद को नितान्त पागल कहकर उस क्षेत्र के गाँवों की ओर से उसके विरुद्ध सरकार को संयुक्त अर्जी भिजवाना और दूसरी थी सिंचाई विभाग के सबसे बड़े अफसर को उस इलाके में शेर के शिकार के बहाने बुलाकर उस समय उनसे भी रामप्रसाद के विरुद्ध झूठी शिकायतें करना और इस शिकार के प्रबन्ध के बहाने घोष साहब से कहकर दर्शनलाल की कुछ समय के लिए फिर उस इलाके में नियुक्ति करना, जिससे मामले की सही-सही जाँच न हो सके।

गाँववालों की ओर से शीघ्र एक लम्बा आवेदन-पत्र बनाया गया। उस पर सैकड़ों हस्ताक्षर और हजारों अँगूठे लगवाने का जिम्मा सुखलाल ने लिया। आवेदन-पत्र का गाँववालों को उद्देश्य बतलाया गया—नहर के पानी को गाँव में लाने का स्थायी प्रबन्ध करना। उस अर्जी में वर्तमान तहसीलदार रामप्रसाद के विरुद्ध अनेक आरोप थे कि वह प्रजा को तंग करता है, प्रत्येक काम के लिए रुपए माँगता है, लोगों को मारने दौड़ता है, तुनुकमिजाज है, पागलों का-सा अभद्र व्यवहार करता है, आदि। अन्त में निवेदन किया गया कि पुराने लोकप्रिय तहसीलदार दर्शनलाल को पुनः तराई के उस इलाके में नियुक्त कर दिया जाये।

सिंचाई विभाग के नये बड़े साहब शिकार के शौकीन थे, यह बात दर्शन-

लाल को ज्ञात थी। महाशय सुखलाल में शिकार की टोलियों का प्रबन्ध करने की अनूठी क्षमता थी; यह तो उसका मानो पैतृक व्यवसाय था। नैपाल की तराईवाले सीमान्त में एक जंगल की चौकी पर उसके पिता जंगल विभाग के छोटे मुहर्रिर थे। उसी चौकी के निकट दर्शनलाल ने सोलह वर्ष की अवस्था में सातवीं कक्षा की पढ़ाई समाप्त की थी। अपनी किशोरावस्था तक उसने गाँव का जीवन देखा ही नहीं था। अपने बाल्यकाल के वे सुन्दर दिन उसे अभी तक याद थे। प्रतिवर्ष बड़े दिन के अवसर पर शिकार पार्टी के प्रबन्ध के लिए जंगल विभाग के अफसरों के तम्बू उस चौकी के पास लग जाते थे। कभी वाइसराय शिकार को आते थे तो कभी लाट साहब और कभी पल्टन के कोई जंगी लाट। कभी-कभी तो बड़े दिन से होलियों तक शिकार खेलने-वालों की अनेक टोलियों के लिए महीनों पहिले डाक-बँगला सुरक्षित कर दिया जाता था। हाँका करनेवालों को रुपया पेशगी दे दिया जाता था और बछड़े मोल ले लिये जाते थे। उन शिकारियों के आगमन से जंगल में मंगल हो जाता था। गाँव के सैकड़ों लोग आकर चौकी के चारों ओर झोंपड़ियाँ बना लेते थे। साल की ऊँची-ऊँची शाखाओं पर कुर्सियाँ बाँधकर यत्र-तत्र मचान बन जाते थे। हाथियों की टोलियों पर गोरी मेमें चुस्त ब्रिचेज़ पहनकर साहब लोगों के पीछे-पीछे चलती थीं। विलायती फलों के टीनों, डबल रोटियों और बिस्किटों की भरमार हो जाती थी। सुखलाल को भी कभी-कभी हाथी की सवारी करने का अवसर मिल जाता और कभी साहब लोगों के काँच के गिलासों में चाय पीने और बिस्किट खाने को भी मिल जाते थे।

बड़े अफसरों से किस प्रकार 'सरकार', 'हुजूर', 'गरीब-परवर', 'माइ-बाप' कहकर बात की जाती है; 'बहुत अच्छा', 'बहुत खूब', 'जो हुक्म सरकार' कह-कर कैसे उनकी प्रत्येक बहक और सनक को पूर्ण रूप से समर्थन करना होता है, यह सब उसने अपनी किशोरावस्था में ही अपने पिता से सीख लिया था। एक बार शिकार करते समय शेर को निकट आते देख पल्टन के एक कप्तान की मेम घबड़ाहट के कारण मूर्च्छित होकर मचान में से गिरने लगी थी। उसके पिता ने, जो पास ही हाथी पर थे, फुर्ती से निकट जाकर उसे गिरने से बचा लिया था। उसी मेम ने शिकार के बाद अपनी बन्दूक उन्हें इनाम में दी

थी। लाट साहब ने भी उन्हें एक जेब-घड़ी उपहार में दी थी। ये दोनों चीजें सुखलाल को बहुत पसन्द थीं और अब भी वह उन्हें उन अनेक प्रमाणपत्रों के साथ, जो साहब लोग उसके पिता को प्रदान कर गये थे, नये अफसरों के आने पर दिखाने से न चूकता था, यद्यपि उसके पिता को मरे पूरे बीस वर्ष हो चुके थे।

पिता की उसी जंगल की चौकी में मृत्यु हो जाने पर रेंजर ने उसके प्रति दया करके उसे चौकी में रहने की आज्ञा दे दी थी। उस साल ग्रीष्म ऋतु में आग बुझानेवाले पतरौलों की भर्ती के समय उसका नाम भी जंगल के पतरौलों में लिखवा दिया था। पहले-पहले वह जीवन उसे इतना पसन्द आया कि उसने अपने गाँव जाने का नाम न लिया। तीन वर्ष उस चौकी में बिताकर वह गाँव लौट आया। अरेठी में उसके पिता ने जंगल विभाग से प्रार्थना करके जो बहुत-सी परती जमीन प्राप्त की थी, उसकी मा और बड़ा भाई उस जमीन की देख-रेख करते थे। उस वर्ष जब वह अपनी घरवाली का गौना कराकर एक मास की छुट्टी उस गाँव में बिता चुका तो फिर उसका मन जंगल की सुनसान चौकी पर अकेले जाने को न हुआ। उसकी मा ने भी जंगल की उस मनहूस नौकरी को, जहाँ उसके पिता की मृत्यु हुई थी, छोड़ देने की सम्मति दी। सुखलाल के दिन गाँव में आनन्द से कटने लगे। बाप की बन्दूक का लाइसेंस उसने अपने नाम करवा लिया और तराई की तहसील में अपने पिता के परिचित रेंजर के आने पर उसका उनके घर आना-जाना हुआ। उन्हीं के द्वारा तहसील के और अफसरों से भी परिचय बढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया पुराने अफसर बदलते गये और नये आते गये, किन्तु इससे सुखलाल का उन नये अफसरों के पास आना-जाना कम न हुआ। तहसील के चपरासी, बाबू और छोटे कर्मचारी सभी उसे जान गये थे। वह किसी को भाई, किसी को चाचा और किसी को ताऊ कहकर पुकारता। अफसरों को 'सरकार' और 'हुजूर' कहकर सम्बोधन करता और समय पड़ने पर उनके लिए तहसील के वैतनिक कर्मचारियों से भी अधिक परिश्रम कर लेता था। वह ग्रामीणों के मध्य तो एक शहरी की भाँति सभ्य और सुसंस्कृत बनकर रहता और शहरी लोगों में सीधा-सादा देहाती बनकर। दर्शनलाल को जब ज्ञात हुआ कि

सुखलाल अपने और अपने पिता के प्रमाणपत्रों को भी साथ लेकर आया है तो उस दूसरी योजना का बनाना सुगम हो गया। उसने सिंचाई विभाग के सबसे बड़े अधिकारी इंजीनियर गिबिन से मिलने का उसे परामर्श दिया। यह भी सुझा दिया कि गाँव में शेर के द्वारा किये गये उत्पातों की बात छेड़कर उससे गाँव को मुक्त करने की सहायता की याचना उनसे करनी चाहिए।

सुखलाल नयी धुली मिरजई, साफ धोती और सफेद उलटी नौका-जैसी टोपी पहनकर तीसरे दिन प्रातःकाल गिबिन साहब के बँगले पर पहुँच गया। कल्लूखाँ नाम के जिस अर्दली का नाम उसको दर्शनलाल ने बतला दिया था उसको दो रुपए तत्काल दक्षिणा देकर उसने एक कोरे कागज का टुकड़ा माँगा और उस पर अपना नाम और पता लिखकर मिलनेवाले अन्य व्यक्तियों के विज़िटिंग कार्डों के साथ उस कागज को भी साहब के पास भिजवा दिया। इस बीच अर्दली से वह अपने गाँव पर लगातार होनेवाले शेर के आक्रमणों की कपोल-कल्पित बातें करता रहा।

जब उसे बुलाया गया तो उसने गाँवों में फैले शेर के आतंक की कल्पित बातें साहब से भी दुहराईं और उन्हें गाँव की शीघ्र सहायता करने की प्रार्थना की। साहब ने झट नकशा निकालकर गाँव का नाम और पता पूछा।

उस गाँव को ढूँढ़ लेने पर कुछ सोचकर कहा—वहाँ हमारे शिकार के लिए बन्दोबस्त हो सकता है?

इस प्रश्न के लिए सुखलाल पहले ही से तैयार था। उसने झट कहा—सरकार, हम गाँववाले हुजूर के शिकार का मुकम्मिल बन्दोबस्त कर लेंगे। ये देखिए हम लोगों ने पहले भी कई बार ऐसे बन्दोबस्त किये हैं।

यह कहकर सुखलाल ने जंगी लाट का सर्टिफिकेट, जो उसके पिता के नाम का था, पहिले पेश किया। उसे देखकर साहब की बाछें खिल उठीं। वह कुछ और पूछना चाहते थे कि सुखलाल ने वाइसराय और गवर्नर के प्रमाणपत्र उनकी ओर खिसका दिये।

गर्मी के मौसम में साहब शेर का शिकार करने आयेंगे, यह बात निश्चित हो गई। उन्होंने सुखलाल का पता लिख लिया और निश्चित तारीख की सूचना बाद में लिख भेजने का आश्वासन दिया।

उनसे मिलने के उपरान्त सुखलाल फिर दर्शनलाल के कहे अनुसार घोष साहब से मिला। वह उसे पहले ही से जानते थे। मिलने पर उसने उन्हें यह नहीं बतलाया कि उसी के निमंत्रण पर सिंचाई विभाग के बड़े इंजीनियर अरेठी गाँव में गर्मियों में शेर के शिकार को आयेंगे। बात उसने इस प्रकार आरम्भ की मानो वह शिकार के उस आयोजन से अत्यधिक परेशान हो और मानो घोष साहब को पहिले ही से उस शिकार के कार्यक्रम की बात ज्ञात हो।

उसने कहा—साहब, मैं तो यही प्रार्थना करने आया हूँ कि अब कैसे हमारे गाँव की इज्जत बचे और इतने बड़े साहब के शिकार का क्या प्रबन्ध हो। वे कहते हैं कि मई के महीने में आयेंगे। कुल दो महीने शेष हैं। गाँव-वालों को सारा प्रबन्ध करना होगा। हाँका करनेवालों को अभी से तैयार न किया जाये तो बड़ी हँसी होगी। हाथियों का, भैंसों का, बैयरे-खानसामों का—सभी चीज का तो बन्दोबस्त होना चाहिए। मेरे तो हाथ-पाँव फूले जाते हैं।

सीधे स्वभाव के घोष साहब ने चौंककर कहा—हैं! क्या कहते हैं महा-शयजी आप? गिबिन साहब से मिलकर आ रहे हैं? क्या वे अरेठी गाँव में शेर का शिकार करने जायेंगे? इसी अगली मई में? अरे, मुझे तो कुछ भी पता नहीं।

सुखलाल उनकी बातचीत का यह ढंग देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। वह ऐसा ही कहेंगे—ठीक यही बात दर्शनलाल ने पहिले ही अपने अनुमान से उसे बतला दी थी।

सुखलाल ने उसी प्रकार भारी मन से कहा—अन्नदाता, मैं तो उनके पास से सीधे हुजूर के पास सूचना देने आ रहा हूँ। हुक्म फरमायें—कहाँ-कहाँ जाऊँ,-और क्या-क्या करूँ? मैंने सुना है कि सरकार खुद उस ओर दौरे पर तशरीफ ला रहे हैं। यह बातें हुजूर के सामने गाँव में तय हो जायें तो अच्छा है, क्योंकि सरकार ने वे जो नये तहसीलदार साहब भेजे हैं, उनसे तो हुजूर ही कुछ कहें तो कहें। हमें तो वे काट खाने दौड़ते हैं। उनके पास जाते भय लगता है। बाप रे, ऐसा भयानक स्वभाव पाया है कि....

घोष साहब ने उसकी पूरी बात नहीं सुनी, कुछ सोचकर कहा—हाँ तो महाशयजी, आप क्या कहते हैं? इस काम के लिए तो आप-सा अनुभवी उस

इलाके में और है ही कौन ? किस-किस को आप बुलाना चाहते हैं ! मैं तह-सीलदार को चिट्ठी लिख देता हूँ कि वह उन सब लोगों को बुला लायें। सब काम वह सँभाल लेंगे।

सुखलाल ने सूखी हँसी हँसकर कहा—हुजूर, वह सँभाल सकेंगे ? नहीं साहब, नहीं। न जाने क्या सोचकर गिबिन साहब ने अब तक आपको भी अपने इस शिकार का प्रोग्राम नहीं बताया। आजकल का समय है। सरकारी काम और बात है, और शिकार और बात। वह शायद सरकारी खर्चे पर शिकार करना पसन्द न करते हों। सरकारी कर्मचारी तहसीलदार को भी तकलीफ न देना चाहते हों। बड़े अफसर हैं, उनकी बड़ी बातें होती हैं। मैं तो हुजूर को अपना ही माइ-बाप और सरकार की अपने ऊपर सदा ऐसी कृपा समझकर यहाँ तक चला आया। अर्ज है कि बड़े साहब का कार्यक्रम गुप्त रहे तो अच्छा है। हाँ, एक प्रार्थना है कि यदि हुजूर अपने इस दौरे के समय दर्शनलालजी को भी बुला सकें तो हमें शिकार के प्रबन्ध की बहुत-सी बातें तय करने में बड़ी सहायता मिल जायेगी।

घोष साहब पहले तो इस प्रस्ताव से बड़े सशंक हुए। उसे मानने को बिलकुल तत्पर न हुए। अब सुखलाल ने उन्हें समझाया कि अरेठी गाँव की उस अर्जी पर पूरी जाँच होने के लिए दर्शनलालजी के समय के कागज ढूँढ़ने पड़ेंगे और उनको सरकारी खर्चे पर उस जाँच के समय उपस्थित रहने की भी आज्ञा दी जा सकती है तो बात उनकी समझ में आ गई। वह इस ग्रामवासी सुखलाल की तीव्र बुद्धि की मन-ही-मन प्रशंसा करने लगे। उन्हें अपनी बड़ी-बड़ी उपाधियाँ उस समय उसके सहज-ज्ञान के सम्मुख फीकी लगने लगीं।

'ठीक है,' उन्होंने कहा, 'महाशयजी, आप जाइए। मैं दर्शनलालजी को साथ लेता आऊँगा। आप अपने खास आदमियों को भी बुला रखिए, जिसमें शिकार की तैयारी का प्रबन्ध शीघ्र आरम्भ किया जा सके।'

कुर्सी से उठते हुए महाशयजी ने सकुचाते हुए कहा—हुजूर, तो इंजीनियर साहब के प्रोग्राम की बात कहीं प्रकट न हो। नहीं तो मैं कहीं का न रह जाऊँगा।

घोष साहब ने स्वीकृति में केवल सिर हिला दिया।

इस प्रकार घोष साहब अपने दौरे की सूचना इलाके के तहसीलदार को दिये बिना ही दर्शनलाल को लेकर कुछ दिन बाद अरेठी गाँव पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर ही उन्होंने रामप्रसाद को बुला भेजा था, किन्तु जैसा पहिले वर्णन हो चुका है, उसके एकाएक बीमार हो जाने से उन्हें इंजीनियर के आयोजित शिकार की बात रामप्रसाद से कहने का अवसर नहीं मिला।

बड़े इंजीनियर के शिकार के कार्यक्रम की बात प्रेमशंकर को ज्ञात हो गई थी। वह उस अवसर पर सही बात प्रकट करने की तैयारी में था। उधर राम-प्रसाद के मन में प्रतिहिंसा की भावना न थी, किन्तु उसके पड़ोसी सभी सर-कारी कर्मचारी उससे डरे हुए थे। वे रामप्रसाद से प्रकटतः मैत्री करके उसे धोखे में रखकर चुपचाप उससे शीघ्र मुक्ति पाने की उस बड़ी योजना में लगे थे, जिसका उसके विरुद्ध गाँववालों की ओर से सुखलाल द्वारा दी गई संयुक्त अर्जी में बीजारोपण हो चुका था।

जब वह अर्जी एस० डी० ओ० के पास जाँच के लिए आई तो उन्होंने तहसील के पुराने अफसरों से राय लेना उचित समझा। डाक्टर, रेंजर और दारोगा को अपने घर बुलाकर हालचाल पूछा। रामप्रसाद के द्वारा अपने पीटे जाने की बात दारोगा ने आँखों में आँसू लाकर एस० डी० ओ० को सुना दी। उन्हें अपनी सज्जनता का बोध कराते हुए कह भी दिया कि वह चाहते तो अपने ऊपर हुए उस हमले की बात अपने रोजनामचे में लिख देते और कानूनी कारवाई करते, किन्तु वह पागल के पीछे स्वयं पागल बनना होता।

एस० डी० ओ० ने उसी अर्जी पर रामप्रसाद को डाक्टरी निरीक्षण में रखे जाने की और उसके स्थान पर तुरन्त दर्शनलाल के भेजे जाने को सिफा-रिश कर दी और दर्शनलाल को बुलाकर समझा दिया कि बड़े दफ्तर से हुक्म आते ही उसे किस प्रकार चुपचाप जाकर चार्ज लेना चाहिए। दर्शन-लाल के लिए यह तबादिला मुँहमाँगी दक्षिणा-सा था, किन्तु उसने जब देखा कि अब तबादिला निश्चित है तो वहाँ जाने की बाहरी मन से अनिच्छा प्रकट की। कहा कि उस छोटी तहसील में जहाँ वह चार वर्ष पहिले रह चुका, अब इतना 'सीनियर' होने पर भी उसका भेजा जाना उसके प्रति अन्याय है।

घोष साहब ने, जो उसकी बात को न समझ सके थे, विवशता प्रकट की, कहा कि छोटी-बड़ी सभी तहसीलें एक-सी हैं। वह बड़े साहब को पत्र लिख चुके हैं। अब उसे वहाँ जाना ही चाहिए। सरकारी आदेश का पालन होना चाहिए।

'आज्ञा है तो जाता तो हूँ,' दर्शनलाल ने कहा, 'किन्तु आप मेरे लिए एक काम कर दीजिए। मुझे उस तहसील में वेतन के अतिरिक्त और महकमों की तरह तराई का विशेष भत्ता भी दिला दीजिए।'

घोष साहब को यह सुझाव मानना पड़ा। वेतन के अतिरिक्त दर्शनलाल को पचास रुपया 'स्पेशल तराई अलाउन्स' मिलने के लिए उन्होंने लिख दिया।

सुशीला पलंग के निकट आकर रामप्रसाद की शान्त मुद्रा तथा उसकी बन्द पलकों की ओर कुछ देर खड़ी देखती रही, फिर धीरे से उसने उसके माथे को छू लिया। रामप्रसाद उनींदी आँखों को मलता हुआ जब उठ बैठा तो सुशीला तब भी उसे ताकती रही। उसके हाव-भाव में, उसकी उन सरल चेष्टाओं में तथा उसकी मुद्रा में कहीं किसी रोग या विभ्रान्ति का चिन्ह न पाकर सुशीला को सन्तोष हुआ। उसने सोचा, नहीं वह पागल नहीं हुए हैं, बिलकुल नहीं। लेकिन तब भी मुझे यह शंका न होनी चाहिए थी। ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता। फिर अपने ही से तर्क करके वह मन-ही-मन सोचने लगी, सोचा था कि अब बुरे दिन समाप्त हुए और सुख का वातावरण आ गया, किन्तु बात ठीक विपरीत हुई, अब तो उन नयी विपत्तियों का आरम्भ हुआ है जिनकी भयानक गम्भीरता की कल्पना करने में बुद्धि नकारा रही है।

उसकी आयु केवल बीस वर्ष की थी। अभी सारा जीवन उसके सम्मुख था, किन्तु उसे ऐसा लगता था मानो वह जीवन का अर्थ ही भूल गई। आज उनका क्वार्टर बन्दीगृह-सा बन गया था। बाहर दर्शनलाल के आदमी उसके सामान पर पहरा क्या दे रहे थे उसके पति को ही पागल साबित करके फिर

पकड़कर बाँध देने की योजना में लगे थे।

उसने दूसरी बार फिर अपने पति के कन्धे को छुआ, मानो इस प्रकार छूने में उसमें साहस का संचार हो रहा हो और कहा—अभी दर्शनलाल का आदमी आया था; वह आज ही आपसे चार्ज लेना चाहता है। मैंने उसे चार बजे आने को कहला दिया है।

पत्नी की बात सुनकर रामप्रसाद ने माथा सिकोड़ लिया। वह उठा था, अब फिर चारपाई पर चित लेट गया। उसने एक लम्बी साँस ली। सुशीला अब भी ठीक उसकी आँखों में अपनी नजर गड़ाये थी। वह बोला—यह केवल चार्ज लेने की ही बात नहीं है सुशीला, डाक्टर मुझे अपनी हिरासत में लेकर, सम्भव है बाँधकर भी सदर अस्पताल ले जाये। कैसा अन्धेर है? लेकिन सुशीला, तुम देख लो, क्या सचमुच तुम मुझे पागल समझती हो? एक बात है, मुझे जल्दी ही गुस्सा आ जाता है। वैसे न मैं उस दिन, जब दारोगा से गुत्थम्-गुत्था हुई थी, पागल था और न अब पागल हूँ। उस दिन तुमने मेरा कहना नहीं माना था। मैं तुमसे कुछ माँग रहा था, तुम मुझे विभ्रान्त समझ मेरी बात टाल गई थीं। तुम्हें क्या हो गया था? बताओ, यदि सचमुच तुम भी मुझे इन सब लोगों की भाँति उस दिन की तरह पागल समझने लगी हो तो मैं कहाँ रहूँगा? सच कहता हूँ तब मैं जरूर अपना होश-हवास खोकर पागल हो जाऊँगा। यदि तुम्हें मेरे पागल होने का जरा-सा भी सन्देह हो तो मुझे बता दो।

सुशीला ने नाक बहाकर जोर की साँस ली। उसके विकृत होते हुए कोमल कपोल भावावेश से काँप-से गये। गला रुँध गया। वह कुछ न बोल सकी। कभी पलक गिराती और कभी खोलती वह अपनी उमड़ती हुई आँखों के आँसुओं को रोकने लगी। रामप्रसाद उसकी ओर देखता रहा। फिर उसी प्रकार चित लेटा छत की ओर दृष्टि करके बोला—बताओ सुशीला, नहीं तो मैं तो यह रहा। लेट तो गया ही हूँ। अब लेटा ही रहूँगा। कोई चार्ज लेने आये या न आये। पागल तो हूँ ही, अब इस चारपाई से मैं उठने का नाम न लूँगा।

अपनी इस सच्ची भावना को व्यक्त करके उसने आँसुओं से डबडबाती आँखों से सुशीला की ओर देखा। सुशीला भी रो रही थी। पति से दृष्टि

मिलाते ही वह धम से चारपाई पर गिर-सी गई, फिर दोनों हाथों से पति को बिठाने का प्रयत्न करती हुई वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

अब दोनों बिना कुछ कहे एक-दूसरे को ताकते हुए रोने लगे। कुछ क्षण तक किसी का भी स्वर न फूटा। बड़े प्रयत्न के बाद गला साफ करके रामप्रसाद ने ही कहा—बताओ, एक तुम ही पर मुझे भरोसा है और तुम ही आड़े समय मुझे ठीक-ठीक न समझ सको तो कौन समझेगा ?

निरी बालिका की भाँति सिसक-सिसककर सुशीला ने कहा—मैं समझती हूँ, आपको अच्छी प्रकार से समझती हूँ।

सुशीला की नाक के अन्दर अब भी रुलाई के कारण एक अजीब पिर-पिराहट हो रही थी। बरबस उस रुलाई को रोककर उसने साड़ी के छोर से अपने आँसू पोंछते हुए फिर कहा—उस दिन मेरी मति मारी गई थी। तब मैं समझती थी कि ये पड़ोसी लोग भलेमानुप हैं। मुझे मालूम न था कि ये सब आपके पीछे पड़े हैं।

रामप्रसाद ने भी गद्गद होकर रुँधे कंठ से कहा—सुशीला, तुम मुझे निरोग समझता हो तो सब ठीक है। मैं सब कष्ट, सब प्रकार की मुसीबतें झेल लूँगा। मैं चाहता हूँ कि सरकारी काम सच्चाई से करूँ। ये नहीं करने देते। मैं चाहता हूँ, बेईमानी न करूँ। ये लोग मुझे बेईमान बनाने पर तुले हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि ये लोग अपने कर्त्तव्य को समझें, किन्तु ये नहीं समझते। मैं इनको सुधारने का प्रयत्न नहीं कर सकता। जाने दो; अब तो मेरी अभिलापा है कि स्वयं कुमार्ग पर न जाऊँ। ये लोग मुझसे छेड़-छाड़ न करें, लेकिन ये नहीं मानते। बस, यही सारे झगड़े का मूल है; किन्तु मेरा विश्वास है कभी-न-कभी मेरा पक्ष विजयी होगा। कब तक संघर्ष चलेगा, कहा नहीं जा सकता। तुम इस संघर्ष को समझो और मुझे सहारा देती रहो तो मैं अवश्य पार हो जाऊँगा। अकेले इस अन्धकार में कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ?

कुछ क्षणों की निस्तब्धता के उपरान्त घुटनों पर सिर धरे सुशीला ने कहा—मैं कहती हूँ आप इस नौकरी से इस्तीफा क्यों नहीं दे देते ? ये लोग तभी तक तो आपको परेशान कर सकते हैं जब तक आप सरकारी नौकर हैं। जिस समय आप इस बन्धन से अपने को मुक्त कर लेंगे तो आपको बीमार बतलाने और

बाँधकर सदर अस्पताल ले चलनेवाले ये सारे हुक्म धरे रह जायेंगे। हम लोग तब अपनी इच्छानुसार इनसे बचकर सकुशल घर तो चले जा सकते हैं।

रामप्रसाद ने एक कुहनी पलंग पर टेक ली, दूसरे हाथ की हथेली को अपने मुँह पर रखकर कुछ देर वह छत की ओर देखता रहा और सुशीला की इस युक्ति पर सोचता रहा, फिर बोला—तुम्हारा कहना ठीक है, किन्तु अभी वह समय नहीं आया। सभी ईमानदार सरकारी कर्मचारी अपने बेईमान साथियों से इसी प्रकार परेशान होकर यदि नौकरी छोड़ने लगें तो सुधार कैसे होगा? अभी नहीं, यदि कहीं आशा न दीख पड़े तो यही करूँगा। तुम्हारी समझ में अभी शायद मेरी यह योजना न आये लेकिन तुम मेरी पूरी बात फिर भी सुन लो। मैं सोचता हूँ कि यदि कहीं विधाता है और उसके यहाँ न्याय भी है तो वह मार्ग भी बतलायेगा। वह सन्मार्ग की ओर जाने का प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति के प्रयत्न में सहायक होगा। उसे अन्धकार में न छोड़ेगा। अभी तो मुझे एक तरकीब समझ में आ रही है। तुम दो कम्बल लाकर दो चादरें और दो कमीज मेरे बैग में रख दो और थोड़ा कुछ नाश्ता भी। मैं अभी चल देता हूँ। पहले खटिकों के गाँव जाता हूँ। वहाँ कुछ उपाय करूँगा। बैलगाड़ी करके सहकारी समिति के गोदाम जाकर वहीं रात बिताऊँगा। कल तड़के उसी मार्ग से सदर चला जाऊँगा। पल्टन के डाक्टरों से मिलकर अपने स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र लेकर घोष साहब से मिलूँगा। शायद वे मान जायें।

'कभी न मानेंगे।' सुशीला ने कहा, 'रात की इस दौड़-धूप से कहीं आपकी तबीयत खराब न हो जाये।'

'नहीं-नहीं,' रामप्रसाद ने कहा, 'उस बार तो दिन-भर धूल और धूप में निराहार रहना पड़ा था और साइकिल चलानी पड़ी थी। आज साइकिल नहीं ले जा रहा हूँ।'

सुशीला ने कहा—साथ में कौन जायेगा? चपरासी तो अब तिनका भी न उठायेंगे।

रामप्रसाद ने कहा—चपरासी की क्या जरूरत? खाना तो कुछ साथ रख दोगी। न हो तो दो-चार पराठे जल्दी सेंक दो। तुम्हारे उस पाण्डवों के-जैसे अक्षय पात्र में तो दो जून क्या, कई दिन का भोजन निकल आयेगा।

बाहर फिर किसी के आने की आहट पाकर रामप्रसाद चुप हो गया। सुशीला के संकेत करने पर लेट गया। उसे लेटते देख सुशीला उस कुसमय के विघ्न-कर्ता से पति की रक्षा करने के लिए उसे चादर उढ़ाने का उपक्रम करने लगी। पत्नी द्वारा अपने को एक निरे बालक की भाँति सुलाते देख रामप्रसाद की गीली आँखें एक विनोदपूर्ण भावना से चमक उठीं। कुछ ही घड़ी पहले की निबिड़ उदासी न जाने किस कोने में सिमटकर रह गई। सिर तक चादर खींचकर उस विनोद में पत्नी का साथ देते हुए उसने एक बनावटी खर्राटा लेकर सुशीला को भी मुस्कराने के लिए विवश कर दिया।

विघ्नकर्ता आहट पाकर उसी कमरे के बाहर आ खड़ा हुआ; फिर उसने किवाड़ खटखटाये। आँचल ठीक करके सुशीला ने स्वयं ही किवाड़ खोले। वह कोई अपरिचित लड़का था। उसकी सूखी निस्तेज मुद्रा ऐसी उदास और फीकी-फीकी-सी थी मानो उसे कई दिन से पर्याप्त भोजन न मिला हो। बचपन में ही उसके माथे पर बूढ़ों के-से बल पड़ गये थे। उसका सिंघाड़े के फल-जैसा नुकीला कण्ठ बात करते-करते ठोढ़ी से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। कपड़े भी वैसे ही अस्त-व्यस्त थे। सुशीला को देखकर वह एकाएक किसी महिला के सम्मुख आ जाने से बच्चों की भाँति ऐसा खिसिया गया कि मानो कोई सामाजिक अपराध कर बैठा हो।

सुशीला ने ही पूछा—क्या काम है?

'साहब हैं? तहसीलदार साहब।' उसने लड़कियों की-सी पतली आवाज में कहा, 'मैं पुराने साहब से मिलने आया हूँ।'

सुशीला पुराने शब्द से चिढ़ गई; उसने सोचा वह पुराना विशेषण दर्शन-लाल के लिए ही उपयोग किया गया है। झट किवाड़ बन्द करते हुए बोली—मुझे नहीं मालूम।

'माजी!' लड़के ने बड़ी व्यग्रता से कहा, 'क्या सचमुच उनकी तबीयत इतनी खराब है? क्या सचमुच उनका तबादिला हो गया?'

अधखुले किवाड़ों से ही सुशीला ने कहा—आप कौन हैं? क्या नाम है आपका?

'प्रेमशंकर।' लड़के ने कहा और उसका गोल-गोल नुकीला कंठ इस उत्तर

के देते ही गट से इंच-भर ऊपर आकर फिर गट से नीचे उतर गया।

रामप्रसाद प्रेमशंकर नाम के सुनते ही चादर फेंककर उठ बैठा और किवाड़ पर आ खड़ा हुआ। सुशीला को हट जाना पड़ा। रामप्रसाद उसी प्रकार धोती-बनियान पहने दरवाजे पर खड़े-खड़े बोला—तुम्हारी बड़ी उम्र है। कैसा संयोग है, मैं अभी कुछ ही पहिले लेटे-लेटे तुम्हें ही याद कर रहा था। जरा मेरा एक झोला तो ले चलो। मैं पन्द्रह-बीस मिनट बाद आऊँगा। कहीं बाहर जाना है। काम ऐसा है कि चपरासी तक को बतलाना या साथ ले जाना ठीक नहीं। इसलिए मैं किसी विश्वासपात्र साथी की तलाश में था।

प्रेमशंकर अब तक डरा-डरा-सा खड़ा था, अब आश्वस्त होकर उसने कहा—मैं तो यह सुनकर आया हूँ कि आप बीमार हैं और दर्शनलाल चार्ज लेंगे। आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या? महाशयजी दर्जनों गाँववालों को लेकर दर्शनलाल का स्वागत करने स्टेशन तक गये थे। यही नहीं, वह कहते थे कि आप....

इतना कहकर प्रेमशंकर कुछ सकुचाया। कहना चाहता था कि आप पागल हो गये हैं, किन्तु रामप्रसाद को अपनी ओर देखते हुए न पाकर चुप हो गया। रामप्रसाद की दृष्टि उस समय चबूतरे के पासवाले नीम के पेड़ पर थी। दर्शनलाल के साथ आये हुए दो पुरबिए नौकर पेटियों पर चढ़कर उस पेड़ की, जो अभी दस फुट भी ऊँचा न हो पाया था और जिसकी वह बड़े यत्न से रक्षा करता था, सुकुमार डालियों को तोड़कर दातून बनाने में तल्लीन थे। पहले तो रामप्रसाद की इच्छा उन्हें रोकने की हुई, किन्तु फिर यह सोचकर कि अब इस मकान और इन पेड़ों पर उसका अधिकार ही क्या रहा, वह चुप रहा। प्रेमशंकर की ओर जब उसने दृष्टि फेरी तो उन्हीं दोनों की ओर संकेत करते हुए उसने कहा—ये बातें फिर हो जायेंगी। इस समय इन सब की आँख बचाकर चले जाओ। हाँ, यह बताओ तुम मेरी प्रतीक्षा कहाँ पर करोगे? चाँदमारी के पीछेवाली सड़क पर कहीं मिलना....

वह बोला—शफीक के बारूदखाने के पास। उसका मुआइना करेंगे आप?

रामप्रसाद ने कहा—ठीक है, वहीं मिलना, लेकिन उसे न बतलाना।

प्रेमशंकर ने कहा—मैं पागल नहीं हूँ।

पागल शब्द को सुनकर रामप्रसाद ने उसी सहज उच्छृङ्खल भाव से, जिसमें अब तक वह वार्त्तालाप कर रहा था कहना चाहा, तुम नहीं हो पागल । पागल तो मैं हूँ । किन्तु क्षण-भर में अपनी जिह्वा पर आये हुए उन शब्दों को मानो फिर निगलकर सहसा अपने पद का ध्यान आने पर वह सँभल गया । उसने मन-ही-मन कहा, इस लड़के को मुँह लगाना ठीक न होगा । और गम्भीर होकर बोला—प्रेमशंकरजी, आपको यह कष्ट दे रहा हूँ । हाँ, आपको इस समय किसी और काम से अन्यत्र तो जाना नहीं था ? यहाँ तक आने में मुझसे आपका कोई खास काम तो न था, यह पूछना तो मैं भूला जा रहा हूँ ।

'नहीं साहब, नहीं ।' प्रेमशंकर ने रामप्रसाद के भाव-परिवर्तन को बिना तोड़े उसी उत्साह से कहा, 'मेरा अपना कुछ काम न था, फिर आपके दिये इस काम से बड़ा मेरे लिए और काम क्या होगा ?'

फिर कुछ निकट आकर और भी धीमी आवाज में उसने रामप्रसाद के ही शब्दों को दुहराकर कहा—लेकिन साहब, मेरी वह बात तो रही जाती है । क्या यह अपना तबादिला आपने स्वयं ही करवा मँगाया या दर्शनलाल कोशिश करके यहाँ आकर आपको हटाना चाहता है ? सच कहता हूँ साहब, मैं सीधा नहीं हूँ, न मुझे किसी का डर है । अगर इसने ऐसी चाल आपसे चली है तो मैं इसका काम तमाम कर दूँगा । पक्का रिश्वतखोर कहीं का, मैं इसका गला घोट दूँगा; हाँ, बस आपका संकेत-भर हो जाये....

ऐसा कहते-कहते अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को उन निस्तेज कोटरों में जल्दी-जल्दी घुमाकर वह दाँत पीसने लगा ।

रामप्रसाद इस नादान किशोर की व्याकुलता पर मन्द-मन्द मुस्कराने लगा । फिर नीम की नरम दातूनों के तोड़ने में व्यस्त उन दो मोटे नौकरों की ओर संकेत करके उसने कहा—अपने नये अफसर के इन अंगरक्षकों को शायद आपने नहीं देखा । आप इनको पछाड़ सकेंगे ? आप क्या, तराई के इलाके का कोई भी जवान इनकी एक टाँग के बराबर नहीं ।

उसी समय सुशीला ने रामप्रसाद के पीछे आकर उसका तालेवाला सफरी बैग सामने कर दिया । कटोरदान, तौलिए, कम्बल और चादर आदि से भरा वह बैग काफी फूला हुआ था ।

रामप्रसाद ने उसी विनोद भाव से कहा—लीजिए मिस्टर प्रेमशंकर, जब तक आपके ये अपरिचित शत्रु आपको पीठ दिखाये हैं, आप चुपचाप खिसक जाइए। आपसे और बातें तो मार्ग में होती रहेंगी।

प्रेमशंकर के चले जाने पर उसने फिर किवाड़ बन्द कर दिये। अपनी इस योजना के इस सफल श्रीगणेश की प्रसन्नता से पुलकित हो सुशीला की पीठ थपथपाकर उसने कहा—शाबाश, इतनी जल्दी सामान ठीक-ठाक करके तुमने उस बैग को लाकर हमारे सामने भी कर दिया। धन्य है तुम-जैसी गृह-लक्ष्मी की स्फूर्ति को! धन्य है भारत की नारियों के सेवा-भाव को!

फिर उसी उल्लास में अपने कन्धे के ऊपर से अपना ही हाथ पीछे ले जाकर अपनी पीठ स्वयं ठोकता हुआ वह बोला—और धन्य है इस पागल तहसीलदार के भाग्य को कि उसे ऐसी कर्तव्यपरायण पत्नी मिली।

ठीक चार बजे उस क्वार्टर पर दोनों ओर से आक्रमण हुआ। आगे की ओर से सिगार मुँह में दबाये दर्शनलाल और उनके पीछे ओवरसियर, रेंजर, डाक्टर, बड़े और छोटे दारोगा, हेडमास्टर, सफाई के इन्सपेक्टर, सुखलाल और तहसील के नाजिर आदि कोई बीस व्यक्ति आये; और पीछे आँगन की ओर से रेंजर की मा के पीछे दारोगा की सलवारवाली बूढ़ी बीबी, उसकी नूरजहाँ और रोशन नाम की दोनों लड़कियाँ, चश्मेवाली करीने से सजी नई दुलहिन-सी इन्पेक्टरानी, नित्य हँसती हुई डाक्टरानी और भी कई बबुआइनें हँसती-किलकारती आ गईं।

उस समय रामप्रसाद को बाहर गये पन्द्रह-बीस मिनट से अधिक न हुए थे। बाहर निकलने पर इन दो पुरबिए नौकरों ने उस पर एक उड़ती नज़र डाली और यह सोचकर कि वह बालक की-सी निष्कपट आकृति का नवयुवक तहसीलदार का बड़ा लड़का या छोटा भाई होगा, कुछ न बोले। सुरती मलने में लगे थे, उसी काम में लगे रहे। उन्होंने उठकर उसे सलाम भी नहीं किया।

बूढ़ी दारोगाइन ने कहा—बहू, कहाँ हो तुम! बड़ा अफसोस है, हमारे

मियाँ को तो पता भी नहीं चला। कब से दुश्मनों की तबीयत खराब हो गई?

सुशीला क्षण-भर पहिले आगे से आनेवाले पुरुषों की भीड़ की आहट पाकर फाटक की ओर दृष्टि किये खड़ी थी। फिर पीछे से भी इस स्त्रियों के दल को आते देख वह बच्चे के पालने की ओर चल दी; मानो इस आक्रमण के समय उस अबोध शिशु की रक्षा का ध्यान उसे अनायास ही आ गया।

फिर अपनी सास के निकट आकर उसे तन्द्रा से जगाते हुए उसने अत्यधिक गम्भीर होकर कहा—माताजी, जरा इन लोगों को बिठाइए तो मैं बच्चे का दूध गर्म कर लूँ। उसे दूध पिलाने का समय हो गया।

'तहसीलदारजी अभी लेटे हैं क्या?' डाक्टरानी ने और महिलाओं से आगे बढ़कर कहा, 'हमारे डाक्टर उधर सामने के दरवाजे से आये हैं, किवाड़ खोल दो तो उन्हें वह देख लेंगे।'

बच्चे को गोद में लेते हुए सुशीला ने उदासीनता से कहा—वे तो अभी कहीं बाहर काम से गये हैं।

'गये? दौरे पर गये?' तीन-चार औरतों ने एक साथ आगे बढ़कर पूछा।

अपने पति से संकेत पाकर डाक्टर की पत्नी, तहसीलदार की तबीयत बहुत खराब है, इस बात को यथासम्भव बढ़ा-चढ़ाकर उस मुहल्ले में घर-घर कह आई थी और सबको चार बजे तहसीलदारिनी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने चलने का निमंत्रण भी दे आई थी। अब अपनी इस योजना के विफल होने पर वह खिसिया-सी गई।

दारोगाइन को विश्वास नहीं हुआ। वह उनके सोने के कमरे तक गई। चारपाई खाली देखकर बैठक और उसके उपरान्त दफ्तर के कमरे तक घूमकर फिर लौटकर आई। आँखों-ही-आँखों में डाक्टर की बीबी से रहस्यमय दृष्टि-विनिमय करके सुशीला से बोली—साथ में कौन गया है?

'मुझे पता नहीं।' सुशीला ने बच्चे के ऊपर झुके-झुके खीझकर उत्तर दिया।

इन्सपेक्टरानी ने कहा—तबीयत खराब थी तब क्यों जाने दिया?

रामप्रसाद की बूढ़ी मा अपने लड़के के प्रति इस बड़ी संख्या में सहानुभूति प्रदर्शित करनेवाली इन सहृदय पड़ोसिनों के आगमन से प्रसन्न हो रही

थी। अन्दर की बात तो वह जानती न थी। बोली—अभी-अभी तो उठके गया। तबीयत तो बहुत खराब नहीं रही। ठीक ही तो रही हूँ, क्यों बहू ?

सुशीला ने अँगीठी के ऊपर झुके-झुके केवल हुँ कह दिया।

उसका यह उत्तर उन स्त्रियों को बहुत खला जिन्हें अपने पतियों के इस षड्यंत्र का पता न था और जो पड़ोसी होने के नाते अपना काम-काज छोड़-कर बीमार तहसीलदार के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने की सच्ची भावना से आई थीं।

उतनी स्त्रियों के एक साथ बैठने का प्रबन्ध वहाँ हो भी नहीं सकता था। कुछ तो सुशीला के पास पालथी मारकर बैठ गईं। दारोगाइन ने बरामदे में खड़ी एक खटिया को नीचे उतार उस पर आसन जमाया। डाक्टरानी और इन्स्पेक्टराइन रसोई के मोढ़े पर बैठ गईं। दो औरतें बुढ़िया की चारपाई पर जा बैठीं, जिससे वह चारपाई चरमराने लगी। दारोगा की लड़कियों को कहीं बैठने को स्थान नहीं मिला, वे मुसलमान होने के कारण बुढ़िया की ओर नहीं जा सकती थीं, क्योंकि उनको पता था कि यदि उस ओर गईं तो शायद बुढ़िया को मार्च के इस जाड़े में शाम को नहाना पड़ेगा। वे रसोई की ओर जाकर पीढ़े को भी नहीं उठा सकती थीं, अतः उन्होंने अन्दर कमरों में घूमना आरम्भ किया। उसी समय आगे की ओर से आनेवाले मर्दों ने किवाड़ खटखटाये तो उनमें से बड़ी लड़की नूरजहाँ ने, जैसा उसे पहले से सुझा दिया गया था, दरवाजा खोल दिया। दर्शनलाल और उसके पीछे चार-पाँच मर्द एक साथ कमरे में घुस आये।

बाहर उस समय भी धूप पर्याप्त तेज थी। उस धूप में से एकाएक कमरे के अन्दर आने पर उन लोगों को उस कमरे में साफ-साफ न दिखलाई दिया कि चारपाई पर लेटा कोई है भी कि नहीं। दर्शनलाल ने बिस्तर को देखकर ही सोच लिया कि पलंग पर रामप्रसाद लेटा है। खाली पलंग को सम्बोधित करके सिगार का धुआँ उड़ाते हुए उसने कहा—हलो मिस्टर प्रसाद, अब कैसी है आपकी तबीयत ?

इस प्रश्न को सुनकर नूरजहाँ अपनी हँसी न रोक सकी और खिल-खिल करती पीछे के किवाड़ से सटकर खड़ी हो गई। दारोगा को अपनी लड़की का

वह असंयम, वह दबी हँसी न भायी। उसने सोचा कि लड़की भी बिस्तर पर लेटे व्यक्ति का उपहास कर रही है। स्वयं भी चारपाई की ओर न देखकर लड़की की ओर आँखें तरेरकर अपना दायाँ हाथ सीने से उठाकर दाढ़ी तक ले जाकर मुगलकालीन सलाम करते हुए कृत्रिम विनय से उसने कहा—आदाब अर्ज, जनाब रामप्रसादजी। इस नादान लड़की की शैतानी पर गुस्सा आता है....

इतना कहकर कुछ भी उत्तर न पाकर उसने अपनी पलकों को दो-तीन बार गिराया। फिर आँखों के उस अन्धकार से अभ्यस्त हो जाने पर देखा तो बिस्तर को खाली पाया। उसी समय नूरजहाँ ने, जो अपनी हँसी रोक चुकी थी, कहा—पापा, आप आदाब किसको कर रहे हैं? वह तो दौरे पर गये, यहाँ हैं भी नहीं।

सुनकर दारोगा ने दर्शनलाल की ओर घूरा और दर्शनलाल को उसी प्रकार विस्मित दृष्टि से अपनी ओर घूरते पाया। दोनों एक-दूसरे का आशय समझ गये।

अपने होठों पर बनावटी गम्भीरता लाकर दारोगा ने तहसील के शेष अहलकारों को सम्बोधित करके कहा—मैं जानता था; ऐसा भटकना, बिस्तर छोड़कर उठ पड़ना, वे सब उनके जनून के अलामात नहीं तो और क्या हैं?

दर्शनलाल बरामदे में आकर अपने दोनों पुरबिए नौकरों पर गरजा—क्यों रे गधो, तुम क्या घास चर रहे थे? जब तहसीलदार साहब की सवारी निकली तो हमें इत्तिला क्यों नहीं की?

इसके बाद उसने क्रोध से उत्तेजित होकर उन नौकरों की बहिनों से अपने पुराने सम्बन्ध प्रकट किये। अब उनकी मा से सम्बन्ध स्थापित करने की धमकी दी। उन्हें उसी उत्तेजना में जारज सन्तान घोषित किया।

उसकी लाल-पीली आँखें देखकर भीगी बिल्ली बने उन पहलवानों ने सिर नीचा किये कहा—हम कहूका बाहर जात नहीं देखा सरकार। न हियाँ कउनो सवारी आई, न साइकिल।

दूसरा बोला—जब से हम हियाँ बैठइन, हजूर, दुइन जने बाहर गे हैं। एक तो कउनो धोबी रहा। बहूजी से ओढ़ना की गठरी लिये जात रहा और दूसर रहें छुटके भइया।

'छुटके भइया !' दर्शनलाल ने दाँत पीसकर फिर अभी-अभी दी गई उपाधियों से उन्हें सम्बोधित करके कहा, 'कौन छोटे भइया ?'

वह बोला—अरे सरकार, काहे बिगड़त हौ। ऊ अठारह-बीस साल के केऊ बबुआ रहें। हम इनसे पूछा, ये साहब के बेटवा अहिउ का ? या कहिस कि साहब के छुटके भइया हुइ हैं। अब्बे पैदलै गइन रहैं।

वे दोनो पहलवान एक-दूसरे के सिर पर सारा दोष मढ़कर अपने-अपने को निर्दोष सिद्ध करने लगे।

दारोगा ने पूछा—वह कैसे कपड़े पहने थे ?

एक ने कहा, 'बन्द गले का लाल-लाल कोट और पैंट।' ऐसा उत्तर देकर वह अपने साथी की ओर मुड़कर उससे पूछने लगा, 'क्यों रे लोचनुवाँ, यही तौ पहने रहिन ?'

दारोगा ने दर्शनलाल से अँग्रेजी में कहा—उन कपड़ों से स्पष्ट है, बाहर जानेवाला व्यक्ति निश्चय ही रामप्रसाद था। एक वही लाल गरम कोट तो उस फटीचर के पास है।

निराश होकर दर्शनलाल ने नये सिगार की नोक को फिर दाँत से चबाते हुए कहा, 'मैंने आपसे कहा था न, आप उसे कम चालाक न समझें और अपने सिपाहियों को ही पहरे पर लगा दें।' किन्तु वहाँ पर और लोगों की उपस्थिति का ध्यान आते ही वह अपनी बात पूरी न कहकर चुप हो गया। वहाँ खड़े तहसील के अन्य अहलकार लोग नौकरों के प्रति दर्शनलाल के द्वारा किये गये गर्जन से स्वयं भी आहत हुए थे। वे सब इधर-उधर छिटक-कर कभी पेटियों और कभी उन वृक्षों की ओर अकारण ही देखकर अपनी ग्लानि को मिटा रहे थे। दर्शनलाल ने अपनी भूल समझी और मुड़कर उन सबके प्रति मुस्कराकर वह बोला, 'देखिए, इन लोगों की जरा-सी गलती से कैसा अनर्थ हो गया! न जाने बड़े साहब मुझसे क्या कहेंगे! हमें मिस्टर रामप्रसाद को उनकी ऐसी बीमारी में कहीं अकेले नहीं जाने देना चाहिए था। आप लोगों का क्या अनुमान है ? वह न तो बिस्तर आदि का प्रबन्ध करके गये हैं, न किसी चपरासी को साथ ले गये हैं। गये भी पैदल हैं। शाम तक लौट तो आयेंगे न ?'

वे कर्मचारी भयत्रस्त एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। किसी ने, कहीं गलती न हो जाये इस भय से, संशक होकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

दर्शनलाल ने उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं की। स्वयं ही कहा—अब हमें उनके लौटने पर पूरी चौकसी रखनी होगी, क्यों दारोगाजी?

'जरूर, जरूर!' दारोगा ने कहा, 'वह शाम को कभी नदी की ओर टहलने जाते हैं, कभी छावनी के आम पड़ाव की ओर। उधर आदमी भेज देता हूँ और इस क्वार्टर पर भी सिपाही को तैनात कर देता हूँ। मैं थाने में मौजूद रहूँगा ही।'

वह सारी टोली दर्शनलाल के पीछे-पीछे फिर फाटक की ओर बढ़ने लगी। दर्शनलाल फाटक तक पहुँचकर रुक गया। उसने सोचा कि अन्दर औरतों को भी सचेत कर देना चाहिए। किन्तु उन सबसे अपना मन्तव्य स्पष्ट न प्रकटकर वह बोला—अच्छा दारोगाजी, आप लोग अब चलें, मैं जरा अपने सामान पर भी एक नज़र डाल लेता हूँ। उसे बरामदे में, न हो तो उस कमरे में, जहाँ मेरा ताँगा-घोड़ा रहता था, डलवा दूँ!

उसे फिर क्वार्टर की ओर मुड़ते देख और लोग चले गये, किन्तु नाजिर साथ लग गया। दर्शनलाल ने दो-चार कदम चलकर फिर मुड़कर उसे भी लौटाते हुए कहा—हाँ, जरा दारोगाजी को तो भेजिए। आप जाइए, सामान को ये पुरबिए नौकर रख लेंगे।

दारोगा दूर नहीं गया था। थोड़ी ही देर में लौटकर आ गया। दर्शनलाल ने उसकी बाँह खींचकर उनके कान में मुँह ले जाकर कहा—अन्दर बेगम को भी समझा दो। यहाँ अब उसकी बीबी के पास भी उसके लौट आने तक कोई-न-कोई बैठा अवश्य रहे और बातों-बातों में उससे पता लगा ले कि वह गया कहाँ है? लौटेगा कब? वह केवल टहलने नहीं गया है। मुझे तो साफ दीखता है कि वह चार्ज देने में टाल-मटोल करेगा। इसलिए अभी उसकी ढूँढ़ में हमें लग जाना चाहिए।

दारोगा ने आँख मारकर कहा—परवाह न कीजिए। मेरे होते वह चूँ नहीं करेगा। मैं बाँधकर रख दूँगा। जहाँ भी होगा अभी पकड़ मँगवाता हूँ उसे।

क्वार्टर से बाहर छावनी के पड़ाव की ओर जाते समय रामप्रसाद का मन किसी विषाद की सी छाया से भारी-भारी-सा था। रामप्रसाद सोचता जा रहा था, यह विषाद किस अनुचित कार्य या संकल्प के कारण उत्पन्न हुआ है? क्या वह दर्शनलाल को चार्ज देने की सरकारी आज्ञा की अवहेलना करने से है? या सरकारी आदेश को विफल करने के हेतु सैनिक डाक्टरों से मिलने के लिए किये गये अपने निश्चय के कारण? या फिर पत्नी को उस प्रकार दुःखित करके उसे अपने पक्ष में करने के कारण? बहुत सोचने के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इस विषाद का कारण है प्रेमशंकर-जैसे व्यक्ति से अनधिकार अपना काम निकालना।

अब प्रेमशंकर के विषय में वह सोचने लगा, वह लड़का यद्यपि सुखलाल-जैसे व्यक्तियों की दृष्टि में निरा आवारा है, किन्तु उसमें कुछ गुण भी हैं। अन्याय और अत्याचार के प्रति, प्रबल विरोध के बावजूद, वह आवाज उठा सकता है। जब-जब वह मुझसे मिला है उसकी बातों में विद्रोह की भावना रही है। सरकार की प्रत्येक लोकोपकारी योजना में भी वह कुछ चाल, कुछ जनता का अहित देख लेता है। आज तक उसने कभी मेरे प्रति सहानुभूति नहीं दिखलाई, वह तो असहयोगी व्यक्तियों की भाँति मेरी ईमानदारी में विश्वास करते हुए भी मुझसे ऐसे ही दूर और अकड़ा रहता है जैसे मैं उसी पुरानी गई-बीती अँग्रेजी शासन-सत्ता का कल-पुर्जा होऊँ।

आज, केवल आज मेरे स्वास्थ्य के विषय में उसकी वह उत्सुक पृच्छा, मेरे तबादिले के हो जाने का समाचार सुनकर हुआ उसका वह व्यवहार, दर्शनलाल के प्रति उसका वह अमर्ष मुझे धोखे में डाल गया। वह वैसे न मेरा कोई सगा-सम्बन्धी है न मातहत कर्मचारी। मुझे उसकी उस सच्ची सहानुभूति को इतनी जल्दी अपने स्वार्थ साधन में न लगाना चाहिए था।

उधर प्रेमशंकर का मन तहसीलदार-जैसे बड़े अधिकारी द्वारा उस विश्वास-पूर्ण कार्य के दिये जाने पर प्रसन्नता से नाच रहा था। वह तो अवहेलना,

लांछना और फटकार का ही आदी था। उसे मीठे शब्दों से पुकारनेवाला कोई न था। पढ़ना-लिखना छोड़ देने के कारण मा वैसे ही उससे क्रुद्ध थी; जब उसने खेती के काम में भी मन लगाना छोड़ दिया तो उसकी मा उसे सुखलाल का ही अनुगामी समझकर उसे समय-समय पर समझाने के लिए उसी सुखलाल का निहोरा करती। प्रेमशंकर सुखलाल का नाम सुनते ही बिदकने लगता। उसे मा की वह उलटी सीख बड़ी खलती।

मा-बेटे में इसी भाँति अनबन चलती। कभी प्रेमशंकर रूठ जाता तो कभी मा बेटे की कड़ी बातचीत से रूठकर निराहार रहती। कभी प्रेमशंकर घर से भाग जाता और अपनी बड़ी बहिन के पास शहर में चला जाता। उसके जीजा सुरेन्द्रकुमार शहर में किसी समाचारपत्र के कार्यालय में काम करते थे।

आज सुबह भी मा की फटकार के असह्य हो जाने से वह बिना खाये-पीये घर से निकला था। पास में पैसे नहीं थे। पैदल ही शहर जाने का उसका विचार था कि मार्ग में सुखलाल दलबल सहित तहसील की ओर आता दीख पड़ा। उसके दल के लोग संख्या में बढ़ते ही जा रहे थे। सुखलाल के उन अनुगामियों की बातचीत से प्रेमशंकर को जब पता चला कि वे लोग नये तहसीलदार के स्वागत के लिए जा रहे हैं तथा रामप्रसाद बीमार, नालायक और पागल करार देकर तहसील से निकाला जा रहा है तो वह एकाएक अपना दुःख भूल गया। कोई काली अन्धकारमय छाया-सी उसके मन में घुस-कर उसे कचोटने लगी। पहली बार उसे भास हुआ कि उसने रामप्रसाद को यथोचित सम्मान न देने में गलती की, अब तक वह उसकी आलोचना ही करता रहा है, प्रकट रूप से न उसने कभी उसके कामों को सराहा और न कभी उसकी सच्चाई और ईमानदारी की प्रशंसा ही की, वह तो नित्य अपना असन्तोष और अपनी कड़वाहट को ही दिखाने उससे मिला।

जैसे अपने पिता के मरने पर उसे पहली बार पश्चात्ताप हुआ था कि पिता के जीवित रहते उसने न तो उनकी पूरी तरह सेवा की और न उनसे यथोचित स्नेह ही किया; ऐसे ही रामप्रसाद की बदली के इस समाचार से वह अब अपने को धिक्कारने लगा कि जब सुखलाल ने झूठ-मूठ ही तहसीलदार को बदनाम करने और उसे सनकी और पागल कहकर गाँववालों को भड़-

काया था तो उसने इन बातों का क्यों नहीं ज़ोरदार प्रतिवाद किया। रामप्रसाद के प्रति इसी प्रकार की भावना लेकर वह आज शहर जाने का विचार छोड़कर तहसील को मुड़ गया था। वहाँ जाकर रामप्रसाद का निष्कपट प्रेम पाकर लौटते हुए अब उसे किसी बड़े पुण्य कार्य के कर लेने का-सा गर्व हो रहा था।

वह मन-ही-मन सोच रहा था, मैं इस दुनिया में दो काम कर सकता हूँ। रामप्रसाद के लिए मैं उस दुष्ट मुन्नलाल को जान से मार तक सकता हूँ और त्रिवेदीजी के लिए तो मैं अपना जीवन भी निछावर कर सकता हूँ।

यहाँ त्रिवेदीजी के विषय में किंचित् विस्तार से कहना पड़ेगा। वर्षों पहले गांधीजी जब अपने देशव्यापी दौरे के सिलसिले में तराई के इस इलाके से गुजरे थे तो यहाँ ग्रामवासियों में किसी सच्ची लगन के रचनात्मक कार्यकर्ता को न पाकर उन्होंने त्रिवेदीजी को अपने आश्रम से इन गाँवों में रहकर-काम करने भेजा था। उन्होंने तराई में एक चर्मशाला, बढ़ई और लोहारगिरी का काम सिखाने का एक केन्द्र तथा गड़रियों के बच्चों के लिए एक बुनाई का केन्द्र खोला था। अलग-अलग गाँवों में स्थित ये सब संस्थाएँ उनके स्वदेशी-स्कूल से सम्बद्ध थीं जो राजागंज नामक छोटे-से कस्बे में था। त्रिवेदीजी जब कभी राजागंज से अपनी संस्थाओं के काम के सम्बन्ध में शहर जाते तो प्रेमशंकर के जीजा सुरेन्द्रकुमार के ही पास टिकते थे। वहीं प्रेमशंकर का त्रिवेदीजी से सम्पर्क हुआ करता था।

जाड़े की एक शाम प्रेमशंकर गाँव में मा से लड़कर ठीक आज ही की भाँति अपनी बहिन के घर गया था। वहाँ बाहर की बैठक में त्रिवेदीजी अपने कागज-पत्रों में उलझे हुए थे। उनसे दृष्टि बचाता हुआ वह पास के दरवाजे से सीधे बहिन के पास अन्दर चला गया था।

सत्रह वर्ष की ही अवस्था में अपने को नेता समझनेवाला प्रेमशंकर त्रिवेदी-जैसे बड़े नेता से कुछ ईर्ष्या-भाव से और कुछ अपने अधकचरेपन की पोल के खुल जाने के भय से दूर-ही-दूर रहने का प्रयत्न करता था। स्कूल छोड़ने के उपरान्त पहले भी उसका दो-तीन बार त्रिवेदीजी से आमना-सामना हुआ था, किन्तु वह उनसे बोला तक न था।

नित्य की भाँति आज भी प्रेमशंकर की नेताओं की-सी वेशभूषा अस्त-व्यस्त थी। गाँव से शहर तक पैदल चलने के कारण उसकी ऊनी जवाहर वास्कट धूलि-धूसरित थी। उसके चार बटनों में से तीन गायब थे। खद्दर के पाजामे की एक मोहरी पाँव के नीचे आ जाने से घुटने तक चिरी हुई थी, जिसे उसने एक भद्दी गाँठ देकर किसी भाँति सँभाल रखा था। टोपी इतनी मैली हो चुकी थी कि शहर में उसे पहनना उचित न समझकर नेताजी ने उसे कुरते की जेब में रख लिया था, इसलिए सिर के बाल भी बुरी तरह छितराये हुए थे।

घर के अन्दर बहिन ने प्रेमशंकर को आड़े हाथों लिया। गाँव से बिना मा की सहमति के शहर में चले आने की उसकी आदत के लिए उसे बुरा-भला कहकर उस उक्ति को भी सुना दिया जिसमें बहिन के घर रहनेवाले भाई को श्वान कहा गया है। प्रेमशंकर एक शब्द भी न बोला। बाहर एक नेता उसका अपमान होता सुन रहे हैं, इसे वह तो समझ रहा था, किन्तु उसकी बहिन को उसका ध्यान ही न था। वह समझे बैठी थी कि अतिथि अपने काम से शहर में गये होंगे। कोई दूसरा अवसर होता तो शायद प्रेमशंकर रो देता, किन्तु इस बार वह चुपचाप बाहर निकल गया। दरवाजे तक यह सोचकर गया कि अब क्या करना चाहिए, किन्तु कुछ भी निश्चय न कर पाने से फिर लौटकर बैठक में आ गया और त्रिवेदीजी की उपस्थिति की नितान्त अवहेलना करके पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने उलटने लगा। समाचार पत्र के कार्यालय में काम करने से उसके जीजा के पास आनेवाले विदेशी दूतावासों के साइक्लोस्टाइल्ड सन्देश और समाचार पत्र बिखरे पड़े रहते थे। त्रिवेदीजी ने देखा, थोड़ी ही देर में अपनी भूख, प्यास और लांछना को भूलकर वह लड़का उन समाचार पत्रों को पढ़ने में मग्न हो गया है।

लड़के की उस लगन से प्रभावित होकर त्रिवेदीजी उसके पास सरक आये। प्रेमशंकर त्रिवेदीजी को अध्यापकों की ही श्रेष्ठ जाति का समझकर उनसे सदा बचा करता था। उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया था कि अपने को शिक्षा देनेवाले को वह अकारण ही वैमनस्यता से देखा करता था। शिक्षक के उपदेश में त्रुटि निकालकर उसे अमान्य ठहराना या कोई गलती न होने पर भी

जबर्दस्ती संशोधन पेश कर देना उसका स्वभाव ही बन गया था।

त्रिवेदीजी से वह स्वयं सीधे बात कभी न करता था। जब उसके जीजा हों और किसी विषय पर बात निकल आये तो वह अध्यापकों की हँसी उड़ाने अथवा उनकी नकलें उतारने से न चूकता था। आज दोनों किसी तीसरे मध्यस्थ के अभाव में चुपचाप अकेले-अकेले अपने-अपने काम पर लगे थे। देर तक कोई किसी से नहीं बोला।

सन्ध्या हो चली थी, अन्त में त्रिवेदीजी ने ही प्रेमशंकर के निकट आकर बात आरम्भ की और कहा—भाई, जरा मेरा एक काम तो करो, अपनी बहिन-जी से पूछकर पता लगाओ कि तुम्हारे जीजा कब तक लौटेंगे; कहीं ऐसा न हो कि उनको प्रेस में रात की ड्यूटी मिली हो और मैं उनके लिए सुबह तक बैठा रहूँ।

बिना सोचे ही प्रेमाशंकर ने तड़ाक-से कहा—मैं पढ़ रहा हूँ, जरा देर बाद पूछ दूँगा।

त्रिवेदीजी ने फिर कहा—क्या पढ़ रहे हो? जरा मैं भी सुनूँ, जोर से पढ़ो।

प्रेमशंकर ने और भी अधिक रुखाई से कहा—आप स्वयं ही पढ़ लीजिएगा, मैं इसे अभी समाप्त किये देता हूँ।

यह कहकर उसने पत्रिका को अपनी ओर खींचकर उस पृष्ठ को ओट में कर लिया जिससे त्रिवेदीजी न देख सकें कि वह क्या पढ़ रहा है। किन्तु त्रिवेदीजी छोड़नेवाले जीव न थे, और भी स्नेह से बोले—मैं तो रात को बिना चश्मे के पढ़ ही नहीं पाता हूँ, इसी लिए तो तुम्हारा निहोरा कर रहा हूँ।

प्रेमशंकर को ज़ोर से पढ़ना पड़ा। वह किसी अमेरिकन पत्रिका का विशेषांक था जो अब्राहम लिंकन की जन्म-तिथि के अवसर पर निकाला गया था; लिंकन के जीवन की मोटी-मोटी घटनाओं का उसमें उल्लेख था।

कुछ वाक्य सुनकर त्रिवेदीजी ने कहा—अच्छा, यह लेख है! जिस पुस्तक से यह लेख लिया गया है उसकी दो प्रतियाँ मैं आज ही अपने विद्यार्थियों के लिए खरीद लाया हूँ। लो, इस विषय का तुम-सा अच्छा पाठक स्कूल में भी मुझे नहीं मिलेगा, मेरी ओर से, एक प्रति तुमको उपहार में दी जाती है।

ऐसा कहकर उन्होंने अपना पास ही रखा झोला उठाया और किताब के बाहर ही उस पर 'प्रेमशंकरजी को उपहार' ऐसा अपनी कलम से लिखकर पुस्तक को प्रेमशंकर की ओर बढ़ा दिया; प्रेमशंकर उसे अस्वीकार न कर सका।

इस बीच प्रेमशंकर की बहिन ने त्रिवेदीजी के लिए जलपान भिजवाकर स्वयं भी दरवाजे के पास आकर कहा—अभी आप लोगों का बोलना सुनकर जान पायी हूँ कि आप उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। वह रात के दस बजे तक आयेंगे।

फिर प्रेमशंकर को सम्बोधित करके वह बोली—तू तो चाय का शौकीन है, तेरे लिए चाय बन रही है। चल, अन्दर चल, वहीं नाश्ता करना।

दिन में कुछ ही देर पहले प्रेमशंकर को बुरा-भला कह देने के उपरान्त बहिन को अब मन-ही-मन पश्चात्ताप हो रहा था। यह भी शंका हो रही थी कि इस समय वह कहीं चला गया तो रात जाने कहाँ पड़ा रहेगा।

त्रिवेदीजी को सम्बोधित करके उसने फिर कहा—चाचाजी, प्रेमशंकर तो बिलकुल आवारा हो गया है। मा का कहना नहीं मानता। पढ़ना-लिखना भी इसने छोड़ दिया है। पिछले महीने इसको उन्होंने यहाँ टाउन स्कूल में भर्ती करा दिया था। वहाँ भी यह बड़े मास्टर साहब से भिड़ गया। अब कितना ही समझाती हूँ, लेकिन स्कूल जाने का नाम नहीं लेता।

त्रिवेदीजी ने कहा—न सही टाउन स्कूल में, इनको आप मेरे स्कूल में भेज दीजिए।

प्रेमशंकर ने बुझी हुई तीखी आवाज में कहा—मिडिल तो मैंने पारसाल ही पास कर लिया था। वहाँ मुझे क्या पढ़ना है। आगे कक्षाएँ तो वहाँ हैं भी नहीं।

त्रिवेदीजी ने कहा—पढ़ने के लिए नहीं, कुछ काम करने के लिए मैं वहाँ ले जाऊँगा आपको। अब यह अब्राहम लिंकन की किताब आपको मिली है, इसको मुफ्त का उपहार न समझिए। मैं एक जलसा करने जा रहा हूँ उसमें आपको इस अमेरिकन महापुरुष के बारे में विद्यार्थियों के सामने एक भाषण देना होगा। फिर हमारा एक छोटा-सा देहाती स्कूल खुल रहा है। वह रात को चला करेगा, उसमें बूढ़े और सयानों को पढ़ाने का काम करने-

वाले गुरु हमको चाहिए। उसकी ट्रेनिंग मैं आपको दूँगा।

बहिन ने कहा—यह पहले स्वयं तो कुछ पढ़-लिख ले तब औरों को पढ़ाएगा। दसवीं भी किसी तरह पार कर ले तो फिर तो आप ही का भरोसा है।

त्रिवेदीजी ने कहा—पढ़ने के लिए पास होना ही आवश्यक नहीं है। मैंने अभी देखा है कि भाषा का तो इनको अच्छा ज्ञान है, पढ़ने में कुछ दिलचस्पी भी है। इसलिए इनको निरा बुद्धू आप न समझिए। एक बार मैंने इनको आर्यसमाज के जलसे में दर्शकों के सामने योगासन का प्रदर्शन करते भी देखा था। तब मुझे ज्ञात हुआ था कि यह अच्छे वक्ता भी हैं। निर्भीकता, और इन-जैसे बालकों में उसका होना, मैं उस पढ़ाई से कहीं अच्छी समझता हूँ जिससे विद्यार्थी कायर, डरपोक और दब्बू बन जाते हैं।

वह महिला त्रिवेदीजी के उस कथन से सन्तुष्ट न हुई, कुछ अचकचाते हुए बोली—चाचाजी, ऐसा न कहिए, तब तो प्रेमशंकर और शह पकड़ लेगा।

त्रिवेदीजी ने कहा—मैं ही किसी स्कूल में नहीं पढ़ा, न मैंने कोई परीक्षा ही उत्तीर्ण की, फिर भी मेरा काम चलता ही है।

इस बात को सुनकर पहली बार प्रेमशंकर बिना संशोधन पेश किये चुप हो रहा। वह सोचने लगा, त्रिवेदीजी मेरा उपहास करने के लिए ऐसा कह रहे हैं या सचमुच इनका विद्यार्थी-जीवन मेरी ही भाँति असफल रहा है।

कोई और अवसर होता तो वह झट से उनकी बात का संशोधन पेश करता कि आप ही क्या न्यूटन, चर्चिल और रवीन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे महापुरुष भी स्कूल में अच्छे विद्यार्थी नहीं माने जाते थे। किन्तु इस समय त्रिवेदीजी को गुरु-गम्भीर देख, उनकी सहानुभूति का पात्र बन जाने की नयी अनुभूति से उसकी कनपटियाँ गरम हो गईं। यह बात तो उसने दूर कल्पना में भी नहीं सोची थी कि राजागंज की आदर्श पाठशाला के ये मुख्य अध्यापक उस-जैसे आवारा लड़के से बोलना तक पसन्द करेंगे।

वह सोचने लगा, राजागंज जाकर लिंकन के बारे में एक प्रभावशाली व्याख्यान देना बड़ा आसान काम है। इससे वह त्रिवेदी को तथा स्कूल के और अध्यापकों को यह दिखला देगा कि वह और कुछ नहीं तो भाषण देने की कला में तो अवश्य ही सबसे आगे है।

बहिन ने उसे राजागंज जाने की आज्ञा दे दी। वह यात्रा उसके जीवन का एक नया मोड़ सिद्ध हो गई, क्योंकि उसके बाद ही त्रिवेदीजी से प्रेरणा पाकर उसने खटिकों के गाँव में जाना आरम्भ किया और उन्हीं के हाथों से उसकी खटिक-रात्रि-पाठशाला का एक दिन उद्घाटन हुआ। उस स्कूल में जाने पर उसका आत्मसम्मन का भाव और भी ऊँचा हो गया था। वह अपने को पहले से अधिक समझदार मानने लगा था, किन्तु उसकी माता और बहिन ने उस स्कूल में अधिक दिलचस्पी इसलिए दिखलाई थी कि खटिक उनकी फसल के काटने, बोने, जोतने आदि में समय पर सहायता कर देंगे तथा प्रेम-शंकर के बाप-दादों द्वारा जोड़ी हुई पन्द्रह-बीस बीघे जमीन उनकी सहायता से बंजर न पड़ने पायेगी। अब उस आशा के पूरा न होने के कारण उनको प्रेमशंकर का उस स्कूल में जाना न भाता था।

धीरे-धीरे उस स्कूल से स्वयं उसका सम्बन्ध भी शिथिल होने लगा था। इस मास फसल के कटने के कारण पढ़नेवालों की संख्या बहुत कम हो गई थी। आज सवेरे उसी स्कूल के विषय में अपनी मा से झगड़ा होने के कारण वह घर से निकला था। रामप्रसाद से मिलकर और उसका स्नेह पाकर वह मा की फटकार की खिन्नता को इस समय भूल गया था और रामप्रसाद के लिए, किस भाँति अपनी सेवा अर्पित करनी चाहिए इस विषय पर मन-ही-मन कल्पना करता हुआ, उसके बैग को हाथ में नचाता हुआ शफीक के बारूदखाने की ओर बढ़ रहा था।

रामप्रसाद प्रेमशंकर से कुछ दूर पीछे आता हुआ यह सोच रहा था कि मेरा प्रेमशंकर से काम लेना उचित नहीं हुआ। मुझे दर्शनलाल से बचने के लिए इस प्रकार आना भी नहीं चाहिए था। बारूदघर के निकट प्रेमशंकर उसकी प्रतीक्षा में बैठा पास ही एक पेड़ पर कंकड़ फेंककर अपना निशाना साध रहा था। रामप्रसाद को निकट आते देख वह झटपट उठ खड़ा हुआ कि शायद अब उसे बारूदखाने के मालिक को बुलाने के लिए पास ही मुहल्ले में जाना पड़ेगा; किन्तु रामप्रसाद ने ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी और औपचारिक ढंग से कहा—लाइए, यह बैग मुझे दे दीजिए। आपको मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ।

बैग लेकर रामप्रसाद सड़क की ओर बढ़ गया। प्रेमशंकर लौटा नहीं, उसके पीछे-पीछे हो लिया।

रामप्रसाद के मन में उस समय एक ही विचार था कि आज भी विरोधी दलों के लोग सभी सरकारी कर्मचारियों को सत्तारूढ़ दल का अनन्य भक्त समझकर ऐसा मान लेते हैं कि सरकारी कर्मचारी अपना कोई पृथक् व्यक्तित्व नहीं रखते। वे सोचते हैं कि सरकार की सभी बुराइयों को ये कर्मचारी अपनी ही अनिवार्य बुराइयाँ समझकर छिपाते और पनपने देते है। यही भावना इस प्रेमशंकर में भी पायी जाती है। वह आज तक नित्य ही मेरे काम में बाधा डालने, मुझसे झगड़ने और मातहतों की शिकायत करने ही आता रहा है। मैं अपनी बातचीत से उसके तर्क को खोखला कर देता था। उसकी कटु आलोचनाओं को सुनकर, उनमें से सत्यता को स्वीकार करके उनका अनिवार्य कारण उसे बताकर निरुत्तर कर देता था, किन्तु मेरी निष्पक्षता से आश्वस्त होकर भी अपना अविश्वास और दुराग्रह नहीं छोड़ता था। यह उस नेता की शिक्षा का परिणाम था जिससे उसने गाँव में सुखलाल की काली करतूत का वर्णन किया था अथवा वह किसी संगठित दल का सदस्य होने से ऐसा व्यवहार करता था? उसकी उस ऐंठन के पीछे कौन-सी शक्ति काम करती थी? और आज वह शक्ति कहाँ लोप हो गई? उस समय रामप्रसाद के विचार इसी कौतुहल का समाधान सोचने में उलझे थे।

दूर नाले के उस पार से सदर की सड़क पर आते हुए एक एक्के को देखकर रामप्रसाद ने निश्चय कर लिया कि अब प्रेमशंकर को दुबारा धन्यवाद देकर विदा करके मुझे उस एक्के पर बैठ जाना चाहिए। एक्का अभी पर्याप्त दूर था। उसकी सरपट तेज चाल से ज्ञात होता था कि वह तहसील में शहर से लायी किसी सवारी को उतारकर खाली लौट रहा है।

कुछ दूर आगे बढ़कर सड़क के किनारे अहीरों की झोपड़ियाँ थीं, जिनमें छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे। नाले और उन झोपड़ियों के बीच पके हुए जौ के खेतों का क्रम था। तेज़ हवा से जौ की सुनहरी पकी बालें किसी स्वर्ण सरोवर-सी तरंगित हो रही थीं।

उन खेतों की ओर मुँह करके रामप्रसाद यह सोचकर एक्के की प्रतीक्षा

करने लगा कि यदि वह एक्का सीधे सदर तक जानेवाला हो तो धनुपुर की सहकारी समिति के गोदाम का मुआइना करना ठीक न होगा। बैग को पाँव के पास रखकर रामप्रसाद ने कहा—प्रेमशंकरजी, आप अब जाइए। वह खाली एक्का इधर ही आता दीख रहा है, मैं उसमें बैठकर आगे बढ़ जाऊँगा।

दूसरी बार अपने प्रति आदरसूचक 'आप' सम्बोधन का प्रयोग होते सुन प्रेमशंकर ने चकित नेत्रों से रामप्रसाद की ओर देखा कि वह सम्बोधन उसका उपहास करने के लिए तो नहीं हो रहा है। वास्तव में रामप्रसाद के अतिरिक्त इस सारे इलाके में उसे कोई 'आप' कहकर न पुकारता था, खटिकों के बालक भी नहीं। वे बालक तो छोटे-बड़े का भेद ही न जानते थे! बहुधा अपने इस 'पंडित भैया' को उन गालियों से पुकार देते थे जो नित्य अपने बड़ों के मुँह से सुना करते थे।

रामप्रसाद को गम्भीर देखकर उसने साहस करके कहा—मुझे अपनी शरण में लीजिए साहब। मैं अब आपका साथ नहीं छोड़ना चाहता। आपके चले जाने पर मुझे गाँव में अपनी जान बचाना कठिन हो जायेगा। आपको भी खतरा है।

उसकी उस पैनी दृष्टि और दृढ़ स्वर को देखकर रामप्रसाद केवल हँस दिया।

प्रेमशंकर ने कहा—अभी जब मैं उधर से निकला तो मार्ग में महाशयजी मिल गये। मेरी उनसे बोलचाल नहीं है। वह मुझे सुनाकर बोले, 'खाड़ खने जो और को ताको कूप तैयार। बेटा, सारी तहसील की रिआया और छोटे-बड़े अफसरों को परेशान किये थे। अब हो गया उसको पागलखाने भेजने का हुक्म! कल जब बँधकर जायेगा तब मालूम होगा कि महाशयजी भी कुछ हस्ती रखते थे। अब मैं उसके आवारा साथियों का १०९ में चालान कराकर निश्चिन्त हो जाऊँगा।'

प्रेमशंकर के मुँह से उस बात को सुनकर रामप्रसाद के मन में एकाएक अनेक भावनाएँ उठ आईं। पहले तो उसने अहंकार से सोचा कि मुझे यदि वे-लोग पागल करार देकर अस्पताल भेजते हैं तो वह मेरा अपना मामला है, इस लड़के को उससे क्या मतलब? मेरे विषय में चिन्तित होनेवाला यह

होता कौन है ? फिर इसकी क्या सामर्थ्य ? इसकी सहायता की मुझे आवश्यकता ही क्या ? क्या मैं इतना विवश हो गया हूँ ?

अपनी विवशता की बात सोचते ही वह विचलित हो गया। सचमुच उस सारे इलाके में ही नहीं, सारे संसार में सिवा उसकी पत्नी के कौन ऐसा है जो उसे इस आपत्ति से उबारने में सहायता दे सकता है, जो उसके प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है। हो सकता है, प्रेमशंकर-जैसे कुछ और लोग भी उससे सहानुभूति रखते हों, किन्तु अशिक्षित ग्रामीण लोगों को अफसरों के आने-जाने, तबादिले-तरक्की और उनके दुःख-सुख से क्या प्रयोजन ?

एक्के को कुछ निकट आता देख प्रेमशंकर ने दोनों हाथों की हथेलियों से आँखों पर ओट करके उस ओर देखा। एक्का अब नाले के किनारे पहुँच गया था, किन्तु था अब भी पर्याप्त दूर। फिर रामप्रसाद के हाथ से उसने बैग झपटकर ले लिया। वह बोला—वह तो मेरे ही पीछे आता दीख पड़ रहा है, हम जल्दी उन मकानों की ओट में हो जायें। मुझे तो वह सफेद घोड़ा सुखलाल के घोड़े-जैसा ही दीखता है। मैं आज उस बदमाश की नज़र भी आप पर नहीं पड़ने दूँगा। उसकी काली करतूतों की कहानी आप नहीं जानते। वह जंगल में ले जाकर शिकार के बहाने किसी का कत्ल भी कर दे तो सुनवाई न होगी।

प्रेमशंकर के उस प्रस्ताव का रामप्रसाद ने विरोध नहीं किया। उस समय एक्का नाले में उतरने के कारण अदृश्य हो गया था। वे दोनों पूर्व की ओर गेहूँ के खेतों को पार करके दूसरे मार्ग से नाले की ओर बढ़ने लगे।

'तहसीलदार साहब,' प्रेमशंकर बिना रामप्रसाद की ओर दृष्टि किये उसी रुआँसे स्वर में कहता गया, 'आज से आप मुझे अपनी नौकरी में रख लीजिए। मैं रोटी पका लेता हूँ। बरतन भी मल लेता हूँ। खाना-पीना और आठ-दस रुपये महीने, जो कुछ आप दे देंगे वही ले लूँगा। आज आपने जब बैग को ले जाने को मुझसे कहा था तभी से मैं यह सोचता आ रहा हूँ। आपको सरकारी चपरासियों के अलावा एक नौकर तो जरूर चाहिए। और मुझे भी अपना पेट भरने के लिए अब कुछ करना ही होगा।' फिर रामप्रसाद की ओर दृष्टि करके, यह जानकर कि वह तल्लीनता से उसकी बात सुन रहा है,

वह बोला, 'मा कहती है कि मुझे गाँव में सुखलाल से बैर करके नहीं रहना है; वह ठीक कहती है कि परोपकार के ही भरोसे पेट नहीं पाला जा सकता। रात के ये स्कूल फसल के समय तो चल ही नहीं पाते। आज मैं मी से विदा लेकर आया था कि अब शहर जाकर कहीं छोटी-मोटी नौकरी तलाश करूँगा। और मुझसे हो ही क्या सकता है? जीजाजी से कहूँगा कि कहीं किसी छापेखाने में कुछ काम ही दिला दें। आपसे मिलने आपके बँगले गया तो आपको भी नौकर की जरूरत पड़ सकती है, यह जानकर कुछ आशा बँधी।'

जिस व्यक्ति को रामप्रसाद इतना सम्मान देता आया, उसका यह दूसरा ही रूप देख उसका मन एक निराशाजन्य घृणा से तिक्त हो गया कि जिस युवा को उसने उच्च आदर्शों को लेकर आँधियों से टक्कर लेनेवाला भावी नेता समझकर प्रश्रय दिया था वह निरा बोदा बालक निकला।

उस समय रामप्रसाद के मन के भावों से नितान्त उदासीन-सा प्रेमशंकर दोनों हाथों के बल छोटे बालक की भाँति नाले से उचककर खेत पर चढ़ गया, फिर झट उतरकर रामप्रसाद के हाथ की उँगली को पकड़ शिशु-सुलभ प्रसन्नता से फुसफुसाकर बोला—वह देखिए, जैसा मैंने कहा था, वह महाशय सुखलाल का ही एक्का है। उसके साथ में बैठा एक पुलिस का सिपाही भी दीखता है। वे लोग या तो मुझे किसी मामले में फाँसने के लिए पकड़ना चाहते हैं या फिर किसी जरूरी काम से आपको ढूँढ़ने निकले हैं।

ऐसा कहते-कहते उसकी आँखें चमक उठीं। उसने उछलकर सिर नचाते हुए कहा—खूब छकाया उस बदमाश को।

रामप्रसाद ने उत्सुकता नहीं दिखलाई। वह सोचने लगा, इस लड़के की बातों में आकर नाले में उतरना ठीक नहीं हुआ। ये लोग मुझे ढूँढ़ने निकले हों तो मेरे-जैसे सत्यनिष्ठ व्यक्ति के लिए इनसे छिपकर निकल जाना बुरा ही तो है। अब तो जो भी बात हो, मुझे उसका सामना निःशंक होकर करना चाहिए। किसी भी काम को छिपकर करने का मेरा स्वभाव नहीं है।

दूसरे क्षण जब उसने देखा कि एक्का सदर की ओर सरपट भागता जा रहा है तो उसका विचार बदल गया। वह सोचने लगा, मुझे अपनी बनाई योजना पर ही दृढ़ रहना चाहिए। अभी इनके चंगुल में फँसना निरी भूल है।

ये जो कुछ मुझसे कराना चाहते हैं वही मेरा कर्त्तव्य नहीं है। सुखलाल या दर्शनलाल मुझसे क्या चाहते हैं, इसकी मुझे तनिक चिन्ता नहीं। मैंने जैसा निश्चय किया था, अब मुझे उसी सहकारी बीज-गोदाम की ओर जाना है। प्रेमशंकर से मुझे पिण्ड छुड़ाना है, या इसे साथ ले लेना ठीक होगा? मेरे इस इलाके से चले जाने पर यह निरुपाय हो जायेगा। है तो यह निरा अध-कचरा बालक, किन्तु परोपकार की भावना और अन्याय के प्रति सिर न झुकाने की इसकी प्रवृत्ति प्रशंसनीय है; वह चिनगारी शायद सुखलाल-जैसे दुष्टों के हाथ में पड़ने पर सदा के लिए बुझ जायेगी। अन्याय के प्रति विद्रोह की इस भावना को, जो बिरले ही ग्रामीण लोगों में पायी जाती है, न पनपने देना भी उस अन्याय को प्रश्रय देना है। किन्तु इसका मेरा साथ नहीं निभ सकता। मैं अपने इस कर्त्तव्य को भी उसी विधाता के सहारे छोड़ता हूँ।

ऐसा निश्चय कर लेने पर उसने वहीं रुककर प्रेमशंकर से कुछ कहना चाहा। यह देखकर कि प्रेमशंकर की मुद्रा पर सुखलाल को चकमा देकर उससे बच निकलने से उत्पन्न उल्लास की चमक अब भी लुप्त नहीं हुई है और उसकी दृष्टि में उस पालतू कुत्ते का-सा स्वामिभक्ति का भाव है जो स्वामी के लिए शिकार मारकर सिर पर थपकी पाने की आशा करता है, रामप्रसाद भी मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ बोला—यह तो आपने ठीक ही किया, अब सड़क की ओर मुड़कर मुझे धनुपुर गाँव की ओर चलना है। आप?

प्रेमशंकर ने कहा—वहाँ जाने के लिए सड़क की ओर मुड़ना नहीं पड़ेगा। सड़क से तो तीन-चार मील का चक्कर पड़ेगा। इसी नाले के किनारे-किनारे चलने पर मील-भर चलकर ही हम वहाँ पहुँच जायेंगे।

उचककर फिर झटपट नाले के दूसरे किनारे पर चढ़कर वहीं खड़े-खड़े वह बोला—वह जो गाँव चमक रहा है उसके आगे आम का बड़ा बाग है, उसी से पूर्व की ओर वह बीज-गोदाम है। आइए, मेरे साथ-साथ चलिए।

पकी हुई फसल से भरे खेतों के बीच मेड़ों पर होकर वे दोनो धनुपुर के बीज-गोदाम के निकट आ गये। मार्ग में किसी खेत में लम्बी-लम्बी रोमावलियों से भरी गेहूँ की लालिमा लिये बालें लहरा रही थीं तो किसी खेत में बिना रोएँवाली कुछ-कुछ नीलिमा लिये हुए कतिपय छोटी चिकनी बालें थीं। यत्र-तत्र दोनो प्रकार के गेहूँ के खेत ऐसे लग रहे थे मानो किसी खेत में बड़ी-बड़ी मूछोंवाले सैनिक खड़े हों तो किसी में श्मश्रुविहीन। पौधे पर बालें जिस स्थान से आरम्भ होती थीं उसके नीचे गेहूँ के पौधों के डंठलों का रंग किंचित् पीला, फिर हरा और जड़ के पास फिर पीला हो गया था। रंगों का यह बँटवारा सब पौधों की समान ऊँचाइयों तक ऐसे विचित्र ढंग से हुआ था कि प्रत्येक खेत में पकी हुई फसल उस खेत के आकार की एक-दूसरे के ऊपर करीने से रखी हुई पारदर्शक सुनहरी परतों-सी लगती थी।

रामप्रसाद का मन उस स्वर्ण-राशि को देखकर प्रसन्न हो गया। वह सोच रहा था कि बीज-गोदाम के अधिकारी से पूछकर पता लगाऊँगा कि रोएँदार गेहूँ का प्रति बीघा उत्पादन अधिक है या बिना रोएँवाले गेहूँ का, तथा पशु किस गेहूँ का भूसा अधिक पसन्द करते हैं। दोनो प्रकार के गेहुँओं में जो आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद है उसी के उत्पादन को सरकारी प्रोत्साहन देना उचित होगा।

विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र उसका प्रिय विषय था और एम० ए० की परीक्षा में उसने ग्रामीण समाज-शास्त्र पर जो शोध-निबन्ध लिखा था उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी और वह विश्वविद्यालय की 'इकॉनामिक्स जर्नल' नामक पत्रिका में उसके चित्र सहित छपा भी था। अब इस नौकरी में उसे अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का अवसर तो नहीं मिलता, किन्तु ग्रामीण समस्याओं और ग्रामवासियों की आर्थिक कठिनाइयों के प्रति उसकी गहरी दिलचस्पी अब भी वैसी ही थी।

धनुपुर का बीज-गोदाम गाँव के किनारे था। उसमें तीन छोटे-छोटे कमरे

थे और सामने आठ-दस फुट चौड़ा खपड़ैल का छाया हुआ बरामदा था। बायीं ओर बड़ा-सा हाता था। उस हाते में बीज वापस करने के लिए आये हुए किसानों की चार बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। नीम के पेड़ की डाल से अनाज तोलने के लिए लोहे का भारी तराजू लटक रहा था। बरामदे की दीवालों पर गारे का पलस्तर कई स्थानों पर गिर गया था और कची-पकी ईंटों की जुड़ाई से बनी दीवाल नंगी दीख रही थी।

बरामदे में मेज़ के किनारे दो टूटी कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक कुर्सी पर बीज-गोदाम का सुपरवाइज़र बैठा सिगरेट पी रहा था, यद्यपि पास ही एक कमरे के दरवाजे पर उर्दू में लिखी 'सिगरेट-बीड़ी पीने की सख्त मुमानियत है' ऐसी एक धूल जमी हुई तख्ती लगी थी। वह बीज की वसूली का समय था। जिन किसानों ने अपनी फसल काट ली थी वे गोदाम से उधार लिये हुए बीज को लौटाने आये थे। उनमें एक अधेड़ स्त्री भी थी। वह अपनी बीज की गठरी को सँभालती हुई बार-बार कह रही थी—तुम्हारा काँटा सच्चा नहीं है। मैं चार बाल्टे बीज ले गई थी, अब पाँच ही बाल्टे वापस करूँगी।

रामप्रसाद के बरामदे तक पहुँच जाने तक न उस स्त्री ने रामप्रसाद को देखा, न सुपरवाइजर ने।

सुपरवाइजर, जिसका नाम चन्द्रकान्त था, उस स्त्री को डाँट रहा था—बक-बक मत कर, अनाज तोलकर लिया जाता है, नापकर नहीं। मज़ाक समझ रखा है! यह बनिये की दूकान नहीं, सरकारी गोदाम है, सरकारी गोदाम!

और उसका चपरासी उस औरत से अनाज की गठरी को झपटकर काँटे के पलड़े पर रखने को तत्पर था।

रामप्रसाद के बरामदे में आते ही सुपरवाइजर विद्युत् गति से उठ खड़ा हुआ। सिपाही की भाँति खट्-से सलाम कर कुछ क्षण हाथ बाँधे खड़ा रहा। उसके चपरासी राममिलन ने भी उस स्त्री की गठरी अपने हाथ से मुक्त कर दी।

रामप्रसाद ने मुस्कराते हुए चन्द्रकान्त से कहा, 'बैठिए।' और वह स्वयं भी बिना हथिए की उस खाली टूटी कुर्सी पर बैठ गया।

'राममिलन', सुपरवाइजर ने घबराकर चपरासी से कहा, 'हुजूर के लिए झटपट स्कूल से एक कुर्सी माँग ला, जल्दी भागकर जा।'

रामिलन, जिसे गाँव के किसान मिलन महाराज कहकर पुकारते थे, नाटा, भूरी आँखवाला लगभग पचास वर्ष का व्यक्ति था। इस गोदाम में काम करते उसे तीस वर्ष हो गये थे।

'नहीं-नहीं,' रामप्रसाद ने कहा, 'उसकी आवश्यकता नहीं है।'

किन्तु तब तक राममिलन चीतल की-सी छलाँग मारता द्रुतगति से भागकर फाटक के बाहर स्कूल की ओर जा चुका था।

रामप्रसाद ने देखा कि यद्यपि उसके आने की कोई खबर गाँव में न थी, फिर भी पास ही एक खाली मेज़ पर सुन्दर कढ़े हुए मेजपोश से ढककर चाय का सामान और कुछ खाने के पदार्थ रखे थे। तश्तरियों में रखे केले और सन्तरे स्पष्ट दिखलाई दे रहे थे। अहाते में कटहल के पेड़ के नीचे एक आदमी चायदानी हाथ में लिये जलते चूल्हे के पास पानी के उबलने की प्रतीक्षा में बैठा था।

सुपरवाइजर चन्द्रकान्त लगभग पैंतीस वर्ष का, दोहरे बदन का, स्वस्थ और रोबीला व्यक्ति था। उसके लाल-लाल फूले हुए गालों पर बड़ी-बड़ी नुकीली काली मूछें खूब सुन्दर लगती थीं। वह ऊनी गैबर्डीन का खाकी कोट, ऊनी फलालैन की पतलून, ऊनी मोजे और चमड़े के चमचमाते जूते पहने था। उसके गले में बँधी हुई लाल टाई खूब जँच रही थी। वे वस्त्र नये न होते हुए भी पर्याप्त स्वच्छ थे। रामप्रसाद सोचने लगा, गाँव में इन अर्द्धनग्न किसानों के बीच में ऐसे सुन्दर वस्त्र पहनना धन का अपव्यय है। ऐसी वेश-भूषा तो शहर में भी किसी उत्सव के समय ही उपयुक्त जान पड़ती है।

किन्तु अपना विचार व्यक्त किये बिना ही उसने उन कागजों को माँगा जिनके विषय में उसे जाँच करना अभीष्ट था। इस बीज-गोदाम का पिछला सुपरवाइजर गोदाम के हिसाब में कुछ गोलमाल के कारण नौकरी से निकाल दिया गया था। वह जाँच उसी से सम्बन्धित थी।

सुपरवाइजर ने अन्दर जाकर जाँच से सम्बन्धित ढेर सारे कागज़ निकालकर रामप्रसाद के सामने मेज पर रख दिये। रामप्रसाद को उन कागजों में तल्लीन देखकर पास ही रखी राममिलन द्वारा लायी हुई कुर्सी पर रामप्रसाद का बैग रखकर प्रेमशंकर भी बिना किसी से कुछ कहे वहाँ से अदृश्य हो गया।

सुपरवाइजर ने कहा--हुजूर, चाय तैयार है। पहले चाय पी लें, तब वह काम होता रहेगा।

चन्द्रकान्त द्वारा चाय पी लेने की बात सुनकर रामप्रसाद को सहसा प्रेमशंकर की याद हो आई। उसने कहा था कि आज सुबह से कुछ खाया नहीं है। सम्भवतः वह चाय पीने के इस प्रस्ताव का स्वागत करे। यद्यपि रामप्रसाद स्वयं चाय का आदी नहीं और न पीना ही चाहता था; किन्तु उसने सोचा, यदि प्रेमशंकर चाय पीना ही चाहे तो इस सभ्य अधिकारी का मन रखने के लिए मेरे साथ देने में हर्ज ही क्या है। यह तो अधिकारियों का पारस्परिक व्यवहार है। यह चन्द्रकान्त कभी मेरे घर आयेगा तो मैं भी इसे अपने साथ भोजन या चाय पर आमंत्रित कर लूँगा।

उसने इसी हेतु आँगन, अहाते और सड़क की ओर दृष्टि दौड़ाई। प्रेमशंकर को कहीं निकट न देखकर फिर चन्द्रकान्त से यह कहकर कि मैं पहले इस फाइल को देख लूँ, चाय तो मैं पीता नहीं, वह कागजों को पढ़ने लग गया। कागज़ का पढ़ना समाप्त करके उसने वे दो रजिस्टर माँगे जिनमें बीज के वितरण के ब्यौरे थे।

चन्द्रकान्त ने रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछकर कहा—सरकार, वह रजिस्टर तो मुझे चार्ज में नहीं मिला। मैं जब से आया हूँ नया रजिस्टर खोला गया है, उसे कहिए तो दिखाऊँ ?

रामप्रसाद की दृष्टि उस समय चन्द्रकान्त की टाई की लाल गाँठ पर थी। ऐसी सुन्दर टाई इस गाँव में बेकार ही तो जा रही है, उसने फिर सोचा, और ऊनी गैबर्डीन के कीमती कपड़े इन नंगे-भूखे किसानों के बीच ? अमेरिका के अमीर किसान भी शायद इन्हें न पहन पाते होंगे।

फिर चन्द्रकान्त को खड़ा देख रामप्रसाद ने कहा—अच्छा तो आप पुराना स्टाक बुक ले आइए।

चन्द्रकान्त ने अपने चपरासी को पुकारकर स्टॉक बुक ले आने को कहा और तहसीलदार की दृष्टि को अपने कपड़ों पर टकराती देख बोला—हुजूर, इस वर्ष गर्मी का मौसम बहुत जल्दी आ गया। मार्च का महीना और इतनी गर्मी ! लेकिन यह मौसम हुजूर, बड़ा धोखेबाज होता है। थोड़ी देर में गर्मी और फिर

घड़ी-भर में जाड़ा हो जाता है। तराई के इलाके में मौसम में यही धोखेबाजी रहती है। मैंने इसी लिए गर्म कपड़े नहीं उतारे।

रामप्रसाद ने मौसम की धोखेबाजी पर ध्यान नहीं दिया। वह सोचने लगा, यह लम्बा-चौड़ा सुडौल युवक तो पुलिस या सेना में नौकर होता तो बड़ा शालीन लगता। कृषि-विभाग में तो किसी कृषि-विशेषज्ञ या वैज्ञानिक को रहना चाहिए या निरे किसान को। कागजों से सिर उठाकर उसने चन्द्रकान्त से पूछा—इस गाँव में दो प्रकार के गेहूँ की फसल खेतों में है। एक गेहूँ बालोंवाला है दूसरा मुण्डा। इन दोनों में से इस इलाके में किसकी प्रति एकड़ पैदावार अधिक है?

चन्द्रकान्त ने अचकचाकर कहा—अरे राममिलन, सुनो, साहब क्या पूछ रहे हैं?

रामप्रसाद ने राममिलन को अपने निकट आने से हाथ से वर्जित करते हुए फिर चन्द्रकान्त से यही पूछा—आपने देखा है खेतों में दो प्रकार का गेहूँ?

चन्द्रकान्त ने कहा—जी, जी, गेहूँ कहीं-कहीं छोटा है, कहीं बड़ा; सब खाद की और मेहनत की बात है।

'अच्छा, बस ठीक है।' कहकर रामप्रसाद फिर उन कागजों पर झुक गया। उसे आश्चर्य हुआ कि कृषि-विभाग के इस अधिकारी ने सुनहरे खेतों की ओर एक बार देखा तक नहीं।

इतने में वह कर्कशा स्त्री फिर चिल्लाई—मुझे देर हो रही है, अपना बीज वापस लेना है तो लो, नहीं तो अगली फसल तक दे जाऊँगी।

राममिलन ने फुसफुसाकर, ताकि रामप्रसाद के काम में विघ्न न पड़े, किसानों से कहा—तुम लोग अब जाओ, आज तहसीलदार साहब मुआइना करेंगे, कल बीज लेकर आना।

'कल?' उस औरत के साथ-साथ बैलगाड़ियों में बैठे हुए और भी तीन-चार किसान चिल्लाये, 'मिलन महाराज, ऐसा न करो। दस कोस से आये हैं। लौट कर कल हम नहीं आ सकते, कल शिवरात्रि का व्रत है। शाम तक तो शिवालय से लौट पायेंगे। आज वहीं रात बिताने का इरादा किया है।'

रामप्रसाद ने कागजों पर से दृष्टि उठाई और सुपरवाइजर से पूछा—आपने

जहूरबख्श नाम के इस व्यक्ति का बयान लिया है ? उसने शिकायत की है कि जितना बीज वापस होना चाहिए उसका सवा ले लिया जाता है।

सुपरवाइजर इस प्रश्न को सुनते ही घबड़ाकर चट ऐसे खड़ा हो गया जैसे कक्षा में अध्यापक के प्रश्न का उत्तर देने के लिए विद्यार्थी खड़ा हो जाता है, और बोला—राममिलन को मालूम होगा, इस चपरासी को। मैं तो अभी आया हूँ सरकार, मुझे इस मामले में कुछ भी पता नहीं।

रामप्रसाद ने पूछा—आपको आये कितना समय हुआ ?

वह बोला—यही, इस मार्च २५ को आठ महीने होते हैं।

'आठ महीने ?' रामप्रसाद ने कहा, 'आठ महीने में आपने इस विषय में कुछ भी जाँच-पड़ताल नहीं की ?'

'जी, जी, हुजूर,' रोबीली मूछोंवाले विशालकाय चन्द्रकान्त ने काँपते हुए खड़े-खड़े कहा, 'मैं, सरकार, इस मुहकमे में ही नया आया हूँ।'

'नया ही आया हूँ ?' रामप्रसाद ने अविश्वास से पूछा, 'आपकी कितनी सर्विस है ? कब से हैं आप नौकरी पर ? बैठ जाइए। बैठकर बतलाइए।'

'जी सरकार, गरीबपरवर !' कुर्सी पर बड़ी असुविधा से बैठकर वह बोला, 'मैंने दस वर्ष तो राजा गंगाबल के दरबार में काम किया। उस रियासत के "मर्जर" (विलयन) के बाद कुछ दिन बेकार रहा। बहुत लिखा-पढ़ी की। अब इस महकमें में तीन वर्ष से हूँ।

रामप्रसाद ने पूछा—रियासत में भी तो आप कृषि-विभाग में काम करते होंगे ?

वह बोला—जी हाँ सरकार ! जब रियासत मिलाई गई उस समय मैं वहाँ का अग्रिकल्चर का डाइरेक्टर (कृषि-विभाग का संचालक) था।

'और उससे पहले ?' रामप्रसाद ने पूछा।

चन्द्रकान्त ने हाथ जोड़कर कहा—उससे पहले रियासत में फूड कमिश्नर था। कुछ दिन कंज़रवेटर-फारेस्ट रहा और कुछ दिन कलक्टर भी था, हुजूर। सवा सौ रुपये मिलते थे। काम तो महाराजजी जिस विभाग का सौंप देते थे वही करना पड़ता था।

सुपरवाइजर को इस प्रकार हाथ बाँधे खड़े देख गाड़ीवाले किसानों को आगे

बढ़ने का साहस हो गया। वे एक साथ बरामदे तक आकर हाथ जोड़कर बोले—सरकार, हमारा भी फैसला हो जाये। हमसे सवाई की सवाई क्यों ली जाती है? एक तो बीज ले जाते समय ८० तोले की बाट होती है तो वापस करते समय सौ तोले की, उस पर सवाई अलग ली जाती है। वापस करने आते हैं तो बीज समय पर नहीं लिया जाता।

चन्द्रकान्त के चेहरे पर उस जाड़े में भी पसीना छलक आया।

रेशमी रूमाल से मुँह पोंछते हुए उसने कहा—राममिलन, इन लोगों को बाहर क्यों नहीं निकालते, सरकार को काम नहीं करने देते हैं ये लोग।

रामप्रसाद ने पूछा—यह सवाई की सवाई क्या चीज़ है? जहूरबख्श की शिकायत भी तो इसी बात की है।

इस प्रश्न को सुनकर सुपरवाइजर की दीप्त मुद्रा अप्रतिभ हो गई, और मारे घबराहट के घिग्घी बँध गई। उसने चपरासी राममिलन की ओर ऐसे देखा मानो वही उसका त्राता हो।

राममिलन ने किसानों को पूर्ववत फटकारकर कहा—अरे भाई, जाओ, घर जाओ। सरकारी गोदाम है। जितना बीज ले जाओगे उसका सवा तो वापस करोगे, यही कायदा है। तुम लोगों को कितनी बार समझाया जाये। इसमें न हमारा कसूर न बाट-तोल का। यही मैनुअल में लिखा है।

मैनुअल के नियमों की अपनी दक्षता को प्रकट कर देने की प्रसन्नता में उसने सुपरवाइजर की ओर गर्व से देखा, किन्तु रामप्रसाद बात को ताड़ गया। राममिलन से कुछ न कहकर उसने किसानों से पूछा—सवाई की सवाई क्या होती है?

एक किसान ने वहीं पर बरामदे में बैठकर अपनी टूटी भाषा में कहा—आप जानते हैं, खूब जानते हैं। आप भी शहर के रहनेवाले होकर अनजान बनते हैं। हम लोगों को ठगते हैं, सवाई की सवाई नहीं जानते!

सुपरवाइजर ने कुछ सँभलकर कहा—सरकार, ये लोग जाहिल हैं। जितना ही इनके साथ नरमी से पेश आइए उतना ही मुँह लगते हैं। न रहे ये लोग रियासत में। ऐसी गुस्ताखी का तो वहीं मुँहतोड़ जवाब दिया जाता था।

'अफसर आये हैं तो न्याय करने को, लेकिन यहाँ तो अन्धेर है अन्धेर!'

वह किसान बोला, 'चार सेर बीज ले जाते हैं तो कायदे से वापस माँगना चाहिए पाँच सेर। इतना हिसाब तो हम भी जानते हैं। इस गोदाम में चार सेर बीज के बदले में पाँच सेर के बजाय पच्चीस पव्वे बीज वापस माँगा जाता है। कोई सुनवाई नहीं होती!'

रामप्रसाद ने प्रसन्नता से सिर हिलाकर कहा—किसान भाइयो, आप मुझे क्षमा करें। मैं आपका तात्पर्य वास्तव में अब तक समझा न था। अब समझ गया हूँ कि सवाई की भी सवाई क्या होती है।

कर्कशा स्त्री, जो अब तक मुँहबाये खड़ी थी, एक खाली बाल्टी को औंधा करके बोली—समझ गये तो मेरा भी हिसाब बूझ लो। मैं अगहन में जब बीज ले गई थी तो घर जाते ही मैंने उसे इस बाल्टे से भरा था। चार बाल्टे हुआ था, अब पाँच बाल्टे लायी हूँ। ये लोग कहते हैं छह बाल्टे भी कम हैं।

'कहेंगे क्यों नहीं?' उस किसान ने बैठे-बैठे कहा, 'सौ तोलेवाले बटखरे रखे हैं तौलने के लिए। जैसे चार सेर के सवा छह सेर हो गये उसी हिसाब से सवा छह बाल्टे तुमसे भी माँगते होंगे।'

किसानों की उस मंडली के मध्य रामप्रसाद पर सभी किसान ऐसा आक्षेप कर रहे थे मानो वही ऐसे दो प्रकार के बाट रखने की अनुमति देकर भोले-भाले किसानों को ठगकर, सब-कुछ जानते हुए, स्वयं दूर-ही-दूर अनजान-सा बना बैठा रहता है। वे उसके कर्त्तव्य को नहीं जानते थे, उन्होंने उसे सुपरवाइज़र का ही कोई बड़ा अफसर समझा था।

रामप्रसाद अब उन कागजों को पढ़ना व्यर्थ समझकर चुपचाप बैठ गया। क्योंकि यही तो वह शिकायत थी जिसके कारण पुराना सुपरवाइजर हटाया गया था।

कुछ देर उसी प्रकार चुपचाप बैठा वह फिर एकाएक उठकर काँटे के निकट रखे बटखरों को देखने लगा। फिर बिना कुछ कहे वह गोदाम के अन्दर कमरों में प्रविष्ट हुआ। उन कमरों की दीवालें भी यत्र-तत्र गिरे हुए गारे के पलस्तर के कारण नंगी दीख रही थीं। दो चूहे बोरों के नीचे-ऊपर दौड़ लगा रहे थे। कमरे के चारों कोनों पर मकड़ी के जालों में फँसे मच्छरों के कारण झाड़ियाँ-सी बन गई थीं। बोरों के किनारे-किनारे वह बड़ी-सी खुली

आलमारी तक गया। उसमें रखे हुए बाटों को देखकर फिर अपने हाथ में एक खाली बोरा लाकर उसने उसे चपरासी को देकर कहा—इसे काँटे पर रखकर देखो, यह खाली बोरा वजन में कितना है?

चपरासी ने बोरे को काँटे पर रखकर बताया—अठारह छटाक।

'यह बेईमानी है,' वह स्त्री चिल्लाई और उसके साथ ही वे किसान बीच ही में बोले, 'बोरा अस्सी ताले के सेर से पूरा डेढ़ सेर होना चाहिए। अठारह छटाक हरगिज नहीं।'

रामप्रसाद को क्रोध आ गया। किन्तु अपने क्रोध को यथाशक्ति शान्त करते हुए उसने उस स्त्री से कहा—माताजी, आप अपना लाया हुआ बीज बाल्टे से ही नापकर इस बोरे में रखकर इस चपरासी को दे दें।

स्त्री ने पाँच बाल्टे बीज भरकर बोरे में डाल दिया। उसकी मुद्रा पर ऐसा भाव था मानो उससे वह बीज मुफ्त ही ले लिया गया हो।

रामप्रसाद ने चपरासी से कहा—अन्दर आलमारी में रखे बाट लाकर इस बोरे को तोलो।

फिर सुपरवाइजर की ओर मुड़कर शान्ति से कहा—मुझे दिखाइए, इस स्त्री को दिये गये बीज का हिसाब रजिस्टर में कहाँ पर अंकित है?

सुपरवाइसर ने इस बार तत्परता से वह पृष्ठ सामने कर दिया।

रामप्रसाद ने देखा कि उस स्त्री को बीस सेर गेहूँ दिया गया था। अब वापस किया गया गेहूँ तौल में अस्सी ताले के सेर की तौल से छब्बीस सेर छः छटाक के लगभग था। इसमें खाली बोरे का वजन काट लेने पर लौटाये गये गेहूँ पूरे पच्चीस सेर होते थे।

रामप्रसाद ने कहा—माताजी, आपका गेहूँ वजन में ठीक है, रसीद लेती जाओ।

और तत्काल सुपरवाइजर से उसे २५ सेर की रसीद दिला दी।

शेष किसानों को भी बुलाकर रामप्रसाद ने अपना-अपना गेहूँ तौलने के लिए कहा और उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जितना गेहूँ वे लाये वह कम नहीं कुछ-न-कुछ अधिक ही था।

वह बुढ़िया जैसे ही अहाते से बाहर निकली गाँववालों में खलबली मच

गई कि आज कोई नया अफसर बीज गोदाम में आ गया है, जो ठीक सवाई पर ही बीज वापस लेने को तैयार है। जिस किसी को बीज वापस करना था वह दौड़ा हुआ गोदाम की ओर आने लगा।

जब तक उन चार किसानों का गेहूँ तौला गया, दस और किसान आ धमके।

रामप्रसाद ने देखा कि अब साढ़े पाँच बजे का समय हो गया है, लेकिन बीज वापस करनेवालों की भीड़ बढ़ती चली जा रही है। लोगों को उसने समझाना चाहा कि उन लोगों का बीज अब कल ही वापस लिया जायेगा और सौ की तौल से नहीं, अस्सी की तौल से, किन्तु किसी को विश्वास न हुआ।

रामप्रसाद ने तत्काल इसका उपाय भी सोच लिया। अन्याय और अत्याचार का विरोध तो वह निर्भयतापूर्वक करता ही था। अपना निर्णय करने और तत्काल उसे कार्यान्वित करने की उसमें अनूठी क्षमता थी। ऐसे अवसर के आने पर अपने अप्रिय कर्त्तव्य से न वह पीछे हटता था न दीर्घसूत्रता का आश्रय ही लेता था। वह बोला—आप अपने गाँव के मुखिया या सभापति को बुला लीजिए।

एक बूढ़े किसान को आगे धकेलकर लोगों ने कहा—यह गाँव के मुखिया रामलोटन हैं।

रामप्रसाद ने एक सादा कागज निकालकर लिखा : "आज धनुपुर के बीज-गोदाम का श्रीचन्द्रकान्त सुपरवाइजर तथा चपरासी राममिलन के समक्ष निरीक्षण किया। अपने बीज को वापस करने के लिए आये हुए नीचे लिखे किसान उपस्थित थे। किसानों ने शिकायत की कि उन्हें बीज देते समय अस्सी तोले की तौल से बीज मिलता है और वापस लेते समय सौ तोले के सेर के बटखरों से। मैंने गोदाम के बाहर काँटे पर दूसरे प्रकार के सौ तोलेवाले बाट पाये और अन्दर अस्सी तोलेवाले। सौ तोलेवाले सब बाट अपने सामने एक बोरे में रखकर इन किसानों के सामने मुहर कर दिये और उस बोरे पर बीज-गोदाम की मुहर भी लगा दी। इस बोरे को गाँव के ग्राम-सभापति श्री रामलोटन को सौंप दिया कि अपने पास तब तक सुरक्षित रखें जब तक उन्हें

इन बाटों को तहसील में पेश करने को न कहा जाये ।"

इसके बाद उन किसानों के नाम और पते थे ।

सबके सम्मुख इस लेख को पढ़कर उस पर अपने हस्ताक्षर करके रामप्रसाद ने बाटों को रामलोटन की बैलगाड़ी पर रखवा दिया । उस लेख पर सुपरवाइजर, उसके चौकीदार के हस्ताक्षर और उन किसानों में से पढ़े-लिखों के हस्ताक्षर और शेष के अँगूठे लगवा लिये ।

उस कागज को सँभालकर जब रामप्रसाद जेब में रखने लगा तो सुपरवाइजर ने आखों में आँसू भरकर उसका हाथ पकड़ लिया । चौकीदार राममिलन ने भी उसके पाँव पकड़कर रोते-गिड़गिड़ाते कहा—सरकार, हमें इस बार मुआफ कर दिया जाये । हमारी नौकरी न ली जाये । हम बाल-बच्चेदार हैं । हम मर जायेंगे ।

सुपरवाइजर ने उन सब किसानों के मध्य में अपने आत्म-सम्मान को अक्षुण्ण रखने की भावना से कुछ हिन्दी और कुछ टूटी-फूटी अँग्रेजी में कहा—सर, मैं भी इस बेईमानी के बिलकुल खिलाफ था । ईमानदारी ही मेरा उद्देश्य है, लेकिन सर, आप इस मामले में कुछ और कार्यवाही करने से पहिले हमारे अफसर, अग्रिकल्चर विभाग के अधोक्षक से बात कर लें तो बेहतर होगा । यहाँ तो सब बीज-गोदामों में यही होता आया है ।

वह कहना चाहता था कि उस बीज-गोदाम से दो बोरे गेहूँ एस० डी० ओ० के घर भेजने के इरादे से दारोगा उठा ले गये और एक बोरा अधीक्षक के घर भेजा गया है । यदि सौ तोले के बटखरे न लगाये जायें तो वह कमी पूरी कैसे हो सकती है, किन्तु सभी छोटे कर्मचारियों की भाँति भीरु स्वभाव का होने के कारण वह अपनी बात स्पष्ट न कर सका ।

उसकी बातों पर ध्यान दिये बिना रामप्रसाद ने कुर्सी से उठते हुए कहा—मुझे क्या करना है यह मैं जानता हूँ, लेकिन आपको अब एक लिखित सूचना इस बीज-गोदाम में लगा देनी चाहिए कि एक सेर के बदले में सवा सेर ही बीज वापस लिया जायेगा और बीज लेते तथा देते समय एक ही प्रकार के, अस्सी तोलेवाले बाट प्रयोग में लाये जायेंगे ।

उसी समय किसानों के बीच में से किसी ने पतली किन्तु ओजस्विनी

आवाज में कहा—बोलो ईमानदार अफसर की जय !

बरामदे और आँगन में खड़े दो दर्जन किसानों ने हाथ उछालकर एक स्वर से कहा—जय !

उस जयजयकार के पीछे प्रेमशंकर का ही हाथ होगा यह जानकर राम-प्रसाद झुँझला उठा और विह्वल होकर बोला—इस प्रकार हल्ला करने से क्या लाभ ? ईमानदारी सरकारी नौकर का पहला अनिवार्य कर्त्तव्य है। अपने-आपसे ईमानदारी, जनता से ईमानदारी, क्योंकि उसी के दिये लगान और टैक्सों के रुपये से हम सब सरकारी नौकरों को वेतन मिलता है। सरकारी नौकर तो जनता के सेवक हैं, उन्हें आपको भी ईमानदार बनाना है।

'ईमानदारी कहते हैं सरकार, आप ?' एक किसान ने, जो साफ-सुथरे कपड़े पहने, आँखों पर मोटा चश्मा लगाये था, आगे बढ़कर कहा, 'सरकारी नौकरों को जनता ईमानदार कैसे बना सकती है ? उनकी शिकायत करने का भला हम साहस कर सकते हैं ? इस साल चीनी के कारखाने में गन्ने की तौल के समय कैसी बेईमानी हुई इसे हम सब लोग जानते हैं ! झूठी-सच्ची बाट से किसानों को ठगकर सैकड़ों मन अधिक गन्ना लिया जाता रहा। उस गन्ने के दामों में जो एक-एक दिन में डेढ़-दो हज़ार रुपये तक पहुँचता जाता था, गन्ना सोसाइटी के छोटे से बड़े कई अफसरों को हिस्सा मिलता रहा। मुझे सब मालूम था। उसी में से अफसरों के घर रोजाना डेढ़-डेढ़ दो-दो सौ रुपये भेजे जाते थे। जब मैंने तोलनेवालों की शिकायत की तो नतीजा यह हुआ कि मेरा गन्ना लिया ही नहीं गया। गन्ने से भरी गाड़ियाँ दो बार वापस घर लानी पड़ीं। क्या करता, छह सौ रुपये के गन्ने का नुकसान हुआ। सब काट-काटकर ढोरों को खिलाना पड़ा।'

दूसरे किसान ने कहा—जब तुम उसी कारखाने में काम करते थे तो क्या तुम हमें कम परेशान करते थे ? निकाले गये तो अब उनकी बुराई करते हो !

'निकाला नहीं गया,' वह किसान अपना चश्मा सँभालते हुए बोला, 'वह बेईमानी मुझसे नहीं देखी गई तो नौकरी छोड़ आया।'

रामप्रसाद का सदर तक की बैलगाड़ी की यात्रा का आयोजन अब तक भी कार्यान्वित न हुआ था। अतः वह मुट्ठी पर गाल रखे उन लोगों की बातों

को सुनता हुआ फर्श पर ऐसी पैनी दृष्टि से देखता रहा मानो चतुर्दिक फैले इस भ्रष्टाचार का उपाय भूगर्भ में कहीं लिखा हो और वह उसे ध्यान से पढ़ रहा हो।

सुपरवाइजर को बड़ी बेचैनी से कभी उठते और कभी बैठते, अत्यधिक परेशान देखकर रामप्रसाद ने कहा—मैं इस सम्बन्ध में आपके अफसरों से भी बात करूँगा। आपसे पहले इस सम्बन्ध में जवाब लिया जायेगा और आपके जवाब मिलने पर आगे कार्यवाही होगी।

'बड़ी कृपा होगी।' सुपरवाइजर ने कहा। फिर उठकर हाथ जोड़े हुए वह बोला, 'अच्छा सरकार, चाय बन चुकी है, पी लीजिए।'

'नहीं,' रामप्रसाद ने कहा, 'धन्यवाद! मुझे जल्दी जाना है। आपको कष्ट न हो तो इन बैलगाड़ीवालों में से किसी एक को, जो मेले की ओर जा रहा हो, मेरे लिए किराये पर तय कर लीजिए।'

मन-ही-मन वह सोचने लगा कि अच्छा ही हुआ जो मैंने यहाँ आते ही चाय पीने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। यहाँ पर गन्ने की झूठी तौल से प्राप्त रुपये में उन अफसरों का हिस्सा बटाने की बात हो रही है। चन्द्रकान्त के इस ठाठ-बाट और बढ़िया चाय का नित्य आयोजन भी तो उसी गेहूँ के तौल के छल से प्राप्त धन से होता होगा। मैं अकारण ही उसमें हिस्सा बँटाने का दोषी समझा जाता।

चन्द्रकान्त के उठकर फाटक की ओर जाते ही उसी शिकायत करनेवाले चश्माधारी किसान ने कहा—साहब, और जो बात हो ये नये सुपरवाइजर तो बड़े ही सज्जन हैं। सुना है ये राजा साहब के रिश्तेदार भी हैं। रही बट-खरों की बात। तो यहाँ जो रामनगर मंडी है उसमें तो सौ तोले का बाट अब भी चलता है।

दूसरा किसान बोला—वह बाट आलू की तौल के लिए है, गेहूँ के लिए नहीं, इस बात को सुपरवाइजर को देखना चाहिए।

इस पर चश्माधारी बोला—ये बेचारे गोदाम आते कब हैं। आज तो कोई अफसर लोग आनेवाले थे इसी लिए चले आये। यही मिलन महाराज सब-कुछ देखते-भालते हैं, लेकिन इनका भी दोष नहीं। बड़े अफसरों का हुक्म

मानना ही पड़ता है। मैं ही गन्ने की तौल करता था, तो क्या अपने मन से बेईमानी करता था ?

रामप्रसाद उन किसानों के आपस के वार्त्तालाप को ऐसे उदासीन भाव से सुनता रहा मानो वह उनकी भाषा ही न समझता हो। फाटक के पास प्रेम-शंकर पर दृष्टि पड़ते ही उसका ध्यान भंग हो गया। उसको निकट बुलाकर उसने कहा—यह कोई सभा नहीं थी, न कोई जलसा ही था। तुमको सरकारी काम में इस प्रकार मेरी जय बोलकर विघ्न नहीं डालना चाहिए था।

यह कहते-कहते प्रेमशंकर को रुआँसा-सा होते देख रामप्रसाद अपने स्वर को यथाशक्ति कोमल बनाकर बोला, 'बच्चों की पाठशाला में पढ़ाने के कारण तुम इन बूढ़े सयाने किसानों से भी बच्चों-जैसा ही व्यवहार करने लगे हो। इनसे मेरी जय बुलाने से न इनका कुछ उपकार होगा न तुम्हारा।' ऐसा कहकर प्रेमशंकर का मन रखने के लिए वह मन्द-मन्द मुस्कराने लगा।

प्रेमशंकर दो पग आगे बढ़कर बोला—तहसीलदार साहब, 'सत्यमेव जयते' तो हमारी स्वतंत्र देश की सरकार का भी 'मोटो' है। मैंने आपकी प्रशंसा में जय नहीं कहा। आपने इस बीज गोदाम के जाली बाटों को सरेआम जब्त किया। उसी के लिए मैंने वह 'जय' कहा कि सच्चाई की जय हो। इन गाँवों के इतिहास में यह ऐसी पहिली घटना है अन्यथा यहाँ तो यदि कोई चोरी होती है तो पुलिस आती है, अपराधी को पकड़ने के लिए नहीं, अपनी जेब गरम करने के लिए। वह चोर और शिकायत करनेवाले, दोनों से पैसा वसूल करती है। डाका पड़ने पर वह उन लोगों को बार-बार पकड़कर फिर जेल में ठूँसने के लिए आती है जिनका नाम, एक बार निरपराध पकड़े जाने पर भी पुलिस के रजिस्टर में दर्ज हो जाता है। वे बेचारे कभी सँभल नहीं पाते। किसी गाँव में कोई वारदात हो जाये तो उनकी पेशी हो जाती है और उन पर मार पड़ने लगती है। इसी गाँव में, वह देखिए, श्रीधर नाम का यह लोध है। खाता-पीता व्यक्ति है। इसे पुलिस ने चोरी का माल पास रखने के अपराध में पकड़ लिया। इसके घर से गेहूँ उधार लेकर सबके सामने बरसाती चमार अपनी औरत की हँसुली गिरवी रख गया था। पुलिस ने कहा वह चोरी का माल था। पकड़े जाने पर पुलिस ने उसकी मुक्ति का मूल्य माँगा दो सौ रुपये। जब इसे समझाकर

वकील के पास भेजा गया तो वकील ने सौ रुपये फीस माँगी। इसकी समझ में लाख समझाने पर यह बात नहीं आई कि वकील की भाँति दारोगा फीस का अधिकारी नही है। गाँव के ये अनपढ़ लोग तो दोनों को एक-सा समझते हैं। कचहरी जाकर छूटना पसन्द नहीं करते, उन्हें तो कचहरी के वकील से अधिक सुविधाजनक मुक्ति का उपाय गाँव में ही थानेदार को उसकी मुँहमाँगी फीस दे देना है। इन्हें कौन समझाये कि यह बेईमानी है। दोनों में से जो सौदा आसान है वही ये तय कर लेते हैं। आपके यहाँ आने पर इन्हें ज्ञान हुआ कि बीज-गोदाम में दो प्रकार के जो बाट रखे हैं, वह भी बेईमानी है, उसके लिए सरकारी स्वीकृति नहीं है। आपने इनके सम्मुख यह बात स्पष्ट की, इसलिए मैंने इन्हें समझाया और समझने पर स्वयं हर्षित होकर इन्होंने वह 'जय' बोली।

रामप्रसाद ने देखा कि प्रेमशंकर ग्रामीण लोगों के मध्य खूब अच्छा भाषण दे सकता है। उन मुग्ध श्रोताओं के मध्य अपने भाषण के चरम बिन्दु पर पहुँचने की प्रसन्नता में उसने झट कूदकर बरामदे में जाकर पुकारा—भाइयो, अब आप समझ गये कि बीज-गोदामों में एक ही प्रकार के अस्सी तोले का सेर सरकारी....

उसका वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि फाटक के बाहर ठहाके की हँसी सुन पड़ी। एक हाथ में बेंत लिये, दूसरे हाथ से मूछों पर ताव देते दारोगा हामिदअली भीड़ के पीछे से आते दीख पड़े। दूर ही से उसने पुकारा—कुँवर चन्द्रकान्त, अमाँ कहाँ छिपे हो? कुछ है न्याय का डौल?

फिर उसकी दृष्टि बरामदे में खड़े प्रेमशंकर पर पड़ी। उसकी फटी सदरी के बटन खुले थे। दायाँ हाथ ऊँचा उठा था। वह जोर से चिल्ला रहा था। उसके गले की नसें फूली थीं। उसे देखते ही दारोगा के प्रचंड अट्टहास से बीज-गोदाम की जर्जर दीवालें गूँज उठीं और उसने कहा—सिपाहियो, पकड़ लो, इसको यहाँ, इस सरकारी हाते के अन्दर आने किसने दिया?

निकट आने पर खम्भे की ओट में मेज के पास टूटी कुर्सी पर से हाथ में बैग लिये रामप्रसाद को उठते देखकर दारोगा झट रुक गया। उसकी भाव-भंगी से ऐसा जान पड़ा मानो उसे रामप्रसाद अब अचानक ही दीख पड़ा

हो। अब नित्य की भाँति किंचित् झुककर अपनी हथेली को दाढ़ी तक ले जाकर सलाम करते हुए उसने कहा—आप भी यहाँ तशरीफ लाये हैं ? बन्दा आप ही को तो तलाश करने भेजा गया है।

रामप्रसाद निश्शंक उसकी ओर देखता रहा। अचानक दारोगा के आ जाने से उस समय भय, लज्जा तथा संकोच का लेश भी उसमें न था।

दारोगा के आने के दो क्षण पहिले, देर होते देख, रामप्रसाद बाहर जाकर स्वयं बैलगाड़ी का किराया तय करने का निश्चय कर चुका था, किन्तु अब दारोगा के आ जाने पर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया। अपने भावी दुर्भाग्य की बात सोचकर जो भय का-सा भाव उसके मन में उत्पन्न हो गया था, अब वह दूर हो गया। उसने सोचा, कोई बात नहीं। यदि दर्शनलाल आ ही गया है तो उसे मैं चार्ज दे दूँगा। इस तरह आज शाम की यात्रा की यह सफल समाप्ति हो गई कि मैंने इस गोदाम की अब तक चली आती एक कुप्रथा का अन्त कर दिया।

प्रेमशंकर के साथ उस प्रकार छिपे-छिपे चले आने से उसके मन में उत्पन्न अपनी ही जो कायरता की-सी आत्म-ग्लानि थी, अब दारोगा के सामने आ जाने से, वह क्षण-भर में विलुप्त हो गई। उस समय एक अनोखे आत्मबल का उसमें संचार हो गया। उसने असाधारण शान्ति से कहा—आइए दारोगाजी, बैठ जाइए।

उस समय प्रेमशंकर को नीचे उतारकर उसकी बाहें दारोगा के आज्ञानुसार दो सिपाहियों ने पकड़ ली थीं। वह चिल्ला रहा था—किसान भाइयो, देखो, सच्ची बात कहने का फल। यह है जनता के जान और माल की रक्षक पुलिस की करतूत!

भीड़ बढ़ती जा रही थी। फाटक के बाहर बैलों को घेरकर बच्चे जमा हो गये थे। खलिहानों और खेतों से लौटती स्त्रियाँ भी उस भीड़ में सम्मिलित होती जा रही थीं। कोलाहल को सुनकर कौतुहलवश गाँव के कोने-कोने से बूढ़े और अपंग भी उसी ओर बढ़े चले आ रहे थे। थोड़ी ही देर में वहाँ अपार भीड़ एकत्र हो गई।

भीड़ में कई दल हो गये थे। एक दारोगा और सिपाहियों के समर्थकों

का और दूसरा प्रेमशंकर के साथ सहानुभूति रखनेवालों का, तीसरा दर्शकों का। कोई चिल्ला रहा था, 'उसे छोड़ दो, छोड़ दो!' दूसरी ओर से चौकीदार पुकार रहा था, 'हटो, जाओ अहाते से बाहर! निकलो!'

उस भीड़ का अनुमान दारोगा ने नहीं किया था। अब अकस्मात् संकट की आशंका से उसको पसीना छूट आया। उस समय उस गड़बड़ी के मध्य दारोगा ने रामप्रसाद की ओर देखा कि देखें उस पर क्या बीत रही है। रामप्रसाद की शिशु-सुलभ अबोध मुद्रा पर विलक्षण शान्ति विराजमान थी। उसका मस्तक उठा हुआ था और निश्शंक दृष्टि में अपूर्व स्थिरता थी। दारोगा को कुछ कहने का अवसर दिये बिना वह फिर बोला—दारोगाजी, बैठ जाइए। मुझे आपसे कुछ कहना है।

दारोगा अनिच्छा से कुर्सी पर बैठ गया। आया तो वह था तहसीलदार को अपने साथ ले चलने, किन्तु यहाँ इस झमेले में पड़ गया। साथ में दो ही सिपाही थे। उनसे भीड़ को नियंत्रण में रखना कठिन था।

रामप्रसाद ने अपनी कुर्सी दारोगा के निकट खिसकाकर कहा—इस भीड़ में आपके सिपाहियों को उसे इस प्रकार पकड़ना ठीक नहीं है। उनसे कहिए कि उसे छोड़ दें; यदि आपको उसे गिरफ्तार करके ले ही जाना है तो ऐसे नहीं। मैं उसे बुला देता हूँ। यहाँ उसे एक कोने पर बिठाकर भीड़ के छँटने पर आप उसे अपनी अभिरक्षा में ले सकते हैं।

फिर दारोगा को उठते देख उसने कहा—हाँ, किस अपराध के लिए आप उसे पकड़ रहे हैं?

दारोगा तहसीलदार के उन्नत मस्तक की ओर ताकता रहा। उसे जल्दी ही कोई जवाब न सूझा। अनधिकार प्रवेश, बलवा, मुजहमत आदि अनेक कारण उसकी समझ में उसकी गिरफ्तारी के आये किन्तु कौन-सा अपराध सबसे ठीक होगा, यह झट न सोच सकने के कारण वह दो क्षण चुप रहने के बाद बोला—बदअमनी फैलाता है, सरासर बदअमनी, उचक्का, बदमाश!

रामप्रसाद ने कहा—ठीक है, आप उसे अभी छुड़वाकर मेरे पास आने की आज्ञा दे दीजिए।

उस समय भीड़ में एक लड़के के नंगे पाँव पर पुलिस के सिपाही का भारी

बूट पड़ गया। पाँव के कुचल जाने से सम्भवतः खाल उतर गई थी। लड़का सिपाही को धक्का देकर दहाड़ मारकर रोने लगा। उस धक्के से भीड़ में चार-छह लोग दीवाल से जाकर टकराये। कुछ लोगों ने समझा कि सिपाही ने उस लड़के पर डंडा चला दिया। तभी उस नाटक के मानो नैपथ्य में 'मार डाला, मार डाला' शब्द सुनाई पड़ने से भीड़ उत्तेजित हो गई। किसी क्षण दुर्घटना हो सकती थी।

दारोगा ने उसी समय यथाशक्ति चिल्लाकर कान्स्टेबिलों को रामप्रसाद की आज्ञा कह सुनाई। उसका कानूनी मस्तिष्क इस बात को समझता था कि प्रेमशंकर को पकड़ने के लिए उसके पास वारंट नहीं है। वह यह भी जानता था कि जब तक रामप्रसाद के पास तहसील का चार्ज है, द्वितीय कोटि का मैजिस्ट्रेट होने से उस इलाके में शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस से अधिक उत्तरदायित्व उसी का है तथा यह कि पुलिस को उसकी आज्ञा मानना अनिवार्य है।

सिपाहियों ने दारोगा का संकेत पाकर प्रेमशंकर को छोड़ दिया।

रामप्रसाद ने कुर्सी से उठकर गाँव के मुखिया रामलोटन को बुलाया और उससे कहा—कृपया आप गाँववालों से अहाते से बाहर जाने को कहें। प्रेम-शंकर जहाँ कहीं हो उसे मेरे पास भेज दें।

प्रेमशंकर लौट आया। कुछ अपना आत्म-सम्मान बनाये रखने और कुछ दारोगा को चिढ़ाने की इच्छा से बरामदे में आकर तीसरी खाली कुर्सी को खींचकर उसी पर दारोगा के पास ही अकड़कर बैठ गया। रामप्रसाद प्रेम-शंकर की उस हेकड़ी को देखकर मन-ही-मन मुस्कराया। उसने सोचा था कि प्रेमशंकर रामभिलन की भाँति वहीं कहीं फर्श पर बैठ जायेगा; किन्तु उसे ऐसा न करते देख उसने स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं, न ऐसा करने से मना किया। उधर दारोगा दाँत पीसता रह गया। उसने प्रेमशंकर की ओर से आँखें फेर लीं और रामप्रसाद से बोला—तहसील में आपके नाम कोई बहुत जरूरी हुक्म आया है, इसलिए मैं उसकी आपको इत्तला देने चला आया हूँ। बाहर एक्का खड़ा है। अर्ज है कि आप जल्दी ही चले चलें। पुराने तहसीलदार दर्शनलाल आपका वहाँ बड़ा इन्तजार कर रहे हैं।

रामप्रसाद ने अँग्रेजी में कहा—मैं उस हुक्म के विषय में जानता हूँ, लेकिन मैं अपना दौरे का कार्यक्रम बना चुका हूँ, उसे बदल नहीं सकता। मुझे इस समय उस मेले में जाना चाहिए। दर्शनलालजी से आप मेरा प्रणाम कहिए और यह बतला दीजिए कि मैं लौटकर कल शाम या परसों सुबह उन्हें अवश्य तहसील का चार्ज दे दूँगा।

दारोगा, यह जानकर कि रामप्रसाद को अपने प्रति हुआ सरकारी आदेश ज्ञात है, उससे इस अप्रत्याशित शान्त उत्तर को पाकर उसकी ओर देखता रह गया। फिर दोनो हाथ मेज पर रखकर बड़ी आत्मीयता से सहानुभूति प्रदर्शित करने का उपक्रम करते हुए बोला—बड़ा अफसोस है तहसीलदार साहब, इतनी जल्दी आपका तबादला हो गया! सरकार के तौर-तरीके कुछ समझ में नहीं आते। अच्छा-खासा काम चल रहा था।

रामप्रसाद ने उसकी बातों पर ध्यान दिये बिना फाटक की ओर देखकर सुपरवाइजर को पुकारकर कहा—चन्द्रकान्तजी, तय कर लिया आपने बैलगाड़ी को?

चन्द्रकान्त ने कहा—जी सरकार, यह है उसी गाँव के निकट की गाड़ी। खाली जा ही रही है, किराये की क्या बात है? इसी में बैठकर चले जाइए। ये लोग चार आने सवारी तो किराया माँग ही रहे हैं, लेकिन आपसे भला कैसे ले सकते हैं?

रामप्रसाद ने कहा, 'नहीं, नहीं। मैं उसे किराया दूँगा।' फिर गाड़ीवाले को सम्बोधित करके वह बोला, 'कितनी सवारियाँ ले जाते हो तुम?'

वह बोला—यही आठ-दस।

रामप्रसाद ने कहा—अच्छा, तुम्हारी गाड़ी में मैं अकेला ही बैठूँगा। दो रुपये किराया मिलेगा; ठीक है?

किसान ने कहा—जो सरकार दे देंगे ले लूँगा।

दारोगा और प्रेमशंकर को उसी प्रकार बैठे छोड़कर रामप्रसाद उस बैल-गाड़ी में अपना बैग रखकर स्वयं भी सवार हो गया। जाते-जाते दारोगा से अँग्रेजी में बोला—दारोगाजी, इस प्रेमशंकर के प्रति आपको जो कुछ करना हो कर सकते हैं, मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना है।

दारोगा स्तम्भित रह गया। कहाँ तो वह रामप्रसाद को पकड़कर अपने साथ बरबस तहसील में वापस ले जाने का निश्चय करके आया था और कहाँ अब स्वयं पराजित-सा किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ा उस बैलगाड़ी को जाते हुए ताकता रह गया।

रामप्रसाद के चले जाने पर सुखलाल की प्रतीक्षा में दारोगा कुछ देर वहीं बैठा रहा, फिर चाय पी जाने लगी। चन्द्रकान्त से उसे यह जानकर तो और भी अधिक क्षोभ हुआ कि रामप्रसाद ने बीज-गोदाम के खोटे बाट जब्त कर लिये। चन्द्रकान्त से उसने बड़ी सहानुभूति दिखलाई। यद्यपि मन-ही-मन यह कल्पना करके वह प्रसन्न था कि मुकदमा चालान करने को उसी के पास आयेगा। वह इस मामले को दंड संहिता की धारा २६७ के अन्तर्गत चलायेगा। इस मुकदमे में चन्द्रकान्त-जैसा अमीर न्याय की दृष्टि से एक अपराधी होगा। ऐसे मुलजिम से काफी मोटी रकम वसूली जा सकेगी। इस धारा में एक वर्ष के कारावास की व्यवस्था है। उस पर नौकरी से अलग किये जाने का भय जब चन्द्रकान्त को व्याप्त होगा तो वह रियासत की पुरानी कमाई अपने बचाव के लिए व्यय करने को बाध्य होगा।

बैलगाड़ी में रखे हुए भूसे के बोरों के ऊपर रामप्रसाद कम्बल ओढ़कर सो गया। कृष्ण चतुर्दशी की वह अँधेरी रात जितनी भयावह थी उतनी ही उसके लिए सुखकर हुई। बैलगाड़ी कीचड़-पानी से होकर जा रही थी, बीसियों नाले पार किये गये। मार्ग में गाड़ियों की खड़खड़ाहट से सड़क के किनारे पेड़ों पर सोये कौए जागकर एकाएक चीत्कार कर उठते थे, किन्तु दिन-भर का थका रामप्रसाद इन सबसे मुक्त खूब गहरी नींद लेकर सोया था। जब प्रातःकाल उसकी आँख खुली तो गाड़ी नदी के किनारे शिवालय के निकट पहुँच गई थी। कुछ देर उस ताजी वायु का आनन्द लेकर वहीं नहा-धोकर रामप्रसाद अपना बैग हाथ में लिये स्कूल के एक छात्र की भाँति टहलता-टहलता पैदल ही छावनी की ओर बढ़ा जा रहा था। उस जैसे अन्य किसी तहसीलदार को

भारी बेग लेकर इस प्रकार पैदल चलने में जनता क्या कहेगी ऐसा भय लगा रहता, किन्तु रामप्रसाद के मन में ऐसा विचार कभी उत्पन्न भी न होता था। सड़क के दोनो ओर विलायती इमली के बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे पहुँचने पर प्रातःकाल के उस सुहावने दृश्य से उसका मन प्रफुल्ल हो गया। उस समय पीछे से आकर प्रेमशंकर ने उसका अभिवादन किया और उसके हाथ से उस बैग को लेना चाहा। रामप्रसाद ने बैग को और भी स्थिरता से पकड़ लिया।

रामप्रसाद के पूछने पर प्रेमशंकर ने बताया कि दारोगा ने उसे पिछली रात तत्काल ही बिना किसी जमानत के छोड़ दिया और जेब में पैसा न होने के कारण वह पैदल ही सदर की सड़क पर चल पड़ा। रामप्रसाद ने उससे पूछा —कहीं कुछ खाना खाया था?

प्रेमशंकर हँसकर बोला—चने और गेहूँ के खेतों में भरपेट हुरहा (हरी बालों को भूनकर प्राप्त हुआ अन्न) खाया।

रामप्रसाद कुछ देर कल की घटना, उस चाय, उस कर्कशा स्त्री, उन ग्रामीण बच्चों के विषय में फिर चन्द्रकान्ता और इस अनोखे लड़के के विषय में सोचता हुआ उसकी उनसे तुलना करने लगा। प्रेमशंकर की मुरझाई मुद्रा और उसके हाथों पर नीली-नीली नसों के जाल को उभरा देखकर आर्द्र हो गया। यह सोचकर कि समय पर भोजन और विश्राम के न मिलने से यह बालक युवा होने के स्थान पर वृद्ध होता जा रहा है, वह बोला—इस बैग में रखे कटोरदान में अभी कुछ लड्डू बाकी हैं। आप यहीं कहीं किसी पेड़ के नीचे बैठकर पानी पी लीजिए।

'आपकी मेहरबानी है।' प्रेमशंकर ने कहा, 'अब तो शहर आ ही गया है। जीजी के घर दाल-रोटी मिल ही जायेगी। ये लड्डू शाम को आपके काम आ जायेंगे। कल यह कटोरदान आपके पास न रहता तो आपको न जाने किसका नमक खाना पड़ता।'

बात बिलकुल सच थी।

रामप्रसाद को चुप देख प्रेमशंकर कहता गया—साहब, उस गाँव में रात को मुझे ज्ञात हुआ कि कल महाशय सुखलाल आपकी ही खोज में निकले थे। दारोगा के बीज-गोदाम में आने का तो पहिले से प्रोग्राम था, किन्तु वहाँ

पहुँच गये आप। सुखलाल आपके चले आने के बाद रात को वहाँ पहुँचे तो बड़ा अफसोस कर रहे थे। कहते थे कि आपको इस ओर जाने नहीं देना चाहिए था।

प्रेमशंकर की बात को सुनकर रामप्रसाद ने यों तो उपेक्षा से केवल सिर हिला दिया, किन्तु उसे हृदयंगम करते ही वह उस प्रातःकालीन सुहावने स्वप्न-लोक से फिर अपनी अंन्धकारमय स्थिति में उतर आया। उसे याद आया कि दिन में उसे बहुत-से काम करने हैं। उसे पहिले छावनी जाकर सैनिक अधिकारियों से मिलना है। उनको राजी कराकर छावनी के अस्पताल के डाक्टर से अपने स्वास्थ्य का प्रमाणपत्र लेना है। उस प्रमाणपत्र को लेकर घोष साहब से मिलना है। इसी बीच समय पर बैंक में जाकर वहाँ उस सौ रुपए के चेक को भुनाना है। फिर तीसरे पहर किसी बैलगाड़ी या एक्के को किराये पर लेकर आधीरात तक वापस तहसील पहुँचना है।

कुछ देर दोनों साथ-साथ चलते रहे। रामप्रसाद कार्यक्रम के विषय में चिन्तन करता जा रहा था। प्रेमशंकर अपने को उसके किसी काम में न आता देख बोला—आप घोष साहब से मिलने जा रहे होंगे। वहाँ मेरा साथ चलना ठीक न होगा। बतलाइए, मैं अब आपसे शाम को कहाँ पर मिलूँ?

वह उस समय रामप्रसाद के हितचिन्तन में बड़े-से-बड़ा काम भी करने को उद्यत था।

रामप्रसाद को एकाएक बात सूझ गई। उसने प्रेमशंकर को पिछले दिन की भाँति आदर से सम्बोधित करके कहा—आपको यदि अवकाश मिले तो एक काम मेरा कीजिए। मेरे पास एक चेक है। इसे बैंक में ले जाकर रुपये ले आने हैं। बैंक में यदि भीड़ हुई तो मेरा देर तक वहाँ रुकना सम्भव न होगा। इसलिए मैं अभी बैंक साथ चलकर इसे आपको सौंप देता हूँ और वहाँ जाकर खजांची से कह देता हूँ कि वह रुपया आपको दे दे। रुपया लेकर आप मुझे कहाँ मिलेंगे?

प्रेमशंकर ने कहा—अभी तो दस बजने में देर है। आप घोष साहब से मिलकर दस और ग्यारह के बीच थोड़ा-सा समय निकालकर सरकारी बैंक के पास आ जायें तो मैं वहीं आपको मिल जाऊँगा। फिर आप अपना और काम

करके जब चाहें लौट आयें । मैं या तो बैंक में ही आपको मिल जाऊँगा, अथवा बैंक के सामने ही विद्या प्रेस में । उस प्रेस में सुरेन्द्रकुमारजी के पास मैं रहूँगा ।

रामप्रसाद ने चेक पर हस्ताक्षर करके उसे देते हुए कहा—यह कार्यक्रम मेरे अनुकूल रहेगा, मुझे अब छावनी की ओर जाना है ।

प्रेमशंकर ने कहा—चेक देकर आपने यह तो सम्भवतः विश्वास कर ही लिया है कि इन सौ रुपयों को लेकर मैं भाग न जाऊँगा । यदि ऐसा है तो यह बैग भी मुझे दे दीजिए, मैं आपके इस विश्वास के योग्य बनने का प्रयत्न करूँगा ।

रामप्रसाद ने मुस्कराकर कहा—अच्छा, इसे भी आप रख सकते है । किन्तु इसके साथ आपको पाँच रुपये और देता हूँ । यह है विद्या प्रेस तक किसी रिक्शे या अन्य सवारी में जाने के लिए और शाम को मेरे लौटने के लिए किसी अच्छे टट्टू या एक्के को अभी से तैयार कर लेने के लिए ।

यह कहकर दोनो अगले चौराहे के पास आकर विदा हो गये । थोड़ी ही देर के बाद प्रेमशंकर दौड़ता हुआ वापस आया और बोला—एक बात तो बतलाना भूल गया साहब । कल धनुपुर के स्कूल के अध्यापकों से ज्ञात हुआ कि दर्शनलाल की नियुक्ति सरकार ने इसलिए की है कि इस इलाके में चुनाव होनेवाला है । तराई के इलाके के मेम्बर राजा देवेन्द्रसिंह का नाम कौंसिल से कट गया है । तीन वर्ष से राजा साहब बीमार हैं । उन्हें लकवा मार गया है । सुना है महाशय सुखलाल सरकार की ओर से खड़े हो रहे हैं ।

'ठीक है', रामप्रसाद ने अन्यमनस्कता से कहा, 'हो रहे होंगे । क्या आश्चर्य !' उसका ध्यान उस समय कहीं और था । वह प्रेमशंकर के उच्चारण किये हुए 'सरकार की ओर से' इन असंगत शब्दों की मन-ही-मन टीका करके सोचने लगा कि सरकार अपनी ओर से किसी उम्मीदवार को खड़ा नहीं करती । सत्तारूढ़ दल इस भाव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त है ।

इतनी बड़ी रहस्य की बात का पता देने पर रामप्रसाद को प्रसन्न या चकित, न देख प्रेमशंकर निराश हो गया । लौटते हुए बोला—अच्छा यह बात शायद आपको पहिले ही से ज्ञात होगी ।

उसकी बात पर ध्यान दिये बिना रामप्रसाद ने 'हुँ' कहते हुए प्रेमशंकर को फिर विदा कर दिया ।

रामप्रसाद बड़ी आशाएँ लिये अफसर कमांडिंग के बँगले पर पहुँचा था। वहाँ जाकर उसे ज्ञात हुआ था कि उसका वह परिचित मित्र बदलकर किसी दूसरी छावनी में नियुक्त हो गया है। पिछली बार चाय पर वहाँ जो चार अधिकारी उसे मिले थे, उनमें से सिवाय एक के और सभी के तबादले हो चुके थे। यह अकेला व्यक्ति था छावनी का प्रशासक अफसर हरिवचनसिंह। रामप्रसाद ने उससे मिलकर जब उसे अपनी यात्रा का मन्तव्य बतलाया तो उसने उसकी पूरी बात को सुने बिना ही कहा—यहाँ तो केवल सैनिक अधिकारियों को ही देखने की आज्ञा है। आपको डाक्टरी का प्रमाणपत्र चाहिए तो स्टेशन रोड पर डा० कर्नल कपूर के पास जाइए। वे अवकाश-प्राप्त सिविल सर्जन हैं। उनके दिये प्रमाणपत्र का सभी सरकारी कार्यालयों में बड़ा मान है। यहाँ कई डाक्टर तो उनके मातहत रह चुके हैं।

रामप्रसाद यंत्र-चालित-सा स्टेशन रोड की ओर बढ़ गया और वह जिस समय डा० कपूर के बँगले पर पहुँचा, वहाँ केवल एक ही मरीज़ डाक्टर के दफ्तर में बैठा अन्दर बुलाये जाने की प्रतीक्षा कर रहा था, किन्तु धीरे-धीरे पुलिस के थानेदार, दफ्तरों के क्लर्क तथा अन्य सरकारी विभागों के कर्मचारी आकर इकट्ठा हो गये। उनमें से बिरले ही बीमार-से लगते थे।

डाक्टर का कम्पाउण्डर आगन्तुकों से आठ-आठ रुपये फीस लेकर रसीदें देता जा रहा था। वह बड़ा हँसमुख व्यक्ति था। प्रतीक्षा करनेवालों का मनोरंजन करने के लिए वह कहता जा रहा था, 'नमस्ते कोतवाल साहब, नमस्ते इंजीनियर साहब।' और अपने स्वामी की प्रशंसा कर रहा था 'अमुक ओवरसियर का तबादला हो गया था। उसके बड़े इंजीनियर उससे कुपित थे। उसने छुट्टी माँगी तो वह भी नहीं मिली। वह मोटा-ताजा जवान था। कोई सरकारी डाक्टर उसे बीमारी का सर्टीफिकेट देता भी तो कैसे? मेरे पास आया। मैंने कहा—मैं दिलाऊँगा, अपने साहब से सर्टीफिकेट। और मैंने उसे दिला भी दिया। अब तीन महीने से छुट्टी पर है। जब तक उस मनहूस जगह पर, जहाँ से वह बचना चाहता है, दूसरा ओवरसियर न भेजा जाये या उसके बड़े साहब का तबादला न हो जाये तब तक उसे छुट्टी दिलवाने का जिम्मा मैंने लिया है।

प्रतीक्षा करनेवाले एक थानेदार ने उससे कहा—भाई, मैं भी ऐसी ही मुसीबत में हूँ। ऐसा न हो कि आपके साहब का दिया सर्टीफिकेट सरकारी अस्पताल में डाक्टर के पास भेज दिया जाये, और वहाँ मुझे पुलिस अस्पताल में ऑब्ज़रवेशन (रोग की छानबीन) के लिए दाखिल होना पड़े।

दूसरा थानेदार भी, जो इसी प्रकार झूठी बीमारी का प्रमाणपत्र लेने के लिए आया जान पड़ता था, बोला—पुलिस अस्पताल के उस जल्लाद डाक्टर से तो भगवान ही बचाये। जाते ही छटाक-भर मैगसल्फ पिलाता है। दिन-भर पाखाना जाते-जाते आँतें निकल आती हैं। फिर दो दिन भूखा रखता है। फीका दलिया और बिना नमक-मसाले की कैदियों की-सी उबली सब्जी खिलाता है। वहाँ जाकर ऑब्जरवेशन से तो पाँच दिन में ही बीमारी का बहाना हवा हो जाता है। मैं भी एक बार मुसीबत का मारा खादर (तराई का मलेरिया-ग्रस्त भाग) की भाग-दौड़ से बचने के लिए तीन सप्ताह की छुट्टी लेकर आया था, वहाँ से तीन ही दिन में मुझे उसी अपने सड़ियल थाने को वापस भागना पड़ा।

कम्पाउण्डर ने कहा—यही तो तारीफ की बात है हमारे डाक्टर साहब के सर्टीफिकेट में। चुन-चुनकर ऐसी बीमारी का नाम लिखते हैं, जिसके इस जिले में वही विशेषज्ञ हैं। आप तो आप सरकारी डाक्टर तक कभी-कभी नौकरी की मुसीबतों से जान छुड़ाने उनके पास आते हैं। वह नहीं है एक डाक्टर विश्वास, चौक में हामिदअली के घिसातखाने के बराबर में बैठते हैं। उनकी आजकल तीस-चालीस रुपये रोज की आमदनी है। वह भी तो छुट्टी पर हैं। उनका तबादला कहीं जंगली लोगों के इलाके में एक सड़ियल वीरान अस्पताल में हो गया था। उनके डाइरेक्टर उनको वहाँ भेजने पर तुले हुए थे। छुट्टी माँगी तो वह नहीं मिली। हमारे डाक्टर साहब का नाम सुना तो दौड़े आये। उनके आगे रोने-गिड़गिड़ाने लगे। उस जंगल में सिवाय भीलों और वनमानुषों के और तो कोई बस्ती नहीं है। वहाँ धेले की प्रैक्टिस न होती। यहाँ इलाज के बहाने मजे में रहते हैं, शहर में आठ-नौ सौ रुपया मासिक कमा लेते हैं, ऊपर से छुट्टी की तनख्वाह अलग मिलती है।

उसकी बात सुनकर प्रसन्नता से पुलिस अधिकारी की बाछें खिल उठीं,

उसने पूछा—तो क्या उसका मैडिकल बोर्ड नहीं हुआ ? हमारे एक डी-एस० पी० तो बीमारी का ढोंग करके छुट्टी लेना चाहते थे, उन्हें डाक्टरी बोर्ड के सामने पेश होना पड़ा। बोर्ड में सिविल सर्जन के अलावा दो और बड़े घाघ डाक्टर बैठा करते हैं। उनके सामने तो ऐसे-वैसे झूठो बीमारी के बहाने चलते ही नहीं।

कम्पाउण्डर ने कहा—हमारे डाक्टर साहब ने ढूँढ़कर ऐसी बीमारी डाक्टर विश्वास के सर्टीफिकेट में लिखी और उसे ऐसी युक्ति सुझा दी कि वह अब तक तीन बार बोर्ड के सामने पेश हो आये, और तीनो बार बोर्ड को छुट्टी बढ़ानी पड़ी।

'अरे भई, वह कौन-सी बीमारी है ? यह तो तुम लाखों की बात बता रहे रहो।' एक प्रतीक्षा करनेवाले व्यक्ति ने कहा, 'जरा उस बीमारी का नाम हमें भी बताना।'

कम्पाउण्डर ने एक और रसीद फाड़ते हुए बिना उतावली के हँसकर कहा—डाक्टर विश्वास को हमारे डाक्टर साहब ने 'लम्बेगो' की बीमारी का प्रमाणपत्र दिया है। जब कभी उन्हें बोर्ड के सामने पेश होना पड़ता है तो सिविल सर्जन उन्हें दीवार के सहारे खड़ा करके कहते हैं—बायाँ पाँव उठाओ। तो वह असह्य पीड़ा का बहाना करके पाँव को जरा-सा हिलाकर चिल्लाते हैं—ऐ-है-है-है ! नहीं उठता डॉक्टर। और जब दायाँ पाँव उठाने को कहते हैं तो भी अपना मुँह बनाकर और भी जोर से चिल्लाते हैं—ओह पीड़ा से मरा जाता हूँ डाक्टर। पाँव नहीं उठाया जाता।

उसके कहने के नाटकीय ढंग और तदनुकूल प्रदर्शन से सब श्रोता खिल-खिलाकर हँस पड़े। केवल रामप्रसाद गम्भीर बना सोचता रहा, आठ रुपये देकर कहाँ आ फँसा ! उसी समय उसकी पुकार हो गई। अन्दर जाकर उसने देखा, लम्बे-चौड़े, सफेद दाढ़ी-मूँछवाले, घुटनों तक का खूब साफ सफेद कोट पहिने डाक्टर कपूर गुरु-गम्भीर बने उसकी ओर देख रहे थे। उन्होंने कहा—हाँ, कहिए, आपको क्या तकलीफ है ?

रामप्रसाद का मन प्रश्न को सुनकर ऐसा तिक्त हो गया कि उसकी इच्छा बात करने को न हुई। अपनी सारी कहानी कहना उसके लिए असम्भव हो

गया। उसे चुप और कुछ हिचकिचाते देख डाक्टर ने स्वयं ही पूछा—कितने सप्ताह की छुट्टी चाहिए, आपको ?

रामप्रसाद ने संक्षेप में कहा—मुझे छुट्टी माँगनी नहीं है, मिली हुई छुट्टी को रद्द कराना है। आप मेरी डाक्टरी परीक्षा करके पहिले यह देखने का कष्ट कर लें कि मुझे कोई रोग तो नहीं है। यदि आपको विश्वास हो जाये कि मैं निरोग हूँ तो उसका प्रमाणपत्र दे दीजिए।

डाक्टर ने छपे सर्टीफिकेटों का पैड निकालकर .अत्यधिक गम्भीरता से कहा—किस बीमारी के लिए छुट्टी ली थी आपने ?

रामप्रसाद ने कहा—मैंने छुट्टी ली नहीं, वह मुझे बरबस दी जा रही है।

डाक्टर ने बीच ही में अँग्रेजी में कहा—मैं समझा, मैं समझ गया। कोई बीमारी थी उस समय आपको ?

रामप्रसाद ने सकुचाते हुए कहा—थोड़ा खाँसी-जुकाम हुआ था। गला खराब था। महीने-भर पहिले एक-दो दिन बुखार भी आया था। अब तो ठीक हूँ। काम कर रहा हूँ।

'अच्छा, तो आपको "फिटनेस सर्टीफिकेट" चाहिए।' कहकर डाक्टर ने तत्काल उसके निरोग होने का प्रमाणपत्र लिखकर स्वयं उस पर हस्ताक्षर कर लेने के उपरान्त उस कागज को रामप्रसाद की ओर बढ़ाकर कहा, 'इस कोने पर आप अपने हस्ताक्षर भी कीजिए।'

रामप्रसाद ने कहा—शरीर देखिएगा नहीं ?

डाक्टर ने अँग्रेजी में कहा—आपका चेहरा बतलाता है कि आप बिलकुल स्वस्थ हैं। खैर, मैं देख लेता हूँ। जरा मुँह खोलकर जीभ बाहर निकालिए।

रामप्रसाद के ऐसा करने पर उसने एक चम्मच से उसकी जीभ को दबाकर कहा—कुछ भी खराबी नहीं है। धन्यवाद, लीजिए यह रहा आपका सर्टीफिकेट।

रामप्रसाद के उठने से पहिले ही डाक्टर कपूर स्वयं उठकर हाथ धोने के बरतन के पास गये और घंटी बजाकर उन्होंने दूसरे व्यक्ति को बुला लिया।

उस प्रमाणपत्र को जेब में रखकर रामप्रसाद जब अपने को अपराधी-सा समझकर बाहर निकला तो उस समय ग्यारह बज चुके थे। उसने घोष साहब

के बंगले तक जाने से पहले यह जान लेना चाहा कि वे बँगले पर हैं, दफ्तर में अथवा दौरे पर तो नहीं चले गये हैं। अतः डाक्टर के दफ्तर में उनके कम्पाउंडर से टेलीफोन कर लेने की अनुमति लेकर उसने घोष साहब के दफ्तर से उनके विषय में पूछा। ज्ञात हुआ कि वे अपने ही घर पर हैं और छुट्टी के कारण दफ्तर नहीं आयेंगे। रामप्रसाद ने सोचा अब बैंक जाना व्यर्थ है। छुट्टी होने के कारण अब उसका चेक भी नहीं भुनेगा।

*

एक रिक्शे पर बैठकर वह सीधे घोष साहब के बँगले पहुँचा। मन-ही-मन उसे एक व्यथा अब भी कचोट रही थी कि मैं जाली प्रमाणपत्र का अधिकारी नहीं हूँ। इसे मैंने आठ रुपये में खरीदा है। उसने जब अपना कार्ड अन्दर भेजा तो चपरासी ने कहा—आज साहब नहीं मिलेंगे।

नित्य ही सहृदयता से मिलनेवाले अपने उस अफसर के इस स्वभाव-परिवर्तन का कारण रामप्रसाद ठीक न समझ पाया। उसने समझा, चपरासी ने, जिसे उसने एक बार केवल एक रुपया देकर टरका दिया था, शायद कार्ड अन्दर दिखलाया ही नहीं, अन्यथा घोष साहब तो आपस की सभी कटुताओं और विरोधों के होते हुए भी उससे नित्य ही बड़े तपाक से मिलते थे।

दूसरी बार जब उसने एक दूसरे चपरासी के आने पर भी उसे अपना कार्ड दुबारा देकर साहब के पास ले जाने को कहा तो वह कार्ड लौटाकर बोला—साहब ने कहलाया है कि वह आपसे नहीं मिल सकते।

रामप्रसाद एकाएक क्रोध से उबल पड़ा। उसने चिल्लाकर कहा—कैसे नहीं मिलेंगे तुम्हारे साहब ? तुम बकते हो, अभी जाकर कहो, तराई के तहसीलदार मिलने आये हैं।

चपरासी मुस्कराता कुछ दूर हटकर खड़ा ताकता रहा।

यह वही चपरासी था जिसने एक बार, जब वह अपनी रुग्णावस्था में घोष साहब से मिलने अरेठी गाँव गया था तो इसकी सूचना घोष साहब को घंटों तक न की थी, और पीने के लिए पानी माँगने पर वह भी लाकर नहीं दिया था।

रामप्रसाद ने क्रोध से काँपते हुए कुर्सी को थामे कहा—अन्दर जाकर

मेरी सूचना दो। नहीं तो यह कुर्सी पटक दूँगा तुम्हारे सिर पर।

हल्ला सुनकर घोष साहब बरामदे में निकल आये। बोले—अरे, अरे, यह क्या ? आइए-आइए।

रामप्रसाद को नित्य की भाँति आज अपने दफ्तर में न ले जाकर वह उसे अन्दर अपनी बैठक में ले गये। सोफा पर बैठने को कहा।

रामप्रसाद अब भी उत्तेजित था। उसके हाथ-पाँव काँप रहे थे, किन्तु उसे उसी समय स्मरण हो आया कि चलते समय उसने इस यात्रा में क्रोध न करने का वचन सुशीला को दिया था।

'आपका पत्र मिल गया।' घोष साहब ने उसके पास ही आकर बैठते हुए कहा, 'मैंने उसका अभी उत्तर नहीं दिया। मैंने समझा, अब आपको एक दिन की छुट्टी की क्या आवश्यकता ? चार्ज देकर चार महीने तो आराम करने को मिलेंगे ही।'

रामप्रसाद सुशीला को दिये गये वचन को बार-बार स्मरण करके मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा—भगवान मुझे शान्ति दे, मैं अब मान-अपमान की बात छोड़कर शीघ्र संयत होकर निष्क्रोध हृदय से इनसे बात कर लूँ।

'क्षमा कीजिए, साहब,' उसने अत्यधिक नम्रता से कहा, 'आप जैसी सज्जनता से नित्य मिलते रहते हैं उसी का अभ्यस्त होने के कारण इस चपरासी के मिथ्या भाषण पर मुझे क्रोध आ गया।'

'उसकी चिन्ता न कीजिए,' घोष साहब ने कहा, 'बात यह है कि छुट्टी के दिन मैं कुछ काम नहीं करता। कई दिन खटने के बाद एक तो दिन आराम को मिलता है। अब ऐसा स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। आराम की आवश्यकता प्रतीत होती रहती है। चपरासी का दोष नहीं है।'

उसी समय घोष साहब की पत्नी उस कमरे में आ गई। रामप्रसाद उसे आते देख अभिवादनार्थ उठ खड़ा हुआ और उसके बैठने पर स्वयं भी बैठ गया। वह रेशमी छींट की खूब चौड़ी किनारी की साड़ी पहने हाथ में हरे ऊन का गोला लिये कुछ बुन रही थी। उसने रामप्रसाद की ओर देखकर उसे अभिवादन करते देख किंचित् मुस्कराकर सिर हिला दिया, फिर ध्यान दिये बिना फूलदान को ठीक रखकर बुनाई में व्यस्त हो गई।

रामप्रसाद ने अपनी बात उसी व्यग्रता से फिर आरम्भ की—मैं तो बिलकुल स्वस्थ हूँ, कोई रोग नहीं। मेरा आपसे निवेदन है कि मुझे छुट्टी की तनिक भी आवश्यकता नहीं।

'मैं विवश हूँ।' घोष साहब ने कहा, 'आपके डाक्टर के ही लिखने पर आपको छुट्टी मिल गई है। अब आपको उसका उपयोग करना ही चाहिए। आपके समुचित उपचार की व्यवस्था भी मैंने कर दी है। इसमें आपको आपत्ति क्या है। आप उस इलाके में अकसर बीमार रहते हैं। रोग की छानबीन सरकारी व्यय पर हो जायेगी। बुरा क्या है?'

रामप्रसाद ने कहा—कठिन परिश्रम करने का मेरा स्वभाव है। निठल्ले बैठना मुझे खलता है। चार महीने अकारण अस्पताल में काटना मेरे लिए एक बड़ी यातना होगी। इसी लिए यहाँ आया हूँ कि आप उस छुट्टी को रद्द कर दीजिए। मैं अपने पूर्ण स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर सकता हूँ।

घोष साहब ने कहा—इस समय तो आप को चार्ज देना ही पड़ेगा। दर्शनलाल को वहाँ काम करने के लिए बड़ी कठिनाई से राजी किया गया है। उसके लिए विशेष भत्ता भी सरकार ने अलग से देना स्वीकार किया है। आप चार्ज देकर आइए। मेडिकल बोर्ड के सामने पेश हो जाइए। यदि बोर्ड की राय में आप निरोग हों तो एक ही सप्ताह में मैं अन्यत्र आपकी नियुक्ति की सिफारिश कर दूँगा। इस समय मैं विवश हूँ, कुछ न कर सकूँगा।

'आप मुझे अस्पताल में दाखिल करके मेरे प्रति अन्याय कर रहे हैं।' रामप्रसाद ने कहा, 'मैं भला चंगा हूँ। काम कर रहा हूँ। जब बीमार हुआ तब से एक महीना हो गया, किसी सरकारी काम में आपको मेरी कोई अवहेलना नहीं मिलेगी। लगान की वसूली पारसाल से कहीं बढ़कर है। दूर देहात में भी फसल की जाँच-पड़ताल का काम मैंने कर लिया है। आप किस कारण मुझसे क्रुद्ध हैं और इस प्रकार मुझे दंडित कर रहे हैं? मैं आपसे न्याय की प्रार्थना करने आया हूँ। क्या आपको विश्वास नहीं है कि मैं स्वस्थ हूँ?'

घोष साहब को तत्काल कोई उत्तर न सूझा। खिसियाने से होकर उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा—भाई, मैं डाक्टर नहीं हूँ। आप तबादिले को रोकना चाहते हैं तो यह तो सब प्रारब्ध की बात है। किस व्यक्ति को

कहाँ पर कितने दिन रहना है यह सब पहिले से लिखा रहता है। मैं कौन हूँ जो उसकी व्यवस्था करूँगा ? यह तो भगवान ही के हाथ है !

रामप्रसाद ने कहा—इन दार्शनिक बातों से मुझे भुलावे में न रखिए। मैं आपसे एक ही प्रश्न करता हूँ कि आप मुझे बीमार समझते हैं या स्वस्थ ? आपसे मैं एक सच्ची बात का समर्थन करने की प्रार्थना कर रहा हूँ। मैं अच्छा, भला-चंगा, निरोग हूँ, इस बात को बड़े साहब के पास लिख भेजें। यही मेरी विनय है। आपकी आज्ञा लेकर आपके पत्र के साथ मैं उनसे भी मिलूँगा।'

'सुनिए, रामप्रसादजी', घोष साहब ने उसके और निकट आकर कहा, 'मेरी विवशता पर ध्यान दीजिए। मैं इस समय आपके सम्बन्ध में हुई उस सरकारी आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ ?'

रामप्रसाद कहता गया—मैं पूछता हूँ, आप किसी व्यक्ति की, जो ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहता है, सहायता नहीं कर सकते ? दर्शनलाल-जैसे बेईमान, रिश्वतखोर व्यक्तियों को आश्रय देकर उनके लिए 'स्पेशल अलाउन्स' तक दिला सकते हैं।

यह बात सच थी। सुनकर घोष साहब की मुद्रा लज्जा से लाल हो गई। जब लोग कोई रिश्वत की बात, किसी कर्मचारी की शिकायत उनसे करते 'सो अच्छा मैं देखूँगा' कहते-कहते उनका चेहरा ऐसे ही लाल हो जाता है। जब उनका पेशकार उनसे झूठे भत्ते या आकस्मिक व्यय के वाउचर पर हस्ताक्षर कराता है तब भी ऐसी ही लालिमा के वह शिकार हो जाते हैं, किन्तु चुपचाप दस्तखत कर देते हैं। मन-ही-मन अपराधी की भाँति अनुभव करके भी कुछ नहीं कर सकते।

इतनी कठोर बात को यथाशक्ति शिष्ट भाषा में बिना चिल्लाये कहने में रामप्रसाद को जो संयम करना पड़ा, वह उस-जैसे क्रोधी व्यक्ति के लिए कम कठिन न था। उसके स्वर में रोने की-सी करुणा व्याप्त थी, किन्तु उसकी आँखों में आँसू न थे। रूमाल से माथे का पसीना पोंछकर उसने उठने का निश्चय करके कहा—तो मैं जाता हूँ, आपके आज्ञानुसार कल ही चार्ज दे दूँगा। किन्तु मैं चार्ज की रिपोर्ट के साथ अपने स्वस्थ होने के प्रमाणपत्र भेजूँगा और तुरन्त दूसरी तहसील में नियुक्ति पाने की अर्जी भी। उसे आप तत्काल

आगे बढ़ाने की कृपा करें, यही अन्तिम विनय आपसे कर रहा हूँ। यह निश्चय है कि मैं अस्पताल में दाखिल नहीं होऊँगा। यदि आप मेरी इस प्रार्थना पर भी कुछ न कर सकते हों तो बतला दीजिए।

ऐसा कहकर उसने डा० कपूर के दिये प्रमाणपत्र को निकालकर उन्हें दिखलाने के लिए जेब में हाथ डाला। उसे जेब में हाथ डालते देख घोष साहब का चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने घिघियाकर कहा—अरे! अरे!

श्रीमती घोष भी अपनी बुनाई रोककर उस उत्तेजित तहसीलदार की ओर सशंक होकर देखने लगी कि जैसे मुलाकात की आज्ञा न मिलने पर इस तहसीलदार ने चपरासी को कुर्सी से मारने की धमकी दी थी वैसे ही यह सम्भवतः कहीं अपनी जेब में छिपा, भरा तमंचा निकालकर अब यह धमकी न दे कि आप मेरी अर्जी बढ़ायेंगे कि नहीं।

रामप्रसाद का ध्यान न श्रीमती घोष की भयभीत मुद्रा की ओर गया न घोष साहब की ओर। उस कागज को निकालकर उसे घोष साहब को देते हुए उसने कहा—यह प्रमाणपत्र है मेरे स्वस्थ होने का, यद्यपि मैं अपने को पूर्ण स्वस्थ समझता हूँ, मेरे लिए इसका महत्व नहीं है, किन्तु मुझे आशा है, आप इसके आधार पर उस आज्ञा को रद्द कर सकेंगे जिसमें डाक्टर भीमराज को अपनी देखरेख में मुझे सदर अस्पताल ले जाने का हुक्म हुआ है। वह मेरा अपमान है, अकारण मुझे अपने ही को सँभालने के अयोग्य सिद्ध करना है।

घोष साहब बड़े असमंजस में पड़ गये। उन्हीं की सिफारिश के अनुसार तो डाक्टर भीमराज को वह आज्ञा हुई थी। बड़े साहब को दुबारा उसी सम्बन्ध में लिखना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। वह अब अपनी उस पुरानी सिफारिश के विपरीत बड़े साहब को लिखकर अपनी मूर्खता का प्रदर्शन नहीं करना चाहते थे।

उन दोनों को चुप देख श्रीमती घोष ने, जो अब तक अपने भय से मुक्ति पा चुकी थी, अपने पति से अँग्रेजी में कहा—क्या आपके लिए चाय यहीं ले आऊँ?

'हाँ प्रिये!' घोष साहब ने उस संकट से छुटकारा पाने के उद्देश्य से कहा, "मिस्टर प्रसाद के लिए भी चाय ले आओ।'

'नहीं, धन्यवाद !' अपने स्थान से उठते हुए रामप्रसाद ने कहा, 'मुझे आज्ञा दें।'

'अच्छा।' कहकर स्वयं भी उठते हुए उस प्रमाणपत्र को रामप्रसाद को लौटाते हुए घोष साहब बोले, 'मुझे खेद है मिस्टर प्रसाद, इस समय मैं कुछ नहीं कर सकता। चार्ज रिपोर्ट के साथ आप इस प्रमाणपत्र को भेज सकते हैं। मैं तब आपकी जो सहायता सम्भव हुई करूँगा।'

रामप्रसाद ने बरामदे में जाते-जाते नितान्त करुण स्वर में कहा—तो साहब, आपकी आज्ञा है कि मैं डाक्टर भीमराज की देखरेख में ही सदर अस्पताल में प्रवेश करूँ ?

घोष साहब ने भी उठते हुए कहा—इसमें क्या हानि है, डाक्टर भीमराज आपके सहयोगी ही तो हैं।

जब मेज पर से उसने अपना प्रमाणपत्र उठाया तो एक विज़िटिंग कार्ड फर्श पर गिर पड़ा। रामप्रसाद ने देखा, उस पर दर्शनलाल का नाम लिखा था। स्पष्ट था कि उससे पहिले आकर घोष साहब से मिल चुका था। रामप्रसाद बाहर निकलते हुए मन-ही-मन बड़बड़ाया—हत्यारे, जल्लाद ! क्या इन चरित्रहीन व्यक्तियों को भगवान दंड न देगा ! मुझे तो ये पागल घोषित करने पर तुले हैं।

*

रामप्रसाद घोष साहब के फाटक से निकलकर बैंक जाने के लिए उन बँगलों की पंक्तियों के मध्य रिक्शे की ढूँढ़ में निकट के चौराहे की ओर पैदल ही जा रहा था कि उसकी दृष्टि सड़क पर पास के बँगले के केलों के पेड़ों की छाया के नीचे सरकते हुए अपने अवतार नाम के चपरासी पर पड़ी, जिसे उसने पिछले दिन डाक लेकर घोष साहब के पास भेजा था। उसने सोचा कि चपरासी यहीं मिल गया, यह अच्छा हुआ, अब उसे साथ लेकर लौटने में मार्ग में सुविधा रहेगी और इस चपरासी को भी इतना लम्बा मार्ग पैदल न नापना पड़ेगा। रिक्शा मिल गया। उसे लेकर वह उसी ओर मुड़ा, किन्तु चपरासी भागता हुआ दीख पड़ा और थोड़ी ही देर में अदृश्य हो गया। आगे

उसी सड़क पर, जिस ओर चपरासी गया था, रिक्शे को ले चलकर रामप्रसाद ने उसे खोजा और उसके न मिलने पर वह फिर बैंक की ओर मुड़ गया। चपरासी के उस अनोखे व्यवहार से, उसकी सुबह से अब सक के तब कामों की विफलताजन्य खिन्नता और भी बढ़ गई।

बैंक पहुँचने पर रामप्रसाद को प्रेमशंकर फाटक पर मुस्कराता हुआ प्रतीक्षा करता दीख पड़ा। जेब से नोटों की गड्डी को निकालकर रामप्रसाद को देते हुए बच्चों की-सी उतावली में उसने कहा—आज तो छुट्टी थी, आपका चेक भुन गया। सामने प्रेस के मैनेजर ने उसे अपने हिसाब में जमा करके ये साढ़े निन्नानबे रुपये दे दिये हैं। इक्का भी तय हो चुका है। छह रुपया लेगा। किन्तु राजागंज स्कूल के त्रिवेदीजी को पहुँचाने उस ओर एक मोटर जा रही है। आप उनके साथ चलकर रात उनके स्कूल में बितायें और वहाँ से सुबह चलना चाहें तो आपको सुविधा रहेगी। त्रिवेदीजी अन्दर विद्या प्रेस में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, चले चलिए।

इतनी बात एक साँस में कहकर प्रेमशंकर रामप्रसाद की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर गहरी पीड़ा के चिन्ह दिखलाई पड़ रहे थे। उस समय उसकी इच्छा न कहीं चलने की थी, न किसी से कुछ बात करने की। वह शीघ्र तहसील की ओर लौट चलने की व्यग्रता में था। चेक का रुपया मिल गया, यह जानकर उसे कुछ शान्ति मिली। उसने सोचा कि चलो, एक काम तो हो गया; रुपयों की बड़ी चिन्ता थी।

उसी समय मोटी ऐनक लगाये सफेद पाजामा और कमीज पहने एक अधेड़ व्यक्ति ने पीछे से आकर कहा—आइए तहसीलदार साहब, बड़ी इच्छा थी आपसे मिलने की। मेरा नाम सुरेन्द्र है। मैं ही प्रेमशंकर का जीजा हूँ।

अधेड़ आयु के उस दाढ़ी-मूछ घुटे चिकने व्यक्ति के चेहरे पर सहज आत्मीयता का-सा भाव था। चश्मे के पीछे उनकी किंचित् कंजी-सी आँखों में एक बुद्धिमान बालक की-सी चमक थी। रामप्रसाद ने शिष्टाचारवश केवल होठों से मुस्कराकर हाथ जोड़कर कहा, 'बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर।' उसके स्वर में अब भी अमैत्रीपूर्ण रुक्षता व्याप्त थी। किन्तु यह हिम-शीतल रुक्षता उस व्यक्ति के पीछे खड़े एक वयोवृद्ध व्यक्ति को अभिवादन करते देख

सहसा ही स्निग्ध हास में द्रवित हो गई। श्वेत डाढ़ीवाले उस गौर वर्ण के वृद्ध पुरुष की आयु सत्तर वर्ष से कम न होगी, क्योंकि आँखों के बाल तथा भौंहें भी श्वेत हो गई थीं।

प्रेमशंकर ने पीछे से आकर उनका परिचय कराने के उद्देश्य से कहा—आप हैं राजागंज स्कूल के प्रधान—आचार्य श्रीधर त्रिवेदी।

रामप्रसाद ने कहा—मैं जानता हूँ, आपकी संस्था में राष्ट्रीय सप्ताह के अवसर पर आपके दर्शन हुए थे। उससे पहिले एक बार बचपन में भी आपको देखा था, तब मैं प्राइमरी स्कूल का विद्यार्थी था।

त्रिवेदीजी ने कहा—अच्छा! पूरब के जिलों में मैं जिला बोर्ड के स्कूलों में कताई-बुनाई का काम सिखाने जाया करता था।

इस प्रकार बातें करते वे तीनों सुरेन्द्रकुमार के घर की ओर मुड़ गये।

उन तीनों के अन्दर जाने पर प्रेमशंकर अपने फटे जूते की चुभती कील को ठीक करके कुछ क्षण बाद अन्दर की ओर जाने लगा तो उसने सदर तहसील के चपरासी अवतार को कुछ खोजते हुए देखा। प्रेमशंकर पर दृष्टि पड़ते ही वह बैंक के पिछले फाटक से जल्दी ही बाहर निकल गया।

अन्दर वे लोग एक छोटे-से कमरे में गये; वहाँ एक मेज़ के चारों ओर चार कुर्सियाँ लगी थीं। पत्थर बिछे कमरे के फर्श पर न कालीन बिछा था न दरी। कोने पर एक चारपाई के आकार का तख्त पड़ा था। रामप्रसाद भी उन दो व्यक्तियों के साथ कुर्सी पर बैठ गया। सुरेन्द्र ने कहा—आज आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वैसे तो नित्य ही हम लोग आपकी चर्चा करते हैं। सुना है आपकी बदली हो रही है। तराई के उस इलाके में आपने जो सुधार किये हैं और जिस प्रकार सच्ची कर्त्तव्यनिष्ठा से काम किया है उसकी कद्र आपके विभाग ने नहीं की—यह जानकर बड़ा दुःख होता है।

रामप्रसाद ने सोचा, यह प्रेमशंकर जहाँ भी जाता है, अपने लड़कपन के कारण मेरे प्रशंसकों को ही जुटाने में लग जाता है। इस समय भी इस असंगत प्रशंसा को सुनकर वह हिचकिचाता हुआ बोला—मैं तो वहाँ के निवासियों के लिए कुछ भी नहीं कर पाया।

'क्यों नहीं?' वृद्ध त्रिवेदी ने कहा, 'आपके तबादले के समाचार को सुनकर

राजागंज की ओर के सब लोगों को बड़ा दुःख है। मैं तो खटिकों के गाँव की उस घटना के दिन से ही बड़ा प्रभावित हूँ। आप-जैसे जनता के सच्चे सेवक और कर्त्तव्यपरायण कुछ ही अधिकारी इस देश का कायापलट कर सकते हैं, अन्यथा सरकारी व्यवस्था आज ऐसी जर्जर और भ्रष्ट होती जा रही है कि यह हमें कहाँ ले जाकर छोड़ेगी, यह कहना कठिन है।

वृद्ध की बातचीत से तथा उनके शब्दों के उच्चारण से रामप्रसाद को पता चल गया कि वह गुजरात की ओर के रहनेवाले होंगे। उसे सरकार की आलोचना सर्वसाधारण के मध्य अच्छी नहीं लगती। अतः बातचीत का प्रसंग बदलने के उद्देश्य से उसने कहा—आप राजागंज की ओर के निवासी तो नहीं लगते।

वृद्ध बोले—हाँ, आपका अनुमान ठीक है। मैं सोरठ का निवासी हूँ। किन्तु अब तो यहीं का हो गया हूँ।

सुरेन्द्र ने कहा—आप गान्धीजी का सन्देश लेकर इस इलाके में आये थे। यहाँ पर जनता में जो कुछ शिक्षा या जागृति है उसका श्रेय आपको ही है।

उस समय दो व्यक्तियों ने, जो प्रेस के मज़दूर-से लगते थे, एक आराम-कुर्सी को लाकर कमरे के कोने पर लगा दिया।

सुरेन्द्र ने कहा—आप कुछ देर आराम कर लें, थके मालूम होते हैं।

रामप्रसाद ने विरक्त भाव से कहा—मुझे अधिक समय नहीं है, अब चलना चाहूँगा। बस एक्का आ जाये तो....

रामप्रसाद के कुर्सी पर बैठने से पूर्व हाथ में चाय की ट्रे लिये अट्ठाइस-तीस वर्ष की आयु की एक युवती ने कमरे में प्रवेश किया। मेज़ पर चाय रख-कर वह हाथ जोड़कर रामप्रसाद का अभिवादन करने लगी। उसने बिना किसी झिझक के कहा—मैं प्रेमशंकर की बड़ी बहिन हूँ।

साँवले वर्ण की उस इकहरे बदन की युवती की लावण्यमयी मुद्रा पर ऐसी आत्मीयता थी, मानो रामप्रसाद उसका कोई भाई-बन्द हो। रामप्रसाद ने कुर्सी से उठकर उसे प्रणाम किया। बड़ी सावधानी से चाय का सामान रखकर काठ के तख्त पर बैठते हुए उसने कहा—आपने भोजन न किया होगा। यह चाय तो इनके लिए है, आपके लिए थाली आती है।

रामप्रसाद ने कहा—नहीं, धन्यवाद। मैंने प्रातःकाल ही साथ में लाया हुआ खाना भरपेट खा लिया था।

रामप्रसाद का भाव अब भी ऐसा था कि यदि वह खाने का आग्रह करती तो वह बौखला उठता।

वह अन्दर जाकर चाय की कुछ वस्तुएँ लायी और बैठकर बोली—गाँव की ओर से आनेवाले और लोगों से भी आपके विषय में सुन रखा था। मैंने तो अपने इस भाई से कह दिया है कि वह आपके चरणों में पड़ा रहे। गाँव में उसके खाने-पीने की कमी नहीं है, किन्तु आपके बड़े शत्रु हैं वहाँ। सुना है कल रात आपकी बैलगाड़ी को उलटने का आयोजन था।

'गाड़ी उलटने का?' रामप्रसाद ने कहा, 'नहीं-नहीं, मैं तो बड़े आनन्द से सोता हुआ आया।' ऐसा कहकर वह सोचने लगा कि प्रेमशंकर ने यह बात वैसे ही उड़ा दी होगी।

वृद्ध सज्जन ने कहा—मेले के समय प्रतिवर्ष हमारे स्कूल के स्काउट रात को यात्रियों की रक्षा के लिए सुनसान नालों और जंगलों के पास पहरा देते हैं। कल रात उन्होंने एक बदमाश को पकड़ लिया। वह आपकी गाड़ी के आगे-आगे चल रहा था। इस नाले के ऊपर पुलिया के ढाल पर उसने लकड़ी का एक भारी कुन्दा अड़ाकर मिट्टी का ढेर-सा लगा दिया था। यदि यह कुन्दा समय पर न हटाया जाता तो सम्भवतः गाड़ी उस अँधेरे में पलट जाती। रात जब हमारे विद्यार्थी उसे थाने ले गये तो थानेदार ने उस आदमी को थोड़ी देर अपने पास बिठाये रखा, फिर बिना कुछ कहे छोड़ दिया।

रामप्रसाद ने अब भी अविश्वास से पूछा—क्या आपके विद्यार्थियों ने उस बैलगाड़ी को पहचान लिया था जिसमें मैं आया था?

वृद्ध ने कहा—हमारे स्काउट आपकी गाड़ी के आगे-पीछे सुबह मेले के स्थान तक आये। मैंने उन्हें यही आज्ञा दी थी। प्रेमशंकर को तो मैंने आपके पास दारोगा की चालों से आपको अवगत कराते रहने के लिए किसी-न-किसी बहाने आते-जाते रहने को कह ही रखा है।

रामप्रसाद उनकी बातें सुनकर अवाक् रह गया। उसके शरीर में सहसा ही एक तपता-सी व्याप्त हो गई। वे लोग क्या कह रहे हैं, यह बात रामप्रसाद

भावावेश में भूल गया। अब तो वह उस निपट अन्धकार के अतल गर्त से, जिसमें वह अकेला भटक रहा था, एक ही छलाँग में पार हो गया। वे उसके साथी हैं, उसके हितचिन्तक, वह उनका है, उसकी और उनकी एक ही-सी समस्याएँ हैं—इस विचार ने उसकी रही-सही संकोचशीलता को वाष्पीकृत कर दिया। उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह उनका ही कोई अब तक रूठा भाई-बन्द था।

फिर बातें चल पड़ीं। त्रिवेदीजी ने दारोगा हामिदअली के कुछ ऐसे कारनामे सुनाये जिनकी रामप्रसाद कल्पना भी न कर सकता था। जब त्रिवेदीजी-ने रामप्रसाद से अपने साथ मोटर पर चलने का आग्रह किया तो यह बात उसने मान ली।

मोटर के रवाना होने में कुछ देर देख रामप्रसाद ने धनुपुर के मुआइने की बात कृषि-विभाग के अधिकारियों से करना उचित समझा। उसने त्रिवेदी-जी से कहा—मैं आप लोगों को कृषि-विभाग के संचालक के घर पर मिलूँगा। उनसे कुछ आवश्यक काम है।

★

चन्द्रकान्त के कागजों को कृषि-विभाग के अधिकारी को सौंपकर रामप्रसाद स्कूल की गाड़ी में उस शाम राजागंज आया। उसे ज्ञात हुआ कि यद्यपि उस स्कूल में अभी तक आठवीं कक्षा तक ही पढ़ाई होती थी लेकिन अब लड़कों के बढ़ जाने से दसवीं कक्षा तक की शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है। त्रिवेदीजी उस स्कूल के लिए सरकारी सहायता नहीं लेते थे। उनके सभी अध्यापक भारत सेवक समाज के आदर्शों का पालन करते थे। केवल अपने जीविकोपार्जन के लिए नाम-मात्र का वेतन लेते हैं। आठ अध्यापकों के वेतन पर, जिनमें अँग्रेजी पढ़ानेवाले एक विदेशी विद्वान लारेंस भी थे, कुल सात सौ रुपये मासिक व्यय होता था। लगभग चार सौ लड़के तीन कक्षाओं में पढ़ते थे। उनके शुल्क से आठ सौ रुपये लगभग मासिक आय हो जाती थी। स्कूल का अपना उद्यान भी था।

उस शाम एक व्यक्ति शहर के किसी स्कूल से अपने लड़के को हटाकर

उसे राजागंज के स्कूल में भर्ती कराने की प्रार्थना लेकर आया था। रामप्रसाद उसकी बात सुन रहा था।

वह बोला—शहर में विद्यार्थियों से लिया जानेवाला मासिक शुल्क इतना अधिक है फिर भी वहाँ का कोई विद्यालय व्यय के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर नहीं, प्रत्युत कहीं-कहीं बच्चों की फीस से प्राप्त धन के कारण शिक्षण-संस्थाएँ, प्रबन्धकों के लिए धन कमाने का साधन-मात्र हो गई हैं। उस पर भी अन्धेर यह कि इतनी अधिक मासिक फीस लेकर भी छात्रों की शिक्षा के प्रति उचित ध्यान नहीं दिया जाता। शिक्षण संस्थाएँ उन व्यावसायिक प्रतिष्ठानों-सी हैं जहाँ धन देकर एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाने का प्रमाणपत्र बिकता है, जहाँ शिक्षक और शिक्षित के मध्य मिल-मालिक और मजदूर की-सी तना-तनी रहती है। इस शहर में किसी भी स्कूल में दी जानेवाली शिक्षा पर ही निर्भर रहकर कोई भी बालक ज्ञानोपार्जन नहीं कर सकता, इसी लिए बालकों के माता-पिता को उसे पढ़ाने के लिए घर पर भी तीस-चालीस रुपये मासिक पर घंटे-दो घंटे के लिए किसी अध्यापक को बुलाना पड़ता है। कुछ स्कूलों के अध्यापक तो इस प्रकार के ट्यूशन के लिए लड़कों के अभिभावकों को बाध्य करते हैं। कहाँ वह प्राचीन काल का विद्यादान का आदर्श और कहाँ झूठी विद्या की बिक्री के आजकल के ये स्कूल! अब तो सातवीं-आठवीं कक्षाओं में पढ़नेवाले बालकों के लिए भी उनके अभिभावकों को पचास-साठ रुपये मासिक शुल्क देना पड़ता है।

रामप्रसाद सोचने लगा, सभी माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं को सरकार अपने हाथ में लेकर उन्हें एक अलग आत्मनिर्भर विभाग के रूप में चला सकती है। इससे न तो जनता को अपने बच्चों की शिक्षा पर इतना अधिक व्यय करना पड़ेगा और न शिक्षा का स्तर ही इतना गिरेगा।

अमावस्या की उन सच्चे आत्मत्यागी अध्यापकों के मध्य बिताई वह अँधेरी रात रामप्रसाद को एक नयी स्फूर्ति और एक नया प्रकाश प्रदान कर गई। अंग्रेज अध्यापक लारेंस से मिलकर उसे और भी प्रसन्नता हुई। वह वर्नर और ग्रिम के भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी नियमों पर ग्रामाण लोक-भाषाओं में अनुसन्धान करने के लिए उस विद्यालय में दो वर्ष से था। रामप्रसाद ने

जब भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी उसके कुछ लेखों को देखा तो चकित होकर कहा—आप अपनी साधना से एक बड़ी भारी निधि का सृजन कर रहे हैं।

वह बोला—नहीं, यहाँ गावों में निपट दीनता, अकर्मण्य सरकारी व्यवस्था, अपराधों की प्रवृत्ति, धन, श्रम और करों की असन्तुलित दशा और अशिक्षा को देखकर तोमुझे स्टुअर्ट, मिल और रिकार्डो या लाइकरगस की अर्थ-व्यवस्था पर अनुसन्धान करने को बार-बार इच्छा होती है, किन्तु अर्थ-शास्त्र मेरा विषय नहीं इसलिए विवश हूँ।

रामप्रसाद कुछ ही घंटों में उन अध्यापकों से घुल-मिल गया। उन लोगों से यह पूछने पर कि इस विद्यालय में नियुक्त सभी अध्यापक शिक्षण-शास्त्र में उत्तीर्ण होंगे, उन्होंने हँसकर अपने स्कूल की उस घटना का वर्णन किया जब दस वर्ष पूर्व उनके स्कूल की परीक्षाओं को स्वीकृति प्रदान करने एक अँग्रेज इन्स्पेक्टर निरीक्षणार्थ आये थे। त्रिवेदीजी से उन्होंने ठीक इसी भाँति प्रश्न पूछा था—क्या आपके सभी अध्यापक ट्रेंड (प्रशिक्षित) हैं?

उत्तर मिला—कोई नहीं।

इन्स्पेक्टर ने पूछा था—आप?

त्रिवेदीजी ने कहा था—मैं तो इंट्रेंस भी पास नहीं हूँ।

इन्स्पेक्टर को जब यह ज्ञात हुआ था तो उसने तीन पृष्ठ का मुआइना लिखकर उसमें इस स्कूल की परीक्षाओं को स्वीकृति प्रदान करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। दूसरे दिन मुआइने के उन तीन टाइप किये गये पृष्ठों को लेकर त्रिवेदीजी इन्स्पेक्टर से मिलने गये थे।

उन्होंने नम्रता से कहा था—इस संस्था की परीक्षाओं को स्वीकृत न करने के आपके निर्णय के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी निवेदन नहीं करना है। आपके मापदंड के अनुसार मेरे अध्यापक योग्य नहीं हैं तो कोई बात नहीं, मुझे उसकी चिन्ता नहीं। एक बात मुझे खलती है। मैं अपने विद्यालय में यथाशक्ति पूर्ण और आदर्श वस्तुएँ रखना चाहता हूँ। हमारे पुस्तकालय की कोई पुस्तक मैली या फटी नहीं है। हमारी पाठ्य पुस्तकों में कहीं कोई अशुद्धि नहीं है। सब विद्यार्थी कुछ आदर्शों को प्रतीक मानकर उन्हीं के अनुकूल अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करते हैं। हम लोग विद्यार्थियों से बात

करते समय अपने उच्चारण और वाक्य-विन्यास को यथाशक्ति शुद्ध रखते हैं। यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं निवेदन करूँगा कि आपके क्लर्क के टाइप किये इस मुआइने में कुछ त्रुटियाँ हो गई हैं, उन्हें शुद्ध करके आप दूसरी प्रतिलिपि टाइप करा दें। इसे इन अशुद्धियों सहित उस पुस्तक में रखना विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए अहितकर होगा।

इन्स्पेक्टर ने कहा था—मुआइना मैंने लिखाया है, वह शुद्ध है; दिखलाइए कौन-सी त्रुटि है!

त्रिवेदीजी ने अपनी पेंसिल से किये हुए संशोधनों सहित उस मुआइने को डरते-डरते इन्स्पेक्टर के सम्मुख रख दिया था। एक-एक संशोधन पर तर्क हुआ था। त्रिवेदीजी ने अँग्रेज वैयाकरणों और लेखकों के प्रमाण देकर अपने प्रत्येक संशोधन की पुष्टि की थी। उनके सभी संशोधन इन्स्पेक्टर को ठीक जँचे थे। अन्त में उनकी पीठ ठोककर इन्स्पेक्टर ने कहा था— त्रिवेदीजी, जिस संस्था में आप-जैसे विद्वान आचार्य हैं उसमें एक भी अध्यापक अपनी योग्यता का कागजी प्रमाणपत्र न लिये हो तो भी वह संस्था मान्य होनी चाहिए। मैं आपकी संस्था की परीक्षाओं के लिए स्वीकृति प्रदान करता हूँ।

प्रेमशंकर को रामप्रसाद सुरेन्द्र के घर विद्या प्रेस में ही छोड़ आया था। किन्तु उस दिन प्रातःकाल उसके तहसील को चलने से पहिले वह राजागंज पहुँच गया। उसने अपने भागकर आने का कारण बतलाया कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी मा के खेतों की फसल को दारोगा ने गाँव के एतवारी नाम के किसान के सिपुर्द कर दिया था। उन आठ-दस खेतों में जिनके लिए यह सिपुर्दनामा लिखा गया था, किसी खटिक ने यह अर्जी भिजवाई थी, पचीस-तीस मन गेहूँ पैदा होने की आशा थी। अर्जी थी कि फसल पर उसका अधिकार है, प्रेमशंकर की मा का नहीं। खटिक की उस झूठी अर्जी पर, जिसे न जाने कब भिजवा दिया गया था, दारोगा ने अपनी टिप्पणी लिख दी थी कि उसने अर्जी की जाँच की है, खेतों की मालकिन, प्रेमशंकर की मा, और उसके

पुराने बेदखल किये हुए काश्तकार खटिकों में इस फसल को काटने के लिए मारपीट होने की आशंका है। गाँव में शान्ति बनाये रखने के लिए इन खेतों की फसल को किसी तीसरे व्यक्ति को तब तक सौंप देना आवश्यक जान पड़ता है, जब तक कि खेतों की मालकिन और इन काश्तकारों में समझौता नहीं हो जाता। फसल तैयार होने पर उसका मूल्य खजाने में जमा कर दिया जायेगा। शिवरात्रि के दिन दारोगा ने अरेठी गाँव पहुँचकर उस फसल को पचास रुपये में महाशय सुखलाल के हाथ बेचकर रुपयों को खजाने में जमा करने की आज्ञा दे दी थी।

फसल से प्राप्त गेहूँ और भूसे के दाम पाँच सौ रुपये से कम न होते; उसे पचास रुपये में बिकवाकर शेष साढ़े चार सौ में दारोगा और सुखलाल का बराबर-बराबर हिस्सा था, दस-पन्द्रह रुपया पटवारी को भी मिला था। इस बात को गाँव के बहुत-से व्यक्ति जानते थे, किन्तु डर के मारे मुँह न खोल सकते थे। इसके अतिरिक्त वे तो प्रेमशंकर से अधिक महाशय सुखलाल के ही हितैषी थे। यह आज्ञा जिले की किसी अदालत से हुई थी। रामप्रसाद को यह जानकर कि इस सम्बन्ध में अब तक उससे पूछा तक नहीं गया, बड़ा क्षोभ हुआ। एक निरपराध विधवा को उसकी साल-भर की कमाई से इस प्रकार अकारण ही वंचित किया गया—यह सोचकर तो अपनी विवशता पर वह तिलमिला उठा। उसने प्रेमशंकर से कहा कि वह अपनी मा की ओर से खेतों के नम्बर, गेहूँ की अनुमानित मात्रा आदि विवरण देकर इस कार्यवाही के विरोध में अर्जी लिखे और उस पर गाँव के दो-चार भले व्यक्तियों की सही कराकर आज ही उसे दे दे, जिससे वह चार्ज देने से पहले उसे आगे बढ़ा सके।

*

दस बजे के लगभग जब वह घर पहुँचा तो अपने बरामदे में ही उसकी भेंट एक सफेद धोती, सफेद कुर्ता और कन्धे पर कीमती दुशाला डाले शालीन-से लगनेवाले व्यक्ति से हो गई। इस व्यक्ति ने झट अपना छपा कार्ड निकालकर आगे बढ़ा दिया। रामप्रसाद को बैठना पड़ा। कार्ड पर लिखा था—श्रीकान्त, सदस्य विधान सभा। इधर-उधर की बातें करने के बाद श्रीकान्त

ने कहा—सम्भवतः आप अपना तबादिला रुकवाने सदर गये हुए थे। स्वास्थ्य मंत्री से मेरी घनिष्ठता है। आप मेरे साथ चलें। मैं उनसे आपको माल मंत्री के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी दिला सकता हूँ, जिससे आपका काम बन जायेगा। आजकल तो बिना सिफारिशी पत्र के कोई काम हो ही नहीं सकता। मेरे ही भाई को देखिए, बड़ी दौड़-धूप के बाद दुबारा नौकरी दिला पाया हूँ। मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप सरकारी नियमों के विरुद्ध कुछ भी नहीं करते, यह बड़ा अच्छा है; किन्तु इस सरकार के समय में अनियमित बात तो आसानी से हो जाती है, नियम के अनुसार चलने पर कुछ भी नहीं होता।

रामप्रसाद ने विरक्ति से कहा—धन्यवाद, मैं आपकी इस सहृदयता का लाभ नहीं उठा सकता।

श्रीकान्त फिर भी अटका रहा। अपने भाई की भलाई की प्रशंसा करने लगा। रामप्रसाद ने बाहर से आकर कपड़े भी नहीं बदले, इसका भी उस विधायक को ध्यान न रहा। बार-बार उसके मुँह से उसके भाई की प्रशंसा सुनकर रामप्रसाद ने पूछा—आपके भाई कौन? मैं तो उन्हें नहीं जानता।

'वही चन्द्रकान्त,' वह बोला, 'आपके यहाँ धनुपुर में सुपरवाइजर हैं। रियासत में मैजिस्ट्रेट था। रियासत के समाप्त होने पर बिना किसी अपराध के उसे हटा दिया गया। अब जाकर मेरे ही प्रयत्न से तो उसे नौकरी मिली है।'

रामप्रसाद ने कहा—अच्छा, वह हैं आपके भाई।

फिर उसे ध्यान आया कि सम्भवतः यह व्यक्ति उसी चन्द्रकान्त की सिफारिश लेकर आया है तो उसने दुबारा एक विषभरी दृष्टि से इस आगन्तुक को सिर से पाँव तक देखा। उस तीक्ष्ण दृष्टि में अपने को तुलते देख श्रीकान्त अपने मन्तव्य को शीघ्र व्यक्त करके बोला—तहसीलदार साहब, उस दिन आपने उस बीज-गोदाम का निरीक्षण किया था। उस रिपोर्ट को आपने अभी आगे न भेजा होगा। मेरा निवेदन है कि अब न भेजें तो बड़ी कृपा होगी। यह बेचारा अभी अस्थायी है।

रामप्रसाद ने रुखाई से कहा—उस सम्बन्ध में मैं आपकी कोई सहायता

नहीं कर सकता। आप मुझे क्षमा करें।

श्रीकान्त ने जब अपनी वही बात दुहराई तो रामप्रसाद यह कहकर तत्काल उठकर अन्दर चला गया कि उसके पास ऐसी व्यर्थ की बातों के लिए समय नहीं है। श्रीकान्त रामप्रसाद को उसकी उस अशिष्टता के लिए उचित शिक्षा देने का मन-ही-मन संकल्प करके धीरे-धीरे फाटक से बाहर निकला और जिले की भ्रष्टाचार समिति के सदस्य के नाते थाने का निरीक्षण करने के बहाने दारोगा के घर नये तहसीलदार से मिलने गया। वहाँ सुखलाल के साथ चतुरंग जमा थी ही। रामप्रसाद को नीचा दिखाने की इस बड़े नेता के प्रश्रय से, एक नयी योजना शीघ्र तैयार हो गई।

*

रामप्रसाद ने जब अपनी विफल यात्रा का वर्णन सुशीला को सुनाया तो उसने बिना आगा-पीछा देखे तत्काल मेज पर जाकर कहा—यह रहा कागज और यह है आपकी कलम, अभी इस्तीफा लिखकर भेज दीजिए। हमें ऐसी नौकरी नहीं करनी है।

नित्य अल्पभाषिणी और रामप्रसाद के स्नेह का विद्रोह चुपचाप सह लेनेवाली अपनी पत्नी के उस दृढ़ आग्रह से रामप्रसाद आश्चर्यचकित रह गया। ऐसी ही कठोर भूमि तो उसे उस झंझावात में स्थिर होकर खड़े रहने के लिए आवश्यक थी।

क्षण-भर चुप रहकर उसने कहा—इस्तीफा दे देने पर हम करेंगे क्या? कैसे जीवन-निर्वाह होगा? भूखों मरना पड़ेगा।

'निर्वाह कैसे न होगा?' पत्नी ने कहा, 'गाँव चले जायेंगे। किसानों के साथ रहेंगे। इतनी जमीन तो हमारे पास है ही कि चार-पाँच प्राणियों का पेट आसानी से भर सकता है। फिर मैं भी तो कुछ कर सकती हूँ। यहाँ तो भूख की अपेक्षा अजीर्ण का रोग मुझे सताता है। किसान स्त्रियों के लिए कपड़े ही सी दूँगी, उनकी लड़कियों को ही पढ़ा दूँगी तो वे हमारे खेतों की देख-रेख और घर के बाहर का सारा काम कर देंगी। इस छुट्टी में दो मास घर पर रहकर मुझे खूब अच्छा अनुभव हुआ है। उन किसानों का प्रेम पाकर अपने गाँव

में बिना उपचार के भी मरना अच्छा है। यहाँ बिना बीमारी के इन बदमाशों के जाल में फँसकर मैं आपको अस्पताल में भर्ती होने न दूँगी।'

रामप्रसाद ऐसे स्वभाव का व्यक्ति था जिसे सब काम अपने ही मन से करके सन्तोष होता था; संसार की राय या विधि-निषेध की उसे चिन्ता नहीं थी। जो बात जँच जाती उसे करने में कभी आगा-पीछा न देखता था। वह पत्नी के चेहरे पर अंकित भाव को, आँखों की अप्राकृतिक चमक तथा नमी को, जिसे वह छिपाने का प्रयत्न कर रही थी, देखने लगा।

पत्नी ने उसे हिचकिचाते देख कहा—लिखिए और रजिस्ट्री डाक से भेज दीजिए।

रामप्रसाद ने उस समय देखा, सुशीला के चेहरे पर वही कोमल नम्रता का भाव था, वही अनोखा आकर्षण था, जिसे उसने इस नारी के प्रथम दर्शन के समय देखा था। इस निराले आकर्षण में नारी की उस अलौकिक मूर्ति की झलक थी जो उसे देवत्व प्रदान करती है। वर्षों के उपरान्त उसे उसी अद्वितीय रूप में सम्मुख देख वह सोचने लगा, इस देवी के योग्य बनने के लिए मुझे भी साधारण मनुष्य नहीं, मंच पर स्थापित देवता से अपेक्षित व्यवहार करना चाहिए।

सुशीला इतने दिनों तक दुःखित थी, इसलिए कि वह रामप्रसाद के सुख के लिए न कोई त्याग करती थी और न उसकी भाँति दुःख ही सहती थी। उसको अपनी वह घटना-विहीन दिनचर्या खलती थी, क्योंकि सब प्रकार कष्ट सहने और बलिदान करने के योग्य होते हुए भी उसे पति के स्नेह के लिए कुछ भी करने का अवसर नहीं था। अब इस इस्तीफे के उपरान्त उसके स्त्री-सुलभ सेवाभाव की तृप्ति हो जायेगी, इस आशा से उसका मुख दीप्त था। रामप्रसाद भी नित्य की भाँति न कुढ़ा हुआ था, न भीतर से झुँझलाया और न चिड़चिड़ा ही।

रामप्रसाद ने इस्तीफा लिखा, लिफाफे में बन्द किया, अपना चप्पल पहनते हुए कहा—इसमें सरकारी डाक के टिकट नहीं, अपने खरीदे हुए टिकट लगाने होंगे। डाकखाने तक हो आता हूँ, वहीं रजिस्ट्री कराऊँगा।

सुशीला ने उसे बिठाते हुए कहा—आप इसकी नकल अपने पास रख

लें और पैसे देकर इसे चपरासी को दे दें। अभी दर्शनलाल को बुलाकर उसे भी इसे दिखा दें।

रामप्रसाद ने पुलकित होकर कहा—मैं तो इसे चुपचाप भेजकर बिना किसी को कुछ बतलाए चार्ज देना चाहता हूँ। और फिर देखना चाहता हूँ कि ये कितना अत्याचार मुझ पर कर सकते हैं। चार्ज देने के उपरान्त मैं एक आज्ञाकारी सरकारी नौकर की भाँति, घोष साहब की बात मानकर उन्हीं के परामर्श के अनुसार, डाक्टर भीमराज के साथ अस्पताल में प्रवेश पाने को भी तत्पर हूँ। इस नाटक में मुझे अब खूब आनन्द आयेगा। मुझे कोई रोग तो है नहीं। यदि डाक्टरों ने परीक्षण के उपरान्त मुझे निरोग सिद्ध कर दिया तो उस समय इन लोगों को और सरकार को भी पता चल जायेगा कि एक निरपराध व्यक्ति को किस प्रकार व्यर्थ ही परेशान किया था। जिस बात को लेकर मैं इस्तीफा दे रहा हूँ उसकी पुष्टि हो जायेगी, किन्तु यदि उन्होंने मुझे अस्पताल में पहले-जैसी यातना दी तो तब तक इस्तीफे की बात के प्रकट होने पर मैं स्वयं अस्पताल को किसी समय भी छोड़ने के लिए स्वतंत्र हो जाऊँगा।

सुशीला ने स्वीकृति दे दी। आज रामप्रसाद के मस्तिष्क के उस कोने के कपाट सुशीला के लिए खुल गये, जिसमें उसका प्रवेश निषिद्ध था।

रामप्रसाद ने दर्शनलाल को बुलाकर एक-एक सरकारी चीज को गिना-कर चार्ज दिया। तहसील के कर्मचारी, डा० भीमराज और दारोगा हामिद-अली—सब चकित थे कि रामप्रसाद इतना प्रसन्न क्यों है। वह लोगों से हँस-हँसकर बातें करता, अपने मातहतों और तहसील के कर्मचारियों की चुटकियाँ लेता रहा।

रामप्रसाद ने अपनी टूटी चारपाइयों, चार कुर्सियों, चार-पाँच सन्दूकों, लालटेनों, बिस्तर के तीन गट्ठरों और बरतनों की बोरी को बाँध लिया। इसे कहाँ भेजा जाये, यह एक समस्या थी। सुशीला ने निश्चय कर लिया था कि वह रामप्रसाद के साथ ही रहेगी और उसके अस्पताल में रहने तक शहर में अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ दो कमरे ले लेगी। अतः उन लोगों ने अपने साथ एक बक्स, बरतन के बोरे तथा बिस्तर के बंडलों को रखकर शेष सामान उसी क्वार्टर के एक कोनेवाले कमरे में रहने देने की दर्शनलाल से अनुमति चाही।

दर्शनलाल ने कहा—इस क्वार्टर में तो नहीं, रेंजर के क्वार्टर के पास एक कमरा खाली है उसमें रखिए। रेंजर को उसमें सामान रखने में आपत्ति भी नहीं होगी, यह मैंने पूछ लिया है। आप उसमें चीजें रखकर ताला लगा सकते हैं।

रामप्रसाद ने कहा—ऐसा डर? भाई, आप दुबारा इस तहसील में नियुक्ति पाने की अभिलाषा कर सकते हैं, किन्तु निश्चिन्त रहिए, मैं यहाँ अब आपकी शान्ति में विघ्न डालने कभी न आऊँगा। मेरे लिए सभी तहसीलें एक-सी हैं।

दर्शनलाल ने कहा—इच्छा तो मेरी भी यहाँ आने की न थी, किन्तु सरकारी हुक्म तो मानना ही पड़ता है।

रामप्रसाद ने हँसकर कहा—भाई, मुझे क्या बनाते हो? दाई से क्या पेट छिपाओगे? आप लोगों की कमाई में मेरे यहाँ रहने से बड़ा विघ्न पड़ेगा।

दर्शनलाल उसकी इस निर्भीक बात को सुनकर दो क्षण कुछ न बोला, फिर मन में सोचने लगा, तुम तो सब को अपने ही-सा काठ का उल्लू समझते हो। हमारी जड़ उखाड़ने में लगे थे। उस पर दम भरते हो कि तुम किसी की बुराई नहीं चाहते थे। किन्तु स्पष्टतः वह कुछ न कह सका। वह रामप्रसाद के स्वभाव से अभ्यस्त नहीं था। उससे बात करने में उसे भय लगता था कि चलते समय उससे झगड़ा न हो जाये, किन्तु उस निश्चय के उपरान्त रामप्रसाद के व्यवहार में बच्चों की-सी अपने आगामी दुर्भाग्य के प्रति नासमझी स्वतः झलकती थी। वह उनसे जिस अकृत्रिम सौजन्यता से व्यवहार कर रहा था उसे देखकर दर्शनलाल और दारोगा भी रह-रहकर सहम जाते थे। दर्शनलाल कह बैठता—कैसा मासूम बच्चों का-सा स्वभाव है इस बेचारे का। अमाँ दारोगाजी, हमें तो इस पर तरस आ जाता है। इस अबोध मेमने के लिए हम सब भेड़िये बनकर उस पर नाहक ही टूट पड़े।

दारोगा कहता—अरे, वह आस्तीन का साँप है, जो कुछ कर गुजरा है उससे सुबुकदोश (मुक्त) होने में ही तुम्हें छठी का दूध याद आ जायेगा। दो दिन यहाँ और रह जाये तो हम सबको फाँसी पर लटकवा देगा, इसे तुम सीधा न समझो।

दूसरे दिन प्रातःकाल रामप्रसाद का सामान एक बैलगाड़ी पर रख दिया गया। दूसरे पर उसकी मा, बच्चा और पत्नी बैठी और तीसरी बैलगाड़ी पर अकेले रामप्रसाद को बिठाया गया। उसके साथ डा० भीमराज था। क्वार्टर के सामने तीनों बैलगाड़ियों को बिदा करने के लिए तहसील के सभी कर्मचारी आये थे। उनकी स्त्रियाँ भी आई थीं। पुलिस के सिपाही थे, तीन कानूनगो थे। अनेक पटवारी थे। महाशय सुखलाल थे और उनके पीछे थे उनके गाँव के बीस पच्चीस व्यक्ति। उन सबके पीछे खटिकों के स्कूल के विद्यार्थी और प्रेमशंकर के साथ खटिकों के गाँव का चौधरी मोहनलाल था।

मोहनलाल ने आगे बढ़कर रामप्रसाद के गले में माला पहना दी। उसी समय दारोगा ने डा० भीमराज को उतरने का संकेत करके बुलाया और उसके कान में मुँह डालकर कुछ कहा। उन शब्दों की भनक शायद रामप्रसाद के कानों में पड़ गई। उसने दारोगा की चुटकी लेते हुए कहा—दारोगाजी, अब क्या कानाफूसी कर रहे हैं ? आप अपने उन दो सिपाहियों को भी इसी गाड़ी में मेरे इर्द-गिर्द बिठाना चाहते हैं, बिठा दीजिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

उसकी बातचीत कल ही से विनोद की भावना से ओत-प्रोत हो रही थी।

दारोगा ने मन-ही-मन सोचा, यह शख्स क्या कोई इल्मगैबी जानता है, जो बात मेरे मुँह से न निकल सकी थी वह उसकी जुबान पर पहिले ही कैसे पहुँच गई ?

रामप्रसाद दारोगा को चुप देखकर उसी उपहास की भावना से बोला—आप तो रिआया की जान और माल के रक्षक हैं। आपको यदि डर हो कि मैं मार्ग में मौका पाकर इस डाक्टर को मार न बैठूँ और यह डाक्टर मर गये या इन्हें चोट ही आ गई तो बात उन्हीं तक न रहेगी, पूर्ण सतर्कता के अभाव के कारण आपकी नौकरी पर भी धब्बा लगेगा और जिन सैकड़ों मरणासन्न रोगियों को दवा देकर यह डा० भीमराज उन्हें जीवन-दान देते हैं, उनके प्राण जाने का भी तो खतरा है। उन रोगियों के परिवारों का श्राप आपको लगेगा। तो आपको अगर वास्तव में मेरे पागलपन पर सन्देह हो तो देर न कीजिए, सिपाहियों को हथकड़ी देकर भेजिए।

ऐसा कहकर वह हँसने लगा। सुशीला को यह कठोर उपहास किंचित् भी न भाया। उसने रामप्रसाद की ओर से मुँह फेर लिया, किन्तु रामप्रसाद कब माननेवाला था। वह तो मानो उस नाटक में अपना अभिनय पूरी दक्षता के साथ करने के लिए रंगमंच पर उतरा था। दोनों हाथ आगे बढ़ाकर कलाइयों को गाड़ी के बाहर करके वह शान्त स्वर में उसी झोंक में कह उठा —मैं तो न आज पागल हूँ, न कभी था। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जैसे चुपचाप, बिना किसी हिचकिचाहट या विरोध के मैंने इस तहसील का चार्ज सौंप दिया, आपके इस षड्यंत्र के सामने आत्मसमर्पण कर दिया, वैसे ही उस सरकारी आज्ञा का भली-भाँति पालन करने के लिए मैं सरकारी अस्पताल में दाखिल होने जा रहा हूँ। सरकारी आज्ञा के पालन में, इस डाक्टर के साथ, मेरा पूरा सहयोग रहेगा; लेकिन दारोगाजी, बुरा न मानिए, आपको शायद मेरी बुद्धि पर पूरा भरोसा है, किन्तु ऐसा भरोसा होते हुए भी आप लोगों में इतनी ईमानदारी नहीं है कि आप इस जनता को यह समझने दें कि मैं पागल नहीं था। अपनी इस खोखली बात को, जिसमें झूठ की हवा भरकर आपने ऐसा भयानक रूप दे दिया है, लीजिए, इन हाथों में हथकड़ियाँ डालिए और अपनी ही बात को सच ठहराने के लिए इस तीस मील लम्बे मार्ग पर गाँव-गाँव की जनता को यह दिखलाइए कि वास्तव में पागल तहसीलदार राम-प्रसाद बँधकर जा रहा है।

इतना कहकर रामप्रसाद ने अपने हाथ घुमाकर दारोगा की ओर कर दिये। उसे विश्वास था कि सदा कानून की बात कहनेवाला दारोगा उसके इस भाषण से प्रभावित होकर शर्मिन्दा होकर कहेगा, नहीं साहब, मैं ऐसा क्यों करूँगा, मुलजिम को भी हिरासत में लेकर, जब तक वह गिरफ्तारी का विरोध न करे, हथकड़ी नहीं पहनाई जाती।

सुशीला ने भी सोचा, वे लोग तहसील का चार्ज पा गये। पति का तबा-दिला करने में सफल हो गये। अब पति की इस ललकार को सुनकर उनका सिर नीचा हो जायेगा। अब ये अपनी गलती स्वीकार कर लेंगे। डाक्टर भीमराज कहेगा कि वह साथ चल रहा है केवल सरकारी आज्ञा के पालन के लिए, अथवा वह पति के कान में कह देगा कि आप लोग जाइए, मैं अपनी

रिपोर्ट सिविल सर्जन को भेज दूँगा कि आप पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, मेरी पिछली रिपोर्ट गलत थी ।

किन्तु दारोगा ने ऐसा कुछ न कहा । पान थूककर गम्भीरता से पास खड़े सिपाही को बुलाकर कहा---शेरखाँ, कहाँ है तुम्हारा झोला ? आगे बढ़ जाओ ।

फिर वह रामप्रसाद से बिना दृष्टि मिलाये ही डा० भीमराज की ओर एक आँख दबाकर बोला---इस समय मरीज का मूड अच्छा है, सनक ही तो है । किसी समय बिगड़ उठें । अभी पहना देता हूँ ।

यह वही योजना थी जिसको श्रीकान्त के प्रश्रय से अन्तिम रूप मिला था और जिसके बूते पर ही रामप्रसाद को निरा पागल बताकर उसके हस्ताक्षर किये हुए पिछले दस दिन के सभी कागजों को सरकार के सचिवालय के विशेष आदेश द्वारा रद्द करने का भारी आयोजन हो रहा था, जिससे तहसील के जीर्णोद्धार के तखमीनों को फिर से बनाने में कुछ रुपया तत्काल हाथ लग जाये, धनुपुर के बीज-गोदाम का जाली बाटों का मामला ठंडा पड़ जाये तथा उसके दिए और भी ऐसे अनिष्टकारी आदेश, जिनका उन लोगों को अभी पता न लगा हो, कार्यान्वित न हों ।

शेरखाँ ने उन बढ़े हुए हाथों में हथकड़ी पहिना दी । अनेक दर्शकों की आँखों में आँसू आ गये, अनेक गम्भीर हो गये । रामप्रसाद के नथूने क्रोध से फूलने-सिकुड़ने लगे, किन्तु सुशीला की ओर देखकर वह मुस्कराता रहा । उसकी मुद्रा पर मुस्कराहट की वे रेखाएँ उस समय और भी स्पष्ट हो गईं जब उसने सुशीला के मुस्कराये चेहरे की ओर देखा और उसको अर्थपूर्ण दृष्टि से अपनी ओर देखते पाया । किन्तु पति के हाथों में हथकड़ी पड़ी देख क्षण-भर भी उसकी रुलाई न रुक सकी । मा और पत्नी को फूट-फूट रोते देख भावोद्रेक से विह्वल होकर रामप्रसाद ने कहा---हत्यारो, यह दुःसाहस ! तुम क्या सचमुच बाँध डालते हो मुझे ?

किन्तु फिर सँभलकर उसने मन-ही-मन कहा—यह तो नाटक है, मैं तो अभिनय कर रहा हूँ । जैसे नाटक में किसी मर्मस्पर्शी अभिनय को देखकर रुलाई आ जाती है वैसी ही वह रुलाई सुशीला को आ गई है ।

बैलगाड़ियाँ चर्र-चर्र करतीं, पीपल, पाकड़, सेमल और टेसू के वृक्षों के नीचे होकर जा रही थीं।

रामप्रसाद कभी सेमल के लाल-लाल फूलों की ओर देखता तो कभी पाकड़ की नयी-नयी कोंपलों की ओर। इन कोंपलों का साग उसे पसन्द है। पर इस वर्ष अभी तक इसे खाने का अवसर नहीं मिला था। उसके साथी कान्स्टेबिल बारी-बारी से गाड़ी से उतरकर कभी बीड़ी पीने लगते थे और खेतों से गन्ना तोड़ लाते थे। डाक्टर भीमराज की दाईं आँख बार-बार फड़क रही थी। वह किसी पुरानी पत्रिका की कहानी पढ़ने में तल्लीन था। गुमसुम बैठा वह रामप्रसाद की बातों की ओर ध्यान नहीं दे रहा था और न उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा था। उसका मन भी खिन्न था। वह सोचने लगा, मैंने अपने जीवन में ऐसा बुरा काम कभी नहीं किया। एक सीधे-सादे अफसर को विनोद की भावना में ही इतना अधिक कष्ट हो जायेगा, इस बात का मुझको कभी अनुमान भी होता तो मैं दारोगा के इस षड्यंत्र में न पड़ता। अब तो जैसा दारोगा ने, चलते समय कान में कहा था, अपनी नौकरी की कुशल चाहने के लिए मुझे अपनी लिखी हुई उस बात को अन्त तक निभाना ही होगा। ठीक समय पर दर्शनलाल भी पीछे हट गया। वह किसी जरूरी काम का बहाना बनाकर शहर से बाहर चला गया। आज रामप्रसाद को छोड़ने तक नहीं आया। दारोगा ने सिपाहियों के हाथ हथकड़ी देकर इस काम से मानो छुट्टी पा ली। अकेला मैं फँस गया।

रामप्रसाद के मन में अनेक भावनाएँ उठ रही थीं। सबसे प्रबल भावना तो यही थी कि उसकी पत्नी उसके इस नाटक का सच्चा आनन्द ले। वह समझ जाये कि सब-कुछ विनोद की भावना से हो रहा है। कभी-कभी तो दूसरी गाड़ी पर बैठी अपनी पत्नी को समझाने के लिए वह मुस्करा देता था। आँखों की भाषा में बतला देता कि वह स्वस्थ है, प्रसन्न है, इन लोगों को बना रहा है। कभी गुनगुनाने लगता और कभी जोर से ही गाने लगता, यद्यपि उसके

ऐसा करना गाड़ी में बैठी उसकी मा के उस विश्वास को दृढ़ करता जा रहा था कि उसका प्यारा बेटा रामप्रसाद वास्तव में पागल हो गया है । रामप्रसाद भी सोचता कि न तहसील के लोग मुझे पागल समझते हैं, न यह डाक्टर और न ये पुलिस के सिपाही, एकमात्र मेरी मा ही मुझे अवश्य पागल समझती है ।

उस समय वह कवियों की भाँति भावुक बनकर अपने-आप उलटी-सीधी कविता बनाकर उन छन्दों को कभी अपने ही मन को सन्तोष देने और कभी सुशीला को ढाढ़स बँधाने के लिए गाने लगता था ।

बैलगाड़ियाँ बढ़ी जा रही थीं । मील का पहिला पत्थर पार होते ही रामप्रसाद झट अपना पहिला छन्द गुनगुनाने लगा, जिसका भाव था—

'एक मील मार्ग तय हो गया । बड़ी प्रसन्नता है । आँखों के सामने यह लम्बी सड़क आकाश की भाँति असीम दीखती है । दस गज भी बढ़ना भारी लगता है, किन्तु जो मार्ग तय हो गया है वह कैसा सूक्ष्म हो जाता है । एक मील की वह लम्बाई मानो सिमटकर इसी मील के पत्थर में ही समा गई । हाँ, मैं एक मील पार कर गया, यह पत्थर बतला रहा है ।'

दूसरे मील के आने तक वह फिर कभी गाड़ी के पहियों के ऊपर लगे चिन्हों को ताककर यह देखता कि एक फर्लांग चलने में यह पहिया कितने चक्कर लगाता है । इस प्रकार उस पहिये की परिधि निकालकर वह ग्रीक 'पाया' के सूत्र के अनुसार मन-ही-मन उसका व्यास निकालता । कभी वह उस गाड़ी की प्रति घंटा चाल निकालने के लिए अपनी साँस गिनकर समय का अनुमान करता और कभी अपनी नाड़ी पर हाथ रखकर एक मिनट की गणना के लिए सत्तर धड़कनों को गिनकर अँगुलों पर पहिए के द्वारा उस अवधि में लगाये चक्करों का हिसाब लगाता । ऐसा करते हुए वह अपनी पत्नी की ओर देखकर आँखों की भाषा में कहता—मैं यह सब समय काटने के लिए कर रहा हूँ तुम मुझे अपनी नाड़ी पर हाथ रखते देख यह न समझो कि मुझे ज्वर आ गया; और मुझे गाड़ी के पहिये पर एकटक दृष्टि जमाये देख यह न सोचो कि मुझे सचमुच पागलपन ने आ घेरा ।

उस दोपहर को गाड़ियाँ बालू-कंकड़ से भरी सड़क को पार करती जा रही

थीं। सड़क के दोनों ओर ऊँचे वृक्षों के उपरान्त खेत थे। आम के हरे-भरे निकुंज थे। सारा वातावरण ग्रीष्म की प्रथम तप्त उसासें-सी लेता जान पड़ता था।

दूर से अगले मील के पत्थर पर दृष्टि पड़ते ही वह काल और गति के अपने गणित के उस प्रश्न को अधूरा ही छोड़ झट नया छन्द बनाने लग जाता :

'एक मील और पार कर लिया। मैं तो अपने इस बन्धन में भी आनन्द ले रहा हूँ। कष्ट कहाँ है? नहीं, नाटक के अभिनय को कष्ट ही तो कहेंगे। ये लोग मुझे नहीं, मैं ही इन्हें कष्ट दे रहा हूँ।'

खेतों में काम करते किसानों को देखकर उसका मन उनसे दो बातें करने को होता। वह फिर यह अनुमान लगाने के लिए कि सड़क पर एक मील तय करने में कितने किसान उसे मिल सकते हैं, उनकी गिनती करने लगता। धीरे-धीरे इस काम से ऊबकर उस उदास वातावरण को देख स्वयं उदास हो जाता, किन्तु मील के पत्थर के आते ही वह फिर तन्द्रा से जागकर अपने नये छन्द को बना डालता :

'मैंने भी बहुत-से लोगों को हथकड़ियाँ पहनाईं। बहुतों को दण्ड दिया। आज मेरी बारी आ गई। मेरा अपराध विचित्र है, मैं सच्चाई और ईमानदारी से अपना कर्त्तव्यपालन करने का प्रयत्न करने की सजा पा रहा हूँ। ऐसा प्रयत्न करनेवाले सभी लोग पागल कहे जायेंगे तो मैं पागल ही हूँ।'

सिपाहियों के साथ लम्बे-लम्बे डग भरता कभी वह गाड़ी से उतर जाता। बैलों से आगे खूब बढ़कर फिर किसी पेड़ के नीचे बैठकर गाड़ियों के आने की प्रतीक्षा करता। प्यास लगने पर एक बार जब सिपाहियों ने उसे पानी पीने की सुविधा प्रदान करने के लिए उसका दाहिना हाथ खोला तो उसने पेन्सिल-कागज माँगकर अपने उन छन्दों को लिख लेना उचित समझा। तीसरे पहर तो दाहिने हाथ के मुक्त होने पर प्रत्येक मील के आने पर लम्बे डग भरते हुए आगे जाकर एक नया छन्द बनाकर गाड़ी की प्रतीक्षा में किसी पेड़ के नीचे बैठने का उसने नियम-सा बना लिया था।

*

दूसरे दिन प्रातःकाल गाड़ियाँ शहर के पासवाले मुहल्ले में पहुँचीं, जहाँ सुशीला की मौसी रहती थी और जहाँ सुशीला रामप्रसाद के अस्पताल में रहने तक टिकना चाहती थी। अस्पताल अब भी दो मील दूर था, किन्तु गाड़ियों के रुकने पर डाक्टर भीमराज ने चैन की साँस ली। कल जिसे उसने दाईं आँख का फड़कना समझा था आज वह उसे दाईं ओर के गाल का स्नायुशूल-सा लगा। अब वह गाल थोड़ी-थोड़ी देर के बाद अचानक तड़-तड़ करके फड़क उठता था।

अब तक की इस यात्रा में सबसे अधिक थकान उसी को हुई थी। वह शारीरिक थकान भी थी, मानसिक भी। रामप्रसाद के साथ बैठा हुआ भी वह चुपचाप मौन धारण किये था, मानो रामप्रसाद की उपस्थिति से बेखबर हो, किन्तु उसका मन और मस्तिष्क उसी की गति-विधि पर केन्द्रित थे। उसने अपने जीवन में ऐसा कठोर और निर्दय काम स्वप्न में भी न किया होगा, यह बात उसे रह-रहकर स्मरण हो आती थी। अब उसने उस मकान के परदे लगे किवाड़ों और खिड़कियों पर धड़कते हृदय से दृष्टि डाली कि रामप्रसाद को एक और अभिभावक तो मिला और उसका बोझ कुछ हलका हुआ।

सुशीला चाहती थी कि वहाँ रामप्रसाद के लिए कोई किराये की मोटर मँगा ली जाये। उसे निरे अपराधी की भाँति अस्पताल में न जाना पड़े। डाक्टर भीमराज का कहना था कि अब वे लोग शहर पहुँच ही गये हैं, जितनी देर में मोटर का प्रबन्ध होगा, उतनी देर में तो अस्पताल पहुँच सकते हैं। घर के सम्भ्रान्त लोगों के आश्वासन देने और कहने-सुनने पर वह राजी हो गया। उसने उन्हीं के आश्वासन पर हथकड़ी भी खोल दी। सुशीला का सामान उतर गया, उसकी सास भी गाड़ी से उतर गई। सबके बाद निपट निश्चिन्त-सा रामप्रसाद धीमे-धीमे उतरा और चाय पीने अन्दर के कमरे में गया तो वहाँ उसे प्रेमशंकर पहिले से उपस्थित मिला। वह राजागंज से रामप्रसाद के लिए एक पत्र लेकर आया था।

त्रिवेदीजी का संक्षिप्त-सा पत्र था। उसे पढ़ते ही रामप्रसाद के शरीर में नये रक्त का संचार हो गया। उन हर्षाश्रुओं से छलछलाती आँखों को बार-बार पलक गिराकर सुखाने का प्रयत्न करके किसी भाँति अपनी प्रसन्नता के

प्रदर्शन को संयम में रखकर उसने वह पत्र चुपचाप सुशीला की ओर बढ़ा दिया। पत्र था :

'कल सुरेन्द्रजी से ज्ञात हुआ कि आपने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है। यह तो एक दृष्टि से प्रसन्नता की ही बात है, किन्तु यह जानकर बड़ा कष्ट हुआ कि आपको पागल समझकर, बाँधकर अस्पताल ले जाया जा रहा है। जिसने भी ऐसा किया उसका यह व्यवहार अक्षम्य है। इसका प्रबल विरोध होना आवश्यक है। आपकी अनुमति लेकर सुरेन्द्र इस सम्बन्ध में परामर्श करने आनेवाले हैं। उन लोगों के विरुद्ध, जो अकारण आपको इस प्रकार अपमानित करने पर तुले हैं, शीघ्र कानूनी कार्यवाही होनी चाहिए। तभी हमें शान्ति मिलेगी। दूसरी बात, जो मुझे कहनी है, वह है अपने स्कूल के विषय में। आप अर्थशास्त्र में पारंगत हैं; लारेंस भाई का कहना है कि आप हमारे स्कूल में प्रधान अध्यापक का पद ग्रहण करें और तराई की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर, जिसमें आपसे अधिक विज्ञ कोई नहीं, लेख लिखें। उनके पास ऐसे सार-गर्भित अनुसन्धान के लिए कुछ विश्वविद्यालयों के पत्र आये हैं। अब आपने त्यागपत्र दे दिया है तो आज ही हमारे बीच आकर हम सबकी इस मनोकामना को पूर्ण करें। यह निश्चित है कि हमारी संस्था आपकी प्रतिभा के योग्य न तो वेतन ही आपको दे सकती है और न यह पद कुछ ऐसा बड़ा सम्माननीय ही है, किन्तु आप हमें और तराई के इन भावी निर्माताओं को शिक्षित करने के लिए कुछ बलिदान करने का विचार रखते हों तो आइए, उसके लिए यह एक अच्छा अवसर होगा।'

सुशीला ने पत्र पढ़कर कहा—इस डाक्टर और इन सिपाहियों से अब अपना रास्ता नापने को कहिए, आपको अस्पताल जाकर लेना ही क्या है ?

रामप्रसाद ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—बहुत कुछ लेना है। अभी नाटक का अन्तिम दृश्य खेलना शेष है।

'हद हो गई,' सुशीला ने पति के पैरों पर गिरकर कुछ आग्रहपूर्ण स्वर में कहा, 'अब आप इनका साथ छोड़िए। नहीं तो आपको मुझे ही अस्पताल में दाखिल करना पड़ेगा। कल से ही बार-बार मेरे मन में कुछ ऐसा हो रहा है कि जान पड़ता है, मुझे ही कुछ हो जायेगा।

पत्नी की पीठ थपथपाते हुए रामप्रसाद ने कहा—तुम साहस न खोओ। अब मेरा उस स्कूल में जाना निश्चित है। यह तो मुँहमाँगा वरदान है। वहाँ हमारे रहने की सुन्दर व्यवस्था है। तुम भी चलोगी और माताजी। हमें अब भविष्य की कुछ चिन्ता ही नहीं रही, तो इस नाटक को अधूरा क्यों छोड़ा जाये? यह हमारे ही सम्बन्धी, जिनके आश्वासन पर मैं कुछ देर के लिए मुक्त हुआ हूँ, कहेंगे कि मैंने उनको धोखा दिया, मैं सचमुच पागल था, जो आधे रास्ते से ही भाग खड़ा हुआ। जब तक मेरे इस्तीफे की मंजूरी नहीं आ जाती, तुम सोच सकती हो, तब तक तो मैं सरकारी नौकर हूँ। सरकारी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। सोचता हूँ, अस्पताल जाकर डाक्टर से बातें करके घंटे-दो घंटे में छुट्टी पाकर आ जाऊँगा।

उस बातचीत के मध्य द्वार पर प्रेमशंकर के खाँसने का शब्द सुन पड़ा। अब तक वह बाहर कमरे में डाक्टर भीमराज की चाय आदि के प्रबन्ध में लगा था। उसने बतलाया—सुखलाल के आदमी पहिले ही अस्पताल में पहुँच गये हैं। चपरासी अवतार तो तीन दिन से उनके पीछे-पीछे लगा रहा। उनको ज्ञात है कि आपके पास अपने निरोग होने का प्रमाणपत्र है। इसी लिए अस्पताल में कड़ा प्रबन्ध किया गया है। त्रिवेदीजी की राय थी कि अस्पताल के डाक्टर को फीस देकर इसी मकान में बुलाकर आपको पहले ही दिखला दिया जाये, जिससे उसे वास्तविकता का पता लग जाये। आप घंटे-भर तक यहाँ विश्राम करें तो मैं उसे बुला लाता हूँ।

रामप्रसाद के कुछ कहने से पूर्व ही सुशीला ने आँचल से दस रुपये का नोट देकर कहा—हाँ, आप जाइए और डाक्टर साहब को यहीं बुला लाइए। किराये पर कोई मोटर कर लीजिए, जिससे यदि डाक्टर न मानें तो ये उसी मोटर में उनके साथ अस्पताल भी हो आयेंगे।

रामप्रसाद की डाक्टर को बुलाने की इच्छा न थी, प्रेमशंकर के द्वारा तो बिलकुल भी नहीं, किन्तु उसने सुशीला को कुपित करना उचित न समझा और प्रेमशंकर को रुपया लेकर जाने दिया।

जिले का सरकारी अस्पताल, जो कभी पहले उस शहर के एक कोने पर बना होगा, अब निकट ही नये बाजार और स्कूल के बन जाने से बस्ती के बीच में आ गया था। वह भीड़-भाड़ के कारण दूर से अँग्रेजी सामान की बड़ी दूकान-सा लगता था। उस प्रातःकाल डाक्टर भटनागर प्रेमशंकर के पहुँचने तक अन्दर के रोगियों को देखकर बाहर से आनेवाले रोगियों की पुर्जियाँ देखने अपने कमरे में बैठे थे। डाक्टर का चेहरा पीला, पिचकी गालों की हड्डियाँ उभरी और माथे पर तीन झुर्रियाँ थीं। वे मेज पर झुके कुछ पढ़ रहे थे। पच्चीस वर्ष जेल और पुलिस विभाग के सरकारी अस्पतालों में रहकर अब वे पदोन्नति पर इस बड़े अस्पताल में नियुक्त हुए थे।

उनके कमरे के बाहर बहुत-से बीमार पुर्जियाँ लिये खड़े, अन्दर गये हुए रोगियों के बाहर निकलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मेज की दूसरी ओर डाक्टर के सामने कुर्सियों और बेंचों पर कुछ मरीज उत्सुक नेत्रों से कागजों पर से डाक्टर की आँख उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि किस प्रकार शीघ्र ही अपना दुःख डाक्टर को बताकर रोग की मुक्ति का मंत्र अपनी पुर्जी पर लिखा लें।

कमरे के एक कोने में लकड़ियों के चौखट पर तने कपड़े के मोड़नेवाले पर्दे के पीछे ऊँची बेंच पर एक बूढ़ा रोगी लेटा था। उसे डाक्टर ने उस बेंच पर लेटने को कहा था, किन्तु उस कागज में व्यस्त हो जाने से वह उसे भूल ही गये थे। उस बूढ़े का लड़का पर्दे के पास ही खड़ा डाक्टर के उस कोने पर आने की प्रतीक्षा कर रहा था। डाक्टर उसी प्रकार कागज पर सिर झुकाये थे कि दो और रोगी कमरे में आ गये। उनके हाथों में भी अस्पताल की पीली पुर्जियाँ थीं। बेंच पर उनके बैठने को स्थान न था, किन्तु उनमें से एक खड़ा न हो पाता था, अतः शेष व्यक्तियों को बेंच पर सिमटकर उसके लिए स्थान करना पड़ा। मरीजों के उठने-बैठने या धीमी-धीमी गुनगुनाहट के शब्द से डाक्टर की ध्यानमग्नता पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

उस समय चार-पाँच नये रोगी आकर चिक के बाहर भी खड़े हो गये।

दो क्षण बाद अस्पताल का हेड क्लर्क दुग्गल बाबू बगल में फाइलें और हाथों में भी कुछ कागज लिये, 'ओ भई, जरा हटो, रास्ता तो बन्द न करो' कहता हुआ अन्दर आ गया। वह भी डाक्टर का समवयस्क लगता था। उसने डाक्टर की व्यस्तता की चिन्ता किये बिना कहा---डाक्टर साहब, आपका भत्ता किस क्लास का बनेगा ?

हेड क्लर्क की बात सुनते ही डाक्टर भटनागर की दृष्टि कागजों पर से उठ गई। आँखों पर लगे चश्मे को माथे के ऊपर खिसकाकर हेड क्लर्क की ओर देखकर डाक्टर ने कहा---अब तो दो सौ से ऊपर हम सभी लोग पहिले दर्जे के भत्ते के अधिकारी हैं।

हेड क्लर्क ने फाइलें मेज पर रख दीं, स्वयं भी पास खड़े मरीजों के आगे खिसक मेज पर दोनों हाथ टेककर कहा---भत्ते का बिल तो यह रहा, बन गया है, आपके हस्ताक्षर की कमी है, यहाँ पर कर दीजिए।

पर्दे के पीछे लेटे बूढ़े के मुँह से एक कराह निकली और भत्ते के बिल को देखकर डाक्टर भटनागर प्रसन्न हो गये। उसे वे तन्मयता से निहारने लगे।

उसी समय दायें दरवाजे से वहाँ उपस्थित व्यक्तियों को धकेलता हुआ एक व्यक्ति कमरे में आ धमका। उसके सूखे चेहरे पर परेशानी झलकती थी। उसने न डाक्टर की व्यस्तता की चिन्ता की, न प्रतीक्षा करनेवालों की। हाँफते हुए उसने कहा---डाक्टर साहब, नमस्ते।

उसके अभिवादन का डाक्टर ने उत्तर नहीं दिया। सभी उपस्थित रोगियों ने उसकी ओर दृष्टि घुमाई। डाक्टर ने भी चश्मे के नीचे से उसकी ओर देखा और यह निश्चित हो जाने पर कि उस विघ्नकर्ता से उसका परिचय नहीं है, वह चुपचाप अपने बिल को देखने लगा।

आगन्तुक प्रेमशंकर था। वह बैठा नहीं, डाक्टर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए खाँसकर बोला, 'डाक्टर साहब, एक रोगी है !' इतना कहकर कमरे में उपस्थित सभी व्यक्तियों को अपनी ओर देखते पाकर वह कुछ सकुचाया, किन्तु दूसरे क्षण बोला, 'उस रोगी को देखने आप तुरन्त चल सकें तो बड़ी कृपा होगी। बस, दस मिनट लगेंगे।'

'हुँ' कहकर डाक्टर ने कलम उठाई और भत्ते के बिल पर हस्ताक्षर करते हुए जहाँ जोड़ 'दो सौ पैंतालीस रुपये पैंसठ नये पैसे' अक्षरों में लिखा था वहीं उसकी दृष्टि आकर रुक गई। मन-ही-मन एक बार की उस यात्रा के व्यय का हिसाब लगाया। दस रुपये वापसी टिकट, एक रुपया कुली और रिक्शा दोनों ओर का, कुल ग्यारह। चार चक्कर का चवालीस, मिले दो सौ पैंतालीस, इसी प्रकार पुराने मुकदमों में गवाही प्रति मास होती रहे तो दो सौ की मासिक आय हो सकती है।

प्रेमशंकर ने कहा—डाक्टर साहब, चलिएगा, देर हो गई तो उस रोगी की दशा सुधर न सकेगी।

हेड क्लर्क ने उसे डाँटते हुए कहा—अरे देखते नहीं, डाक्टर साहब बैठे तो हैं नहीं। काम कर रहे हैं, फिर यहाँ इतने और भी तो मरीज हैं। अपनी बारी आने पर बात कहना।

प्रेमशंकर ने कहा—डाक्टर साहब, वह आपकी फीस देने को तैयार है, जो भी फीस आपको लेनी हो, देगा।

डाक्टर ने फिर 'हुँ' कहकर कलम मेज पर रखकर अँगड़ाई ली। अपने माथे के ऊपर भिनकती एक मक्खी को उड़ाया। मनमानी फीस की बात सुनकर कहना चाहा कि बैठो, हम अभी तैयार हो जाते हैं; किन्तु हेड क्लर्क को देखकर उसका विचार बदल गया। प्रेमशंकर की ओर ध्यान दिये बिना हेड क्लर्क से कहा—बड़े बाबू, साहब ने क्या हमारे उस समन पर दस्तखत कर दिये जिसमें मुझे लखनऊ की अदालत में बुलाया गया है?

उसी समय पुलिस का एक सिपाही चिक उठाकर अन्दर आने को उद्यत हुआ, किन्तु सहसा श्वेत वस्त्रधारी अस्पताल की एक उपचारिका को भी अन्दर आते देख रुक गया।

नर्स की दृष्टि रोगियों की भीड़ और बड़े बाबू के मेज पर झुके होने के कारण डाक्टर तक नहीं पहुँची। भीड़ के पीछे कोने पर खड़ी होकर उसने पुकारा—डॉक्टर, आठ नम्बर कमरे के रोगी की पट्टी आज आप अपने ही सामने खुलवायेंगे या अभी खोल दी जाये?

डाक्टर उस समय हेड क्लर्क के पेश किये पान के डिब्बे से पान लेकर

मुँह भर रहा था। पान खाकर एक पुर्जी पर हाथ की उँगली रगड़कर पान के लाल दाग की ओर ऐसे ध्यान से देखकर, मानो वह किसी रोगी की रक्त हो, भरे मुँह से बोला, 'हाँ सिस्टर, आठ नम्बर ?' उस रोगी को वह भूल चुका था। अब याद कर रहा था कि उस रोगी को किस बड़े आदमी ने वह बढ़िया आठ नम्बर कमरा दिलाया था ? वह किसका सम्बन्धी है ? कौन-से अफसर या डाक्टर की सिफारिश से वह भर्ती हुआ था ? क्या उस रोगी के उपचार में साधारण तत्परता से काम न चलेगा ? आज सुबह तो वह उसके कमरे में हो ही आया होगा।

कुछ देर में उसे स्मरण हो आया कि बड़े डाक्टर ने ही उसे भर्ती किया था। उसके मामले में उसे असावधानी नहीं करनी चाहिए। बड़े साहब उसे क्षमा न करेंगे। घड़ी की ओर देखकर वह बोला—सिस्टर, दस बजे तक बड़े साहब की प्रतीक्षा कर लो। वह न आयें तो मैं अपने सामने पट्टी खुलवाऊँगा।

अपने और कागजों पर डाक्टर के हस्ताक्षर कराते हुए हेड क्लर्क ने बेंच के किनारे बैठे उस लँगड़े रोगी की ओर संकेत करके जो सबके बाद आया था, कहा—इनको ज़रा देख लीजिए डाक्टर भटनागर, ये अपने बड़े पुराने मित्र हैं। इनके कुछ स्क्रोटम में....

'अच्छा-अच्छा, अभी लीजिए,' डाक्टर ने कहा, 'इन्हें अन्दर आपरेशन टेबल पर लिटा दीजिए।'

ऐसा कहकर डाक्टर ने पास बैठे व्यक्तियों की पुर्जियों पर उन मरीजों की बातों को एक साथ सुनकर बिना उन पर ध्यान दिये नई तारीख देकर अपने हस्ताक्षर कर दिये। 'मेरे पेट में', 'मेरे सिर में', 'मेरे बायें सीने में', 'मेरी पीठ में', जहाँ जिसने जो कुछ बताया डाक्टर भटनागर ने सबके प्रति सिर हिलाया, 'हाँ, अच्छा, जारी रखिए, पीजिए, ठीक हो जायेगा' कहता हुआ उनको छुट्टी देने लगा कि जल्दी ही प्रेमशंकर के साथ चल सके।

उसी समय पुलिस के सिपाही ने कमरे में प्रवेश करके, यद्यपि डाक्टर का चेहरा उसको दीखता न था, फिर भी खट्-खट् करके बूट बजाकर सैनिक सलाम किया। उस शब्द को सुनकर बड़े बाबू ने मेज को अपने भार से मुक्त कर दिया। सिपाही को पहचानकर कहा—लीजिए डाक्टर साहब, आ गया

आपके लिए होली के त्योहार का तोहफा। अरे शेरखाँ, क्या आज भी कोई लाश लाये हो?

डाक्टर ने चश्मा उतारकर मेज पर रख दिया। एक लम्बी साँस लेकर मानो सभी रोगियों को सूचित करके कहा—जब से मैं इस अस्पताल में आया हूँ, रोज पोस्ट-मॉर्टम (शव-परीक्षा), रोज पोस्ट-मॉर्टम। अभी इस लाश के चीरने के लिए लाइन जाना पड़ेगा। दुग्गल बाबू, मैं कहता हूँ, इस काम के लिए या तो बड़े साहब खुद जाया करें या फिर एक डाक्टर को अलग से बुलाकर इस काम पर नियुक्ति कर दें। मुझे सौंप देते हैं। इधर सड़ी-गली लाशों की काट-फाड़, उधर कचहरी में गवाही देने जाना और वकीलों की उल्टी-सीधी जिरह से निबटना, यह सब इस बुढ़ापे में मुझसे नहीं होगा, बड़े बाबू।

कान्स्टेबिल ने कहा, 'लाश नहीं, यह एक मरीज है।' यह कहकर उसने थाने से लाया हुआ मुड़ा बादामी कागज आगे बढ़ा दिया और किंचित् मुस्कराकर कहा, 'भारी मरीज है, तहसील का आला हाकिम।'

'ओह!' हेड क्लर्क ने प्रसन्न होकर भौंहें मटका-मटकाकर कहा, 'डाक्टर साहब, यह वही मामला है, महाशय सुखलालवाला, वही, तराई के मशहूर शिकारीवाला।'

डाक्टर को भी सुखलाल के लाये उपहार—घी के कनस्टर और चीतल की खालें याद आ गईं। उन्होंने तुरन्त मेट्रन को आदेश लिख दिया कि रोगी को उसके लिए निर्धारित सुरक्षित कमरे में भर्ती किया जाये।

प्रेमशंकर ने तीन-चार व्यक्तियों को धकेलकर उसी समय अन्दर आकर कहा—डाक्टर साहब, मैं आपसे इसी मरीज को देख देने की प्रार्थना करने आया था। चलिए, अब यहीं पहिले देख लीजिए, शायद इन्हें आपको भर्ती करना ही न पड़े।

शेरखाँ ने हँसकर उसकी बाँह पकड़कर उसे बाहर खींचते हुए कहा—डाक्टर साहब, मैं जानता हूँ इसे। इसका भी पेंच ढीला है, उसी मर्ज का मरीज है।

'मैं तो पहिले ही समझ गया था' कहकर डाक्टर भटनागर इतने जोर से हँस पड़े कि पान के साथ उनके नकली दाँत भी आ गिरे। उन्हें बीच ही में

हथेली में पकड़ वह उठकर पास ही हाथ धोने के बरतन तक गये और उन्हें रोगियों को सुइयाँ लगाने के स्पिरिट भरे पारदर्शक डिब्बे में डालकर मेज पर आ गये। बोले, 'मैं तो समझ गया था; भला मुझे इस शहर में मुँहमाँगी फीस देनेवाला कौन मरीज होगा !'

'डाक्टर साहब, यह महाशय सुखलाल भी बड़े काम का आदमी है।' कहकर हेड क्लर्क ने बेंच के खाली स्थान पर बैठकर तराई के शिकार की वही पुरानी कहानी कहनी आरम्भ की : जब वह थर्ड क्लर्क था तब अँग्रेज पुलिस कप्तान और अँग्रेज सिविल सर्जन को एक ही मामले में एक लाख की फीस मिली थी।

इस कहानी को वह सुखलाल का जिक्र आने पर पहिले भी इतनी बार कह चुका है कि डाक्टर भटनागर का उसके सुनने में उत्साह नहीं रहा। बात वर्षों पुरानी थी। शेर के शिकार में एक जमींदार की गोली से अचानक दूसरे जमींदार की मृत्यु हो गई थी। मृत्यु को आकस्मिक बतलाने के लिए सुखलाल ने ही बीच में पड़कर उस जमींदार को हत्या के अपराध का भय दिखाकर यह भारी फीस डाक्टर और पुलिस को दिलवाई थी। दफ्तर को भी इतना रुपया एक दिन में मिला था जितना साल-भर में भी ऊपर की आमदनी में कभी न मिलता था।

*

प्रेमशंकर के समय पर न लौटने के कारण डाक्टर भीमराज ने जब रामप्रसाद को अस्पताल ले चलने की उतावली दिखलाई तो रामप्रसाद ने उसे अपने इस्तीफे की बात बतला देना उचित समझा।

सुनकर डाक्टर भीमराज के दाहिने गाल ने फिर फड़कना आरम्भ कर दिया। उसने रुखाई से कहा—जब तक मुझे दूसरी सरकारी आज्ञा न मिल जाये मैं पहिली आज्ञा के अनुसार रोगी को अस्पताल के डाक्टर को सौंपने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता।

अस्पताल में पहुँचकर रामप्रसाद अपने लिए निश्चित कक्ष में पहुँच गया और परिचारिका ने तापमान लेकर उसके हृदय की धड़कन और साँसों की गिनती कर ली।

सुशीला ने परिचारिका से पूछा—बहिन, इन्हें कोई बीमारी तो है नहीं, डाक्टर जल्दी आकर देख जायें तो अच्छा है। कब तक आयेंगे डाक्टर ?

नर्स ने बतलाया कि सुबह के राउंड पर डाक्टर ने रोगियों को देख लिया है, वह अगली सुबह तक ही आयेंगे। किन्तु प्राइवेट वार्ड के मरीज डाक्टर की फीस देने पर उसे किसी और समय भी बुला सकते हैं।

अस्पताल के कर्मचारियों में सुशीला को वही एक परिचारिका सहानुभूति प्रदर्शित करती दीख पड़ी। उसने उसी से प्रार्थना की कि वह डाक्टर से पता लगा दे कि कब तक उसके पति को वहाँ रहना पड़ेगा। उसने आकर सूचना दी कि मेडिकल बोर्ड की तिथि दस दिन के उपरान्त आयेगी। महीने में केवल दो बार ही बोर्ड बैठता है। जब तक बोर्ड के पास रोगी के सभी पुराने कागज नहीं पहुँच जाते तब तक उसके मामले पर विचार नहीं किया जा सकता। रोगी को कागजों के न आने पर सम्भवतः पच्चीस दिन तक भी प्रतीक्षा करनी पड़े।

पच्चीस दिन की प्रतीक्षा की बात सुनकर सुशीला सिहर उठी। किन्तु रामप्रसाद ने परिचारिका से कहा—आप डाक्टर को बुला लाइए। मुझे देखने के लिए नहीं, इस कमरे का किराया कौन देगा, इसका निर्णय करने के लिए। मैंने तो सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है। मैं इस कमरे में अब बिना किराया दिये रहने का अधिकारी नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि मैं बीमार भी नहीं हूँ, अतः मुझे अपने पास से किराया देकर इस कमरे में रहने की आवश्यकता नहीं है। इस कमरे का सात रुपये दिन का किराया या तो उस डाक्टर को देना चाहिए जो मुझे यहाँ तक लाया या फिर आप लोग, जिन्होंने मुझे यहाँ पर प्रविष्ट कराया।

भीमराज से जब यह बात कही गई तो उसने डाक्टर भटनागर से तत्काल परामर्श करना उचित समझा।

डाक्टर भटनागर को जब इस्तीफे और कमरे के किराये की बात ज्ञात हुई तो उसने इधर-उधर अनेक अधिकारियो को टेलीफोन करके इस शर्त पर उसे मुक्त कर दिया कि रोगी के अभिभावक लिखित आश्वासन दें कि वे उसे अपनी जिम्मेदारी पर ले जा रहे हैं। रामप्रसाद ने कहा—ये लोग कोई

भी ऐसा आश्वासन नहीं देंगे। आप मुझे अपनी जिम्मेदारी पर अस्पताल में रख सकते हों तो मैं रहने को तत्पर हूँ।

अन्त में दो-चार और अधिकारियों से बातें करके डाक्टर भटनागर ने रामप्रसाद का मुक्त कर दिया।

आम, शीशम और इमली के विशाल वृक्षों की पंक्तियों के बीच उस घने छायादार मार्ग से होता हुआ जब रामप्रसाद अपनी मा, पत्नी और बालक के साथ राजागंज के स्कूल में पहुँचा तो उसे एक स्फूर्ति और नये जीवन का अनुभव हुआ। पहली बार जब वह यहाँ आया था तो शाम का समय था और तब उसे यह अनुमान ही नहीं हुआ था कि यह स्थान इतना रमणीक होगा। स्कूल का पर्याप्त ऊँचा और दुमंजिला लाल-लाल इंट का बना-वह भवन, चारों ओर दूर तक फैले खुले मैदानों से परिवेष्टित था और वास्तव में एक आदर्श विद्यालय के ही अनुरूप आलीशान लगता था।

उस खुले स्थान में आकर उसे ऐसा लगा मानो उसका विद्यार्थी जीवन फिर लौट आया हो। विद्यालय के पीछे के मैदान के किनारे अध्यापकों के रहने के मकान बने थे। छोटे-छोटे सुहावने बगीचों से घिरे वे भवन बाहर से जितने आकर्षक लग रहे थे अन्दर से भी उतने ही सुखद बने हुए थे। किनारे पर का एक खाली मकान रामप्रसाद को रहने को मिला। उसके आँगन में सुनहरे फूलों के लदा एक विशाल गोलाकार वृक्ष मानो दूर ही से उसका स्वागत कर रहा था। उसे बतलाया गया कि इस मकान में उससे पहिले विद्यालय के डाक्टर लूक रहते थे, जो एक ही सप्ताह पहिले रेल के स्टेशन के निकट विद्यालय के कृषि-कक्षा के नये भवन में चले गये हैं।

पत्नी को घर की व्यवस्था सौंपकर, त्रिवेदीजी से यह जान लेने पर कि उसे वहाँ क्या करना है, किस कक्षा को पढ़ाना है, रामप्रसाद अपने स्वभाव के अनुसार उसी दिन से अध्ययन-अध्यापन के कार्य में लग गया। उसे प्रति दिन केवल दो घंटे पढ़ाने जाना होगा, शनिवार को तो केवल एक कक्षा में

एक घंटा। किन्तु त्रिवेदीजी ने बतलाया कि शीघ्र ही नवीं और दसवीं कक्षाओं के खुल जाने से उसे और अध्यापकों की भाँति सप्ताह में पच्चीस घंटे विद्यालय में, तथा बारह घंटे छात्रावास में विद्यार्थियों के साथ बिताने होंगे। रामप्रसाद को विद्यालय और विद्यार्थी इतने भाये कि यदि उसे रात-दिन बिना अवकाश के पढ़ने-पढ़ाने को कहा जाता तो वह न ऊबता। वास्तव में उसे विद्यालय में काम करते-करते बार-बार यही ध्यान आता कि क्या वह उनके दिए वेतन का सचमुच अधिकारी है, क्या वह उसके अनुरूप परिश्रम कर रहा है। विद्यालय का जीवन आडम्बरहीन था। सफेद कमीज और सफेद पाजामा पहने नंगे सिर रामप्रसाद जब विद्यार्थियों के पास से गुजरता तो स्वयं हँसता-मुस्कराता रहता। सभी विद्यार्थी और अध्यापक उस मृदु हास से प्रभावित होकर उसी को मानो प्रतिबिम्बित करते।

वहाँ पहुँचने के तीसरे दिन लारेंस भाई उसे अपने साथ कृषि-कक्षा की ओर घोड़ागाड़ी में घुमाने ले गये। राजागंज से सात मील दूर रेल के स्टेशन के पास स्थित यह विद्यालय आधुनिक ढंग का बना था। इमारतें इकमंजली, पत्थर की बनी थीं। दूर सड़क से ही खाकी कमीज और नीले जांघिये पहिने विद्यार्थी खेतों में अध्यापकों के साथ काम करते दिखाई दे रहे थे। राजागंज की ही भाँति यह विद्यालय भी खूब खुली हुई भूमि में बनाया गया था ताकि आवश्यकता पड़ने पर बीच-बीच में और भवन बन सकें। एक ओर गोशाला तथा दुग्धशाला, दूसरी ओर बीज-भंडार, यंत्रशाला तथा औषधालय थे।

ज्यों-ज्यों रामप्रसाद उस कृषि-विद्यालय के भवन के निकट आता गया, उसकी प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती हो गई। वह सोचने लगा कि जीवन के कैसे दुर्लभ आनन्द से वह अब तक वंचित था। यही विद्यालय था उसके लिए निर्धारित स्थान और यही था उसका कार्यक्षेत्र, यहीं थे उसके साथी। अब तक जाने किस अभिशाप के कारण वह इन सबसे दूर उस दलदल में फँसा रहा।

आज पहिली बार उसने अनुभव किया कि जीवन कितना सुन्दर है, कितना विलक्षण और कैसा अवर्णनीय! दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा कि अब तक मैं इस सौन्दर्य से अपरिचित था। मेरे चक्षुओं में वह ज्योति ही नहीं थी कि मैं इस अतुल सौन्दर्य को देख पाता। यह देखो, यहाँ तो प्रत्येक रूप, प्रत्येक

नारी, प्रत्येक पशु-पक्षी और प्रत्येक प्राणी जिधर देख पड़ता है, सुन्दर है, अतिशय सुन्दर। अस्पताल की एक परिचारिका उस ओर से एक ताँगे में निकली। उसकी श्वेत वेशभूषा और करीने से बँधे हुए जूड़े को देखकर वह सोचने लगा, सेवा-कार्य में लगी इन महिलाओं का जीवन कैसा आदर्श और सफल है ! पास ही वृक्ष के ऊपर से एक जंगली तोता उड़ता हुआ निकल गया, उसके बाद हरे-हरे तोतों की पाँति-की-पाँति कोलाहल करती हुई सामने एक पेड़ पर बैठ गई।

'ओह, कितना सुन्दर है ! कितना सुन्दर !' ऐसा मन-ही-मन सोचता हुआ वह आगे बढ़ गया।

फाटक के पास घोड़ागाड़ी रुक गई। यह गाड़ी प्रतिदिन इस कृषि-कक्षा से दूध, मक्खन आदि सामान लेकर राजागंज जाती और वहाँ से इस ओर आनेवाले अध्यापकों को ले आती। अपने नित्य के निश्चित स्थान पर आकर दोनों घोड़े रुककर खोले जाने की प्रतीक्षा में पाँव पटकने लगे। रामप्रसाद को उन घोड़ों का वह व्यवहार भी अत्यन्त आकर्षक लगा। वह उनकी ओर देखता-मुस्कराता रहा। वास्तव में वह अपने ही अन्तस्तल के सौन्दर्य पर मुग्ध था।

आगे मुड़ने पर वे लोग अस्पताल के नये भवन की ओर बढ़ गये। वहाँ पर किंचित् गहराई पर पानी से भरा एक नन्हा-सा तालाब था। उस वर्गाकार जलाशय की लम्बाई बीस-पच्चीस गज से अधिक न थी। किनारों पर केले के पेड़ लगे थे और उनके नीचे फूलों की क्यारियाँ थीं। कृषि-कक्षा की जन्तुशाला के लिए बने उस जलाशय के उपरान्त छोटा-सा उद्यान था। इस उद्यान में गुलाबी फ्राक पहने एक दस वर्षीय बालिका खेल रही थी। लारेंस भाई को अपनी ओर आते देख वह उछलती-कूदती हुई उन्हीं की ओर आ गई। अपनी सुन्दर बड़ी-बड़ी चमकीली आँखों, दोपहर की धूप में तप्त गुलाबी कपोलों तथा सुनहरे बालों के बीच बँधे बड़े-से लाल-लाल तितली के आकार के चुटीले फीते से सज्जित वह बालिका उस समय उसे किसी परी-सी निरीह और सुन्दर दिखलाई दे रही थी।

लारेंस भाई ने उसे थपथपाते हुए नये अध्यापक रामप्रसाद से उसका परिचय कराया। वह बालिका बड़े आदर से रामप्रसाद का अभिवादन करके

उसके हाथ पकड़कर अपनी सुरीली वाणी में कहने लगी—चलिए, मैं आपका अपनी छोटी बहिन से परिचय कराऊँगी। वह आपको देखकर बड़ी खुश होगी। चलिए, कितनी सुन्दर है मेरी छोटी बहिन !

लारेंस भाई ने कहा—वास्तव में वह लड़की तो बड़ी ही सुन्दर है ! ये दोनो बड़ी सुन्दर हैं।

अपनी तोतली हिन्दुस्तानी में 'अच्छा, अपने पापा से कहो कि हम लोग अभी आते हैं,' कहकर लारेंस रामप्रसाद सहित अस्पताल के भवन की ओर बढ़ गये। अध्यापकों का बैठक का कमरा उसी ओर था।

विद्यालय के सभी कमरों और प्रयोगशालाओं को दिखलाकर रामप्रसाद के साथ वह डाक्टर लूक से मिलने गये। लूक एक टाँग से वंचित, अवकाशप्राप्त सैनिक डाक्टर थे, जो अब बिना किसी वेतन के इस विद्यालय में धर्मार्थ काम कर रहे थे। अस्पताल में काम करने के अतिरिक्त वे विद्यार्थियों को जीवविज्ञान की शिक्षा भी देते थे। अपनी नकली टाँग से कमरों में इधर-से-उधर फुर्ती से चक्कर लगाता हुआ वह लम्बा-तगड़ा डाक्टर वहाँ किसी सैनिक अधिकारी-सा ही रोबीला और हृष्ट-पुष्ट लगता था। उससे मिलकर रामप्रसाद जब उनके कमरे से बाहर निकला तो उसने डाक्टर को अपने सहायक अधिकारी से कानाफूसी करते पाया।

यह प्रबन्ध हुआ कि रामप्रसाद विद्यार्थियों से कुछ मिनट बातें करके अध्यापकों से मिलने उसी ओर आयेगा।

खेतों से लौटते हुए विद्यार्थियों की पंक्ति कतार बाँधे आगे बढ़ रही थी। बड़े दालान के बरामदे में पहुँचकर वे लोग अपने-अपने फावड़ों को अलग-अलग, समान दूरी पर इसी हेतु बनी, खूँटियों पर टाँगते जा रहे थे। आगे बढ़कर पानी के नलों के पास पहुँचकर हाथ-पाँव धोकर फिर वैसी ही अनुशासित सैनिकों की-सी पंक्ति बनाकर अपनी कक्षा की ओर बढ़ रहे थे। उन विद्यार्थियों के बीच पहुँचकर रामप्रसाद को सच्चे सुख का अनुभव हुआ। उसने थोड़े-से चुने हुए शब्दों में उन लोगों को बतलाया कि वर्षों पहले किस प्रकार अपने विद्यार्थी जीवन में उसका त्रिवेदीजी से साक्षात् हुआ था और तब किस प्रकार की अभिलाषा उसके मन में उत्पन्न हुई। उसके और सहपाठी किस

प्रकार उनको महात्मा गांधी समझ बैठे थे। अब, उस वर्षों पुरानी अपनी अभिलाषा के पूर्ण होने पर फिर उन लोगों के मध्य में आने का अवसर पाकर किस प्रकार उसको एक नये ही जीवन का अनुभव हो रहा है, आदि-आदि।

अपनी सच्ची भावना को व्यक्त करने पर रामप्रसाद को एक प्रकार का सन्तोष और सुख मिला। उसके शब्दों का तदनुकूल प्रभाव श्रोताओं पर भी पड़ा। विद्यार्थियों को अपने इस नये अध्यापक के बारे में लारेंस ने बतलाया कि किस प्रकार अर्थशास्त्र में एम० ए० करने के उपरान्त सरकारी नौकरी में कई वर्ष बिताकर अब रामप्रसाद उन लोगों की सेवा करने आ रहे हैं। विद्यार्थियों ने देखा कि बालकों की ही-जैसी निष्कपट मुद्रा और वैसी ही पैनी जिज्ञासु आँखों-वाला यह युवक इतना अनुभवी और इतना सयाना तथा बुजुर्ग है, तो उनकी उसके प्रति श्रद्धा द्विगुणित होने लगा।

विद्यार्थियों की सभा से लौटने के उपरान्त जब दुबारा रामप्रसाद अस्पताल के कक्ष की ओर गया तो उसे अध्यापक भी उसी सहृदयता से मिले। केवल डाक्टर की दृष्टि में उसे कुछ रुखाई-सी प्रतीत हुई। अस्पताल के कम्पाउण्डर और नर्स को इस बार भी उसने भेद-भरी मुस्कान में बातें करते हुए पाया। डाक्टर के घर चाय पीकर वे लोग ताँगे पर बैठकर राजागंज की ओर लौटे। इस बार भी वह लड़की खेल के मैदान के किनारे खड़ी दिखलाई दी। किन्तु पहिले की भाँति उसकी आँखों में न वह निष्कपट आभा थी और न वह स्फूर्ति। जब रामप्रसाद ने उसे बुलाना चाहा तो वह सहमकर भाग गई। लारेंस ने भी अनुभव किया, इस समय वह कुछ डरी हुई-सी थी। रामप्रसाद समझ गया कि डाक्टर के उस व्यवहार में सहृदयता से भी अधिक सहानुभूति झलकती थी। वह उसके उसी सन्देह के कारण होगी कि उसका यह नवागन्तुक मित्र किसी मानसिक रोग से पीड़ित है। अबोध बच्चों तक को इस झूठ से दूषित कर दिया गया, यह जानकर उसे बड़ा क्षोभ हुआ।

उस सप्ताह के अन्त में रामप्रसाद को दूसरी बार कृषि-विद्यालय जाना पड़ा। शीघ्र ही रामप्रसाद को अनुभव हुआ कि वहाँ वह एक रहस्यमय वाता-वरण से घिरा-सा रहता है। अध्यापक उसकी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखते हैं और उसके निकट आने पर कृत्रिम मुस्कराहट से उसका स्वागत करते हैं,

किन्तु उसकी पीठ फिरते ही कानाफूसी करने लगते हैं। डाक्टर उसके प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर न देकर कुछ सोचने लगता है, फिर यह भूल जाता है कि रामप्रसाद क्या पूछ रहा था, तथा उलटे-सीधे जवाब देने लगता है। उस व्यवस्था से रामप्रसाद का मन विरक्त हो जाता है, वह सोचता है कि उस झूठ ने यहाँ भी उसका साथ नहीं छोड़ा।

★

अप्रैल के दूसरे सप्ताह में भी उस वर्ष मौसम बड़ा सुहावना था। वर्षा के हो जाने के कारण पेड़-पौधे धुले हुए-से बड़े सजीव और पृथ्वी से उठती हुई भाप के कारण साँसें लेते हुए-से लगते थे। एक दिन अपने आँगन में बैठा हुआ रामप्रसाद गुलमोहर के उन सुनहरे फूलों की पंखुड़ियाँ गिरते देख रहा था तथा भीगी भूमि से उठती हुई उस अनोखी सोंधी गन्ध का आनन्द ले रहा था, तभी डाकिये ने आकर उसको एक मैला-कुचैला लिफाफा देते हुए कहा—रामप्रसाद साहब कहाँ होंगे ?

रामप्रसाद ने देखा, वह रजिस्ट्री का लिफाफा किसी अपरिचित सरकारी दफ्तर से चला है। अब तक अनेक डाकखानों में घूमता हुआ यहाँ आकर वह इतना भद्दा हो गया था कि उसका नाम और पता भी साफ-साफ नहीं पढ़ा जाता था।

लिफाफा मेरा ही है, ऐसा कहकर रामप्रसाद ने हस्ताक्षर कर दिये। उसे खोलकर देखा। वह चिकित्सा-विभाग के डाइरेक्टर जनरल ने लखनऊ के सिविल-सर्जन को लिखे पत्र की प्रतिलिपि थी। पत्र में लिखा था कि राम-प्रसाद नामक तहसीलदार के कागज उनके पास भेजे जा रहे हैं कि अगले मास होनेवाले मेडिकल बोर्ड में इस रोगी के परीक्षण के उपरान्त उसके सम्बन्ध में निर्धारित फार्म पर रिपोर्ट भेजी जाये। मूल पत्र की यह प्रति तराईपुर तहसील के पते पर रामप्रसाद के नाम भेजी गई थी कि वह भी उस तारीख को अपने परीक्षण के लिए बोर्ड के सम्मुख उपस्थित हो।

राजागंज से वह सरकारी लिफाफा सदर अस्पताल में पहुँचा था। लिफाफे पर लगी मोहरों से ज्ञात होता था कि अस्पताल से वापस होने पर वह फिर

शहर के उस मुहल्ले में भेजा गया था जहाँ उस सुबह अस्पताल में जाने से पहले रामप्रसाद डा० भीमराज के साथ कुछ घण्टों के लिए अपने किसी रिश्तेदार के घर टिका था और अन्त में शायद उन्हीं रिश्तेदार के बतलाये जाने पर लिफाफा राजागंज पहुँचकर अब तीन सप्ताह के उपरान्त उसे मिला था। मेडिकल बोर्ड की निर्धारित तारीख अभी नहीं बीती थी और आनेवाले रविवार को, जिसके अब दो ही दिन शेष थे, चलकर बोर्ड के लिए समय पर लखनऊ पहुँचा जा सकता था।

पहिले तो रामप्रसाद की इच्छा हुई कि उस कागज को वहीं पर फाड़-फूड़ दे। उसे अब सरकारी नौकरी तो करनी है नहीं, जो वह मेडिकल बोर्ड की चिन्ता करे। फिर उसे ध्यान आया कि शायद उसका इस्तीफा अभी रेवेन्यू बोर्ड ने मंजूर नहीं किया होगा। इसी लिए मेडिकल बोर्ड की कार्यवाही में कोई बाधा नहीं हुई और जैसा कि सभी सरकारी कार्यालयों में होता है, एक विभाग ने दूसरे विभाग को उसके इस्तीफे के बारे में अब तक कोई सूचना नहीं दी। वह सोचने लगा कि उस नाटक का अन्तिम अंक भी यदि अभिनीत हो सके तो कोई आपत्ति नहीं। इससे उसको एक नये मनोरंजन का अवसर मिल जायेगा। यह सोचते-सोचते उसे कृषि-विद्यालय के डाक्टर लूक के व्यवहार का स्मरण हो आया। निश्चय ही वह डाक्टर अपने साथियों से उसके पागलपन के बारे में ही कानाफूसी करता होगा। इस विचार के आते ही उसने निश्चय किया कि इस विषय में त्रिवेदीजी से अनुमति लेकर डाक्टर लूक के साथ उसका लखनऊ जाना अनुचित न होगा। इससे विद्यालय के मेडिकल अफ-सर का उसके मस्तिष्क के बारे में झूठा सन्देह जाता रहेगा।

अपना सारा काम-काज छोड़कर वह दौड़ा हुआ त्रिवेदीजी के पास पहुँचा और उसने लूक के साथ लखनऊ जाने का विचार उन पर प्रकट करके वह पत्र भी उनको दिखला दिया। त्रिवेदीजी ने सहर्ष अनुमति दे दी और डाक्टर लूक को साथ में भेजने के लिए भी वह राजी हो गये।

जब वे दोनों लखनऊ पहुँचे तो रामप्रसाद ने देखा कि बोर्ड के सदस्यों में लखनऊ के सिविल सर्जन के अतिरिक्त एक सैनिक डाक्टर तथा एक मनोवैज्ञानिक भी है। उसने अपने पहुँच जाने की सूचना अन्दर भिजवा दी।

उसे और सब रोगियों के निपट जाने पर सबके बाद में बुलाया गया।

परस्पर अभिवादन के समाप्त हो जाने पर सैनिक अधिकारी ने कहा—मिस्टर रामप्रसाद, उस शाम आप समय पर तहसील पहुँच गये होंगे।

रामप्रसाद ने साश्चर्य उस मधुर वक्ता की ओर देखा, यह जानने के लिए कि किस शाम के बारे में उससे प्रश्न किया जा रहा है। क्षण-भर बाद उसे ध्यान आ गया कि तराईपुर के निकट खटिकों के लिए सैनिक बैरकों का प्रबन्ध करने जब वह छावनी गया था तो वहाँ चाय पर इस अधिकारी से उसका साक्षात हुआ था। रेड क्रॉस की गाड़ी भी उसी की कृपा से उसे प्राप्त हुई थी।

रामप्रसाद ने दुबारा कुर्सी से उछलते हुए कहा—क्षमा करें, मैं पहिले आपको नहीं पहचान पाया। हाँ, उस दिन मैं आपकी कृपा से ठीक समय पर तहसील में वापस पहुँच गया था। उसी शाम मैंने उन अभागे खटिकों को उन क्वार्टरों में भिजवा भी दिया था। वे लोग आपकी सहृदयता के लिए बराबर आपको धन्यवाद देते रहे।

सैनिक अधिकारी ने पूछा—क्या उन लोगों ने अब वे क्वार्टर खाली कर दिये हैं?

रामप्रसाद ने कहा—दो सप्ताह पहिले तक तो खाली नहीं किये थे। हाँ, आठ-दस परिवार चले गये थे।

इस बीच मनोवैज्ञानिक ने, जो अब तक चुपचाप बैठा दीवार पर टँगे आँख की परीक्षा के चार्ट को देख रहा था, कहा—दो सप्ताह पहिले?

रामप्रसाद ने कहा—जी हाँ?

वह बोला—तब कौन-सी तारीख थी?

रामप्रसाद ने बता दिया कि अमुक तारीख थी। मन-ही-मन सोचने लगा कि भला मैं मार्च मास की उस तेरह तारीख को जन्म-भर भूल सकता हूँ, जब कि मेरे हाथों में अकारण ही उन लोगों ने हथकड़ी डाल दी थी।

मनोवैज्ञानिक ने उसके उत्तर की चिन्ता न करते हुए पूछा—आज कौन-सी तारीख है? कौन-सा महीना?

रामप्रसाद ने इसका भी उत्तर दे दिया, यद्यपि उन प्रश्नों से उसे प्रश्न-

कर्त्ता के प्रति क्रोध आने लगा कि क्या वह उसे नितान्त विभ्रान्त समझता है।

उसने फिर पूछा—आप इस समय किस डाक्टर के अधीन, किस अस्पताल में उपचार करा रहे हैं ?

रामप्रसाद ने बतला दिया कि वह किसी अस्पताल में दाखिल नहीं है, न उसे कोई बीमारी है।

सैनिक अधिकारी अब तक उसके कागजों को पढ़ रहा था, अब उस पर से दृष्टि उठाकर बोला—तब आपको किस लिए बीमार कहा गया ?

रामप्रसाद ने बतला दिया कि किस प्रकार उन सैनिक क्वार्टरों के किराये के लिए उसके नाम पर दो सौ रुपया पुलिस ने वसूल कर लिया था। किस प्रकार तराई की तहसील में रिश्वतखोरी के विरुद्ध सिर उठाने के कारण उसको नीचा देखना पड़ा और अन्त में वह किस प्रकार इस्तीफा देकर अब राजागंज के स्कूल में नौकरी करने लगा है। वे सब बातें उसने धीरे-धीरे उन लोगों के एक के उपरान्त दूसरे प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार आसानी से कहीं कि न तो भावावेश के कारण उत्तेजित हुआ और न किसी भाँति रोष या प्रतिकार भावना ही उसकी बातों में झलकी।

उसकी कहानी को सुनकर वे लोग दंग रह गये। बीच-बीच में उस दारोगा की कुछ और रिश्वत की मनोरंजक कहानियाँ सैनिक अधिकारी ने भी कह सुनाई जो उन्हें उस छावनी में रहते ज्ञात हुई थीं। रामप्रसाद के यह बतलाने पर कि वह राजागंज स्कूल के डाक्टर लूक को भी साथ लाया है, सैनिक डाक्टर ने तुरन्त डाक्टर लूक को भी अन्दर बुला लिया।

मेडिकल बोर्ड का गम्भीर वातावरण शीघ्र ही एक मनोरंजक गोष्ठी में परिवर्तित हो गया। मनोवैज्ञानिक ने अब केवल मनोरंजन की भावना से रामप्रसाद को उन परीक्षणों के बारे में बतलाया जो मानसिक रोगियों के लिए निर्धारित किये जाते हैं और उसके यह कहने पर कि वह उनमें से कठिन-से-कठिन परीक्षण के लिए तत्पर है, वह उससे उन अनेक प्रश्नों का पूछ लेने को राजी हो गया। सैनिक अधिकारी ने कहा, 'मिस्टर रामप्रसाद को ही क्या, मुझे भी इन परीक्षणों में शामिल कर लीजिए।' और फिर उपहास की भावना से कहा, 'आजकल मेरा मस्तिष्क भी कुछ हलकापन लिये रहता है।'

डाक्टर लूक ने प्रस्ताव किया—अच्छा, हमको भी शामिल कीजिए। हमको भी, लोग कहते हैं, कि कुछ मानसिक रोग हो गया है, जिससे हम राजागंज स्कूल की मुफ्त में नौकरी करते हैं।

इस प्रकार सिविल सर्जन और मनोवैज्ञानिक ने उन तीनों से प्रश्न पूछकर उत्तरों को तालिका में भरना आरम्भ किया।

उन प्रश्नों का वे हँसते-खेलते जवाब देने लगे। मनोवैज्ञानिक के 'अब बस कीजिए, अब बस कीजिए,' कहने पर भी वे लोग कहते 'कि नहीं सब प्रकार के प्रश्न पूछ ही लीजिए।

इस प्रकार घंटे-भर के परीक्षण के उपरान्त जब उत्तरों को तालिकाबद्ध किया गया तो रामप्रसाद का बौद्धिक स्तर सबसे उत्तम, उसके उपरान्त सैनिक अधिकारी का और तब डाक्टर लूक का निकला।

सिविल सर्जन ने रामप्रसाद को सहर्ष विदा करते हुए कहा—मैं ये तीनों रिपोर्ट माल-विभाग के पास भेजूँगा।

रामप्रसाद ने उनको धन्यवाद देते हुए कहा—किन्तु मैं अब उस नौकरी में वापस नहीं जाना चाहता। जहाँ सभी रिश्वत में चूर रहते हों वहाँ उस रिश्वत से दूर भागनेवाला पागल ही समझा जायेगा।

यों तो तराई के निवासी इतने अज्ञानी, भाग्यवादी और आत्मविश्वास शून्य थे कि उनको रामप्रसाद-जैसे सत्यनिष्ठ अधिकारी का हथकड़ी में बिना अपराध बँधकर जाना किसी अपरिहार्य सरकारी आज्ञा का ही प्रतिफल जान पड़ता किन्तु खटिकों की बिरादरी के प्रचार तथा धनुपुर के बीज-गोदाम-जैसी अन्य घटनाओं के कारण कुछ लोग यह समझ गये थे कि तहसीलदार का एकमात्र अपराध था उन ग्रामीणों की भलाई करना। किसी सरकारी अधिकारी का अकारण अपमान तराई के इतिहास में एक बेजोड़ घटना थी। सदियों से वे अपढ़ लोग दंड-भय के आगे झुकते आये थे, सरकारी कर्मचारी के अत्याचार के आगे आत्मसमर्पण कर देते थे और उसकी उचित-अनुचित

आज्ञा को चुपचाप मान लेते थे। इस घटना से उन्होंने जाना कि सभी सरकारी कही जानेवाली आज्ञाओं के पीछे सरकार की स्वीकृति नहीं होती, न सभी सरकारी कर्मचारी जनता पर अत्याचार करने की पूरी छूट पाकर आते हैं।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, रामप्रसाद के किये कार्यों की गाँव-गाँव में सराहना होने लगी। खटिकों से दारोगा हामिदअली उसी दिन से क्रुद्ध था जिस दिन मोहनलाल ने रामप्रसाद के गले में विदा होते समय माला डाली थी। उसने मोहनलाल से बिरादरी में पंचायत करके अपने उस कृत्य के लिए क्षमा माँगने को कहा था। कई बार थाने में उसकी अकारण पेशी भी की थी। खटिकों ने तराई के सारे इलाके के अपने बिरादरों को बुलाकर बड़ा भारी जलसा किया, किन्तु मोहनलाल का माफी माँगने का प्रस्ताव पंचायत में स्वीकृत नहीं हुआ। इसके विपरीत खटिकों ने एकमत होकर उस इलाके को ही छोड़ देना ठीक समझा। जेठ-असाढ़ की धूप में अपने सूअरों को लेकर हजारों खटिक परिवार नदी के उस पार दूसरे इलाके में बसने चले गये। खटिकों के जाने के उपरान्त बरसात में पानी-भरे धान के खेतों में काम करनेवाले उन मजदूरों के न मिलने से खेत बंजर रहने लगे। वे लोग कमर-कमर पानी में घुसकर काम कर सकते थे और खाने को उन्हें कई सप्ताह तक सूअर का मांस पर्याप्त होता था। नये मजदूर अन्न का प्रश्न पहले करते थे और काम बाद में करते थे। दो रोज पानी में भीगने पर उन्हें जूड़ी आ जाती थी। फल यह हुआ कि उस वर्ष के बाद तराई में धान का बोना ही बन्द हो गया।

रामप्रसाद के जाने की घटना से तराई में एक नये युग का आरम्भ हो गया। यह दुःख और दरिद्रता का युग था। लोग समय की गणना करने के लिए कहने लगे—रामप्रसादजी के जाने के दो साल उपरान्त यह लड़का पैदा हुआ था। कोई-कोई तो उसके नाम को संक्षेप करके कहते—रामजी तहसीलदार के जाने के उपरान्त इस गाँव में चार वर्ष तक कोई शुभ काम नहीं हुआ। इस प्रकार के संदर्भ उस अलिखित नये संवत्सर के सम्बन्ध में जिसकी प्रतिपदा रामप्रसाद के हाथों में हथकड़ी पड़ने की तिथि थी, गाँव-गाँव में सुन पड़ते। उसके हाथों में हथकड़ी पड़ने की बात अनेक दन्तकथाओं और ग्राम्य-गीतों का विषय बन गई थी। रामप्रसाद, वही तहसीलदार राजागंज के स्कूल

का अध्यापक है, इसे बहुत कम लोग जानते थे। अपने पठन-पाठन में व्यस्त रहने के कारण रामप्रसाद भी उन दूर गाँवों में बहुत कम जा पाता था।

राजागंज में रामप्रसाद अर्थशास्त्र की पुस्तकों के अध्ययन में ऐसा तन्मय रहता कि उस इलाके के एक-एक व्यक्ति के जीवन के मूल में उसे एक-न-एक आर्थिक या सामाजिक ग्रन्थि दीख पड़ती थी। किसानों, सरकारी नौकरों और श्रमिकों के विषय में विद्वानों के ग्रन्थों को पढ़कर सभी समस्याओं का हल कैसा आसान है यह जानकर वह आँखें मूँदे पुस्तक में उल्लिखित सिद्धान्तों की गहराई में पैठने लगता।

उन गाँवों की आर्थिक समस्या, अपराधों की प्रवृत्ति, करों की व्यवस्था तथा घरेलू उद्योगों की क्षमता पर उसने देश-विदेश की पत्रिकाओं में खोज-पूर्ण लेख लिखने आरम्भ कर दिये। तराई का वह इलाका अति प्राचीन काल से कितनी बार बसा और फिर कितनी बार उजड़ा, वहाँ थारू, बोक्सा-जैसी आदिवासी लोगों की जातियाँ कब और कहाँ से आई थीं और क्यों उन इलाकों से बाहर चली गईं, इन विषयों पर उसके खोजपूर्ण लेखों के लिए उसे अर्थ-शास्त्र में विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिल गई।

तहसील को छोड़ने के इन पाँच वर्षों में राजागंज विद्यालय एक साधारण स्कूल से उन्नति करते-करते अपने ढंग की एक अनूठी शिक्षण-संस्था बन गई। त्रिवेदीजी की नयी व्यवस्था के अनुसार किसानों ने अपने बेचे गल्ले और गन्ने पर एक पैसा रुपया धर्मार्थ खाते में उनकी संस्था के नाम निरन्तर दान देने की स्वीकृति दे दी थी। इसी मद में गन्ना मिलों और अनाज की मंडियों से पर्याप्त रुपया उनके पास आने लगा था, जिससे सरकारी सहायता की आवश्यकता कतई नहीं रह गई थी। स्कूल की विज्ञान-कक्षाओं तथा औद्यो-गिक-प्रशिक्षण केन्द्रों के भवन भी बन चुके थे। ये दोनों शाखाएँ राजागंज से दूर स्थित होती हुई भी उसी से सम्बद्ध थीं।

तराई की उस तहसील में रामप्रसाद के पढ़ाये हुए विद्यार्थियों ने एक नयी जाग्रति का संचार कर दिया था। ग्रामीण जनता उसी प्रकार के और स्कूलों के खुलने की माँग कर रही थी। एक ओर जहाँ राजागंज की ओर इतनी अधिक बौद्धिक जाग्रति थी, नदी के उस पार तराईपुर खादर के इलाके

में विचित्र परिवर्तन हो गया था। खेत सूखते जाते। फसल उगती थी, फूलती थी, किन्तु उसमें दाने नहीं पड़ते थे। लोग कहते थे कि रामजी तहसीलदार के हाथों में हथकड़ी पड़ने से उस इलाके को भगवान ने शाप दे दिया। जाड़ा भी आता, वसन्त भी, वर्षा भी समय पर होती, फिर भी उस इलाके के लोग भूखों मरते।

धनुपुर के आस-पास के वे गाँव भी उजड़ रहे थे, क्योंकि वहाँ खेतों में काम करने को समय पर मजदूर नहीं मिलते थे। जहाँ पर पहिले बीज-गोदाम था और हजारों मन गल्ला बाहर भेजा जाता था, वहाँ सरकार को बाहर से अन्न मँगाकर सस्ते गल्ले की दूकान खोलनी पड़ी। सुखलाल के कौन्सिल का मेम्बर हो जाने से उसके साथियों का हौसला बढ़ गया था। उन्होंने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को खटिकों की ही भाँति उस इलाके से बाहर निकाल भगाया था। प्रेमशंकर को भी गाँव छोड़कर शहर आ जाना पड़ा था। वहाँ वह विद्या प्रेस में काम करके अपनी मा की गुजर-बसर करने लगा था।

सुखलाल की अपने इलाके में धाक तो पहिले ही से थी। अपने प्रतिद्वन्द्वियों के तहसील से बाहर चले जाने के कारण उसने तराई में और भी धाक जमाने के लिए वर्ष में दो-चार बड़े-बड़े अफसरों को बुलाकर शेर के शिकार का प्रबन्ध कराने को अपना धर्म-सा बना लिया। जब वे अफसर इस प्रकार पहिले से आयोजित अपने दौरों पर उस इलाके में जाते तो शहर के बड़े-बड़े होटलों से बैयरे और खानसामे अपने पूरे सामान और प्याले-तश्तरियों सहित जंगल में मंगल कर देते। तराई के जिस गाँव में पीने को पानी भी न मिलता वहाँ अफसरों के आने पर बर्फ की मशीनें लग जातीं और भाँति-भाँति के पेय सुलभ कर दिये जाते।

दारोगा हामिदअली को बाहर अन्य जिलों में तरक्की के अवसर सुखलाल की कृपा से पहिले ही वर्ष सुलभ हो गये थे, किन्तु उसने तराई के उस इलाके को छोड़ना उचित नहीं समझा। नित नये-नये कानून बन रहे थे। उन कानूनों के पालन कराने के लिए तराई में दो-तीन नये थाने खोले जा रहे थे। सुखलाल से उसने आश्वासन ले लिया था कि उन थानों के खुल जाने पर, जब तराई में पुलिस के किसी बड़े अफसर का नया स्थान भी सृजित किया जायेगा,

तो अब तक के अपने तराई के अनुभव के कारण वह ऊँचा स्थान उसी को दिलाने की वह कोशिश करेगा। उस पदोन्नति के उपरान्त ही वह दूसरे जिले में नियुक्ति चाहेगा, उससे पहिले नहीं।

थाने के अपराध-रजिस्टर के पन्ने दिन-प्रतिदिन भरते जा रहे थे। कोई बिना लाइसेंस सिगरेट या बीड़ी बेचते पकड़ा जाता था, तो कोई बिना लाइसेंस बैलगाड़ी चलाने के अपराध में। बनिये रजिस्टर न रखने और समय पर अपने हिसाब की नकल सरकारी कार्यालय को न भेजने के अपराध में पकड़े जा रहे थे, तो जुलाहे बिना लाइसेंस करघे रखने के अपराध में। किसानों को बिना लाइसेंस के घी-दूध बेचने की भी आज्ञा नहीं रह गई थी। अपराधों की इस बढ़ती संख्या से हामिदअली-जैसे दारोगा की सम्पन्नता का बढ़ना स्वाभाविक ही था।

तराई की उस तहसील में जहाँ रामप्रसाद के समय में घी रुपये सेर मिलता था, तीन ही वर्ष के उपरान्त, गोबर मिलना भी दुर्लभ हो गया। कुछ किसान इसलिए पकड़ लिये गये कि उन्होंने सरकार द्वारा नये कानून से निर्धारित मजदूरी अपने खेत में काम करनेवालों को नहीं दी और उनसे अधिक समय तक काम लिया; दूसरे किसी गाँव में कुछ मज़दूरों को भी इसलिए पकड़ा गया कि उन्होंने नियम के विरुद्ध कानून में निर्धारित मज़दूरी से अधिक मज़दूरी माँगी थी।

कानून का पूरी तरह से पालन करनेवाले धर्म-भीरु लोग भी पुलिस के चंगुल से न बच पाते थे, क्योंकि उनसे कहा जाता था कि जिस कानून का वे पालन करने का स्वप्न देख रहे हैं वह बदल दिया गया है, अब नया कानून लागू हो गया है। वास्तव में जिसे गाँववाले रामजी तहसीलदार के हथकड़ी लगने का अभिशाप कहते थे, वह अभिशाप नहीं, नित नये-नये कानूनों का ही अभिशाप था, जिससे जनता भय-त्रस्त थी। खटिकों के चले जाने पर जुलाहों और गड़रियों को भी उस इलाके से भाग जाना पड़ा, क्योंकि उन अनपढ़ लोगों के लिए सूत और कपड़े का हिसाब रखना असम्भव हो गया था।

अकेले ही सुखलाल जनता के दुःख के प्रति सजग था। लोगों के शादी-ब्याह, जन्म-मृत्यु तथा उत्सवों-जलसों में वह पहिले को ही भाँति आगे रहता

था। अब नेताओं से मिलकर तराई के गाँवों में उसने सस्ते गल्ले की दूकानें भी खुलवा दी थीं।

यों तो महाशय सुखलाल ने सस्ते गल्ले की दूकानों को खोलने का आयोजन सच्चे दिल से और लोगों की भलाई की बात सोचकर ही किया था, किन्तु गाँव में एक दूकान के खुलते ही और दूकानों की माँग होने लगती। नित्य ही ऐसी दूकानों की संख्या बढ़ती जाती, फिर भी लोग सन्तुष्ट न होते।

कुछ ही महीनों में सुखलाल की कर्मठता से गाँव-गाँव में ऐसी दूकानें खुल गईं, किन्तु लोग उसे धन्यवाद देने के स्थान पर कुढ़ने लगे। उनके पास अन्न खरीदने को रुपया ही न बचा था। अनाज बाँटते समय एक बार एक गाँव में भयंकर दंगा हो गया। दूसरे गाँव में लोगों ने सरकारी दूकान को ही लूट लिया। एक और कस्बे में रेल के डिब्बों में से गल्ला उतारते समय बदमाश लोग उसे अपनी गाड़ियों में भरकर ले गये।

तराई में इस अराजकता के विरुद्ध सरकार की ओर से प्रयत्न किये गये। जाँच हुई और सरकार को सूचना दी गई कि तराई के इलाके की जनता की सुविधाओं पर सरकार पर्याप्त ध्यान नहीं दे रही है। वहाँ सरकारी नौकर बड़ी अनिच्छा से काम करते हैं। वहाँ सड़कें नहीं हैं। बिजली नहीं है। बिजली के कुएँ नहीं हैं और शहर के जैसे आराम सुलभ नहीं हैं। सरकारी नौकरों को वहाँ मलेरिया-अलाउन्स दिया जाये और किसानों के घरों में मच्छर-मार दवा छिड़की जाये। सरकारी नौकरों को सहर्ष तराई में काम करने के लिए वेतन के अतिरिक्त पुरस्कार दिये जायें। जनता की शिकायतों की समय पर जाँच हो, आदि-आदि।

इन सिफारिशों पर कार्यवाही आरम्भ हुई। ओवरसियर, जो हामिदअली दारोगा का साथी था, इञ्जीनियर बना दिया गया और तराई में नयी सड़कों के निर्माण का काम उसको सौंपा गया। पुलिस विभाग के अधीन जनता की शिकायतों की जाँच करने का विभाग खोला गया। उसका इन-चार्ज अफसर हामिदअली बनाया गया, अब उसको डिप्टी सुपरिंटेंडेंट के अधिकार मिल गये। उसकी तरक्की के आदेश में लिखा गया कि इतने वर्ष मेहनत से तराई में जमकर काम करने के उपलक्ष में उसका यह उद्योजन तराई में नियुक्ति

और कर्मचारियों को लगन से काम करने के लिए प्रोत्साहित करेगा तथा यह कि यह पदोन्नति उसे बहुत पहिले मिल जानी चाहिए थी।

सरकारी स्कूल के हेडमास्टर को ही अकेले निराश होना पड़ा। उसे कोई तरक्की नहीं मिली। रेंजर की पेन्शन होने की आयु पार हो रही थी; अब पुरस्कार-स्वरूप उसे दो साल की नौकरी की अवधि और मिल गई। जहाँ तक डाक्टर भीमराज का प्रश्न है उसका स्नायुरोग बढ़ गया। उसको पहिले डाक्टरों ने डो-लो रो नामक रोग बताया। वह उपचार करने कई महीने मेडिकल कालेज में पड़ा रहा, पर लाभ कुछ न हुआ। पहिले तो उसका एक गाल ही फड़कता था, धीरे-धीरे उसके हाथ-पाँव भी काँपने लगे। उसके लिए जब थर्मामीटर भी हाथ से पकड़ना असम्भव हो गया तो तराईपुर के अस्पताल से उसे रिटायर होना पड़ा। उसके सौभाग्य से महीनों तक उससे चार्ज लेने कोई नया डाक्टर वहाँ नहीं आया। डाक्टर ही नहीं, तराईपुर में कोई सरकारी कर्मचारी आना नहीं चाहता था। जिस किसी की नियुक्ति होती वह शहर जाकर डाक्टर कपूर-जैसे प्रसिद्ध डाक्टरों से छुट्टी की अर्जी के लिए बीमारी का प्रमाणपत्र खरीद लाता और अपने घर बैठ जाता था।

सुखलाल अपने मित्रों की सहायता करने में पहिले की भाँति तत्पर रहता था। डाक्टर के रिटायर होने पर उसे उसने अपने भाई के साझे में सीमेण्ट और लोहा बेचने का सरकारी लाइसेन्स दिला दिया। शहर में इस नये फर्म की जो दूकान 'भीमराज एण्ड कम्पनी' नाम से खुली उसकी तराईपुर शाखा का मालिक स्वयं डाक्टर भीमराज बनाया गया। शहर जाने से वह घबराता था। वहाँ उसे बच्चे उठते-बैठते बुरी भाँति काँपते देखते तो उस इलाके में प्रचलित अन्धविश्वास के कारण यह कहते कि इस डाक्टर ने किसी बिल्ली को मार डाला होगा इसी लिए इतना काँपता है। किन्तु तराई के सयाने व्यक्ति मन में यह सोचने लगते कि इसने एक निरपराध अफसर को हथकड़ी लगाई इसी लिए इसका पूरा शरीर काँपता है।

उधर राजागंज विद्यालय का अध्यापक रामप्रसाद अपनी विवशता पर खीझ उठता। वह लोगों से तराई के निवासियों की दुर्दशा के बारे में सुनता तो सोचता, मैं स्वस्थ हूँ, मेरा लड़का शील भी स्वस्थ है। मुझे एक स्नेहमयी

पत्नी और ममतामयी माता मिली है। मैं अपने अध्ययन से सन्तुष्ट हूँ, हम सब प्रसन्न हैं, फिर भी मैं असहाय हूँ। मैं इन किसान भाइयों की दुर्दशा को दूर करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं कर पाता हूँ।

लोग अपने साथियों और दूसरे लोगों पर ऐसे अत्याचार कर रहे हैं। क्या मुझी में कोई ऐसा विकार है कि मैं ही इस सब दुःख और अत्याचार का अनुभव कर रहा हूँ। कभी-कभी तो उसे भ्रम होता कि क्या वास्तव में वह उसका मस्तिष्क-विकार ही तो नहीं है, यद्यपि जिसका लेश भी अपने में न होने का प्रमाणपत्र मैं पा चुका हूँ। और यदि मैं नहीं तो क्या ये सब करने-करानेवाले लोग ही तो किसी मस्तिष्क-विकार से पीड़ित नहीं हैं! कैसी भयानक व्यवस्थाएँ की जा रही हैं! कैसे आश्चर्यजनक सरकारी आदेश हो रहे हैं! किन लोगों को अपने कृत्यों के लिए प्रशंसित किया जा रहा है! और यह सब करते हुए अधिकारी किस शान्ति और सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं, मानो जो कुछ वे कर रहे हैं वह जनता के लिए लाभप्रद और उपादेय ही हो!

ये सब विचार रामप्रसाद को निरन्तर अपना मनोमन्थन करने को विवश करते। वह इन सबका उपचार अपनी पुस्तकों में ढूँढ़ने का प्रयत्न करता। वहाँ भी सफल न होने पर दूसरे देशों के आर्थिक संगठन और वहाँ की सामाजिक व्यवस्था में हल ढूँढ़ता और अकारण ही परेशान-सा रहता।

*

धनुपुर के उस बीज-गोदाम में हुई घटना को ठीक पाँच वर्ष हुए थे कि उसी बीज-गोदाम में एक और घटना हो गई।

सस्ते गल्ले की दूकानों के बदनाम हो जाने से सरकार ने उस इलाके के नेता सुखलाल को बुला भेजा और कहा कि गाँव के लोगों को अपनी ही दूकानें, सहकारी-समितियाँ बनाकर खोलनी चाहिए। ऐसी दूकानों का शीघ्र प्रबन्ध होने लगा। भीमराज एण्ड कम्पनी के नाम की एक सहकारी संस्था भी खुल गई, जो गल्ले को बाँटने और लाने का प्रबन्ध करने लगी। इस कम्पनी ने तराई के लोगों को फसल से पहिले बीज और बाद में खाद आदि देने का

आयोजन किया। पुराने बीज-गोदाम अब नई सहकारी समितियों की देख-रेख में खुलने लगे।

मार्च मास की एक शाम धनुपुर के गोदाम में जब खाद की बटाई हो रही थी तो बटखरों की बात पर फिर किसानों और उसी पुराने मिलन महाराज में झगड़ा हो गया। पिछली बार रामलोटन को रामप्रसाद ने जो बटखरे जब्त करके इसलिए दे दिये थे कि मुकदमा चलने पर वह उनको कचहरी में पेश करेगा, वे उस गोदाम को वापस कर दिये गये थे। मुकदमा नहीं चल पाया था। सुखलाल और श्रीकान्त की कोशिश से सरकार ने एक ऐसा आदेश निकाल दिया था कि तहसीलदार रामप्रसाद ने अपनी विभ्रान्ति की अवस्था में, चार्ज देने के एक सप्ताह पहिले, जो भी जाँच-पड़ताल की थी वह नये तहसीलदार को दुबारा करनी होगी, तथा पहिले तहसीलदार की भेजी सभी रिपोर्टें रद्द समझी जायेंगी।

इसी आदेश के अनुसार खटिकों की उस अर्जी पर भी कोई कार्यवाही नहीं हुई जो रामप्रसाद ने अपनी रिपोर्ट सहित घोष साहब को भेजी थी। न प्रेमशंकर के खेतों के मामले की सुनवाई हुई थी और न चन्द्रकान्त के मामले की।

धनुपुर में खाद की बटाई का काम तुरन्त रोक दिया गया और आज्ञा हुई कि भविष्य में जब-जब गोदाम खुले तो खाद की बटाई पुलिस के सामने हो। लोग एक-एक करके आयें और अपना नाम रजिस्टर में लिखाकर पुर्जी लेकर चले जायें। दूसरे रोज आकर तब खाद ले जायें। पुलिस का बन्दोबस्त करके खाद के बटवारे के लिए जब धनुपुर के बीज-गोदाम में हामिदअली अपने अमले सहित पहुँचे तो जिन्हें खाद लेनी थी वे और जिन्हें कुछ काम न था वे भी उस बड़ी फौज को देखने कौतुहलवश ही चले आये। बीज-गोदाम के सामने थानेदारों के तम्बू लगाये गये और प्राइमरी स्कूल में डिप्टी साहिब हामिदअली का तम्बू तना।

सरकारी आदेश था कि साल के तखमीने में कोई गड़बड़ी न हो इसलिए मार्च महीने की आखरी तारीख के पहिले सारी खाद लोगों को दे दी जाये। बीज-गोदामवाले अपनी अकर्मण्यता से बचने के लिए अधिक-से-अधिक खाद

बाँटना चाहते थे। प्रतिदिन बड़ी-बड़ी मोटर लारियाँ सड़कों पर धूल उड़ाती रासायनिक खाद को ला-लाकर बीज-गोदाम में पाट रही थीं। कच्ची सड़कों के दोनों ओर के पेड़ इन भारी लारियों के आने-जाने से उठी हुई धूल के कारण ऐसे भूरे हो गये थे कि दूर से सूखे हुए-से लगते थे।

निश्चित दिन निश्चित समय पर खाद का बँटना आरम्भ हो गया। जैसे किसी चुनाव के अवसर पर गाँव में चहल-पहल हो जाया करती है उसी भाँति की चहल-पहल उस शाम बीज-गोदाम और स्कूल के चारों ओर हो रही थी। किसान, यह खाद कैसे उनके उपयोग में आयेगी, इससे क्या लाभ होगा, इन बातों से अनभिज्ञ होते हुए भी उस खाद को लेने आ रहे थे, क्योंकि इस समय वह किसी सरकारी योजना के कारण बिना मूल्य वितरित की जा रही थी। फसल के उपरान्त किसानों से उसके मूल्य के बदले में गल्ला वसूल किया जानेवाले था। लोगों का कौतुहल आगामी फसल के लिए नहीं था, वे तो मुफ्त मिलनेवाली एक वस्तु के लिए वहाँ आ रहे थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जिनका ज्ञात था कि खाद के मिल जाने पर उसे शहर में ले जाकर कुछ पैसा पैदा किया जा सकता है। कहीं-कहीं शहर के खाद-विक्रेताओं के दलाल गाँव में पहुँच भी गये थे और वहीं चुपचाप गाँववालों से सस्ते दामों पर खाद खरीदने लग गये थे। इसलिए खाद ले जानेवालों में एक प्रकार की होड़-सी उत्पन्न हो गई थी।

जब किसानों ने देखा कि खाद की मिलनेवाली मात्रा बहुत कम है तो पहिले तो वे और अधिक खाद के लिए माँग करने लगे। उनकी माँग जब पूरी नहीं हुई तो उन्होंने तौल में खराबी बताना आरम्भ कर दिया। किसी ने झूठी खबर उड़ा दी कि तोलनेवाले अँग्रेजी काँटे के नीचे एक ऐसा आला रखा गया है जिससे सेर-भर का बाट पाव ही भर तौल देता है। इस खबर से किसानों में सनसनी फैल गई। वे सभी लोग उस आले को देखने के लिए एक साथ गोदाम की ओर बढ़े। उनके पीछे और लोग भी आ गये। भीड़ बढ़ने लगी। इतने में बाहर किसी ने नारे लगाना आरम्भ कर दिया कि बाट जाली हैं, खाद कम तोली जा रही है। इस भीड़ को काबू में रखने हामिद-अली प्राइमरी स्कूल से बीज-गोदाम की ओर लपके। उनके वहाँ पहुँचने पर

कुछ लोग पहिले तो केवल उनकी गालियों से बचने के लिए गोदाम के अन्दर की ओर भागे। थोड़ी देर बाद कमरे के अन्दर भीड़ के अधिक हो जाने के कारण गोदाम के अधिकारियों ने पीछे की ओर के किवाड़ भी खोल दिये, जिससे उनका दम न घुटे और अन्दर आये हुए लोग आसानी से बाहर निकल सकें। किन्तु ऐसा करने पर पीछे के गोदाम में रखे गेहूँ के बोरों पर भीड़ की दृष्टि पड़ गई। नारे लगानेवालों ने कहा—गोदाम में गेहूँ है तो हमको खाद नहीं, गेहूँ चाहिए। कुछ देर 'गेहूँ-गेहूँ-गेहूँ !' चिल्लाकर लोगों ने भीड़ को उत्तेजित किया। फिर वही लोग 'गेहूँ बाँटो' कहकर नारे लगाने लगे।

आठ-दस अहीरों ने अवसर पाकर गेहूँ की बोरियों को स्वयं बाहर लाकर पीछे से बाँटना शुरू कर दिया। बीज-गोदाम के राममिलन ने हाथापाई की तो उसे करारी चोट लगी। हाथापाई में जिन किसानों ने चोट खाई थी उनकी सहायता करने दो-चार लठबन्द किसान आगे बढ़ गये मिनटों में आठ-दस आदमियों के सिर फट गये और हामिदअली को, जो अब तक आगे की ओर खाद बटवा रहे थे, तब इस बात बात का पता चला जब सारा गेहूँ उठ गया और उत्तेजित भीड़ अन्दर की ओर से ही उन पर टूट पड़ी। अपनी असहाय अवस्था में उनको पाँच वर्ष पहिले की रामप्रसाद की बात याद आई कि उसने इसी स्थान पर किस प्रकार उत्तेजित भीड़ को शान्त कर दिया था। मगर भीड़ को हटाने के लिए हामिदअली की आज्ञा से पुलिस ने लाठियाँ चलाई तो किसानों ने लाठियों से उनका जवाब दिया।

अन्त में पुलिस ने अपनी रक्षा के लिए गोली चलाई। गोलीकांड में वहाँ पर चार किसान मरे, कितनों ही को गोलियाँ भी लगीं।

गोली चलने की इस खबर से महाशय सुखलाल को सरकार के बड़े मंत्री ने बुला भेजा। उनका अनुमान था कि अब तराई की जनता सुखलाल के पक्ष में नहीं है, अन्यथा उन्हीं के भाई की गल्ले की दूकान पर यह बलवा न होता। महाशय सुखलाल से अपने पद से इस्तीफा देने को कहना उन्होंने उचित नहीं समझा। उन्हें तराई में चलनेवाली किसी सरकारी कृषि-फार्म तथा दुग्धशाला का मैनेजर बनाकर पाँच सौ रुपये मासिक वेतन दे दिया गया और कौन्सिल की तराई इलाके की सीट रिक्त घोषित की गई।

उस रिक्त स्थान के लिए उपचुनाव की तैयारियाँ होने लगीं। रामप्रसाद से उसके मित्रों और छात्रों ने आग्रह किया कि वह चुनाव लड़ने के लिए राजी हो जाये। उसके पढ़ाये विद्यार्थी अब गाँव-गाँव में पहुँच गये थे। प्रेमशंकर ने विदेश में जाकर लारेंस भाई के प्रयत्न से छपाई के काम में दक्षता प्राप्त कर ली थी और वह 'विद्या' नामक पत्रिका का सम्पादक बन गया था। उसका प्रेस भी आधुनिकतम था। प्रेमशंकर के कारण रामप्रसाद को अधिक दौड़-धूप नहीं करनी पड़ी और उपचुनाव में वह सफल हो गया।

विधान-सभा का सदस्य होने पर रामप्रसाद में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, उलटे वह आत्मचिन्तन में लग गया कि अब वह न राजागंज स्कूल की यथोचित सेवा कर पायेगा और न किसानों का ही कुछ भला कर सकेगा।

जिस शाम उस चुनाव में सफल होने का तार रामप्रसाद के पास पहुँचा वह नित्य की भाँति अपने विद्यार्थियों के बीच बैठा उन्हें किसी जटिल प्रश्न को समझा रहा था। तार को पढ़कर उसने बिना किसी भावना के पहिले की भाँति पढ़ाना और बालकों को समझाना जारी रखा। उस कक्षा में वह लगभग एक घंटे और रहा। इस बीच दो और तार उसके पास पहुँचे। वे बधाई के तार थे। उन्हें उसने खोला तक नहीं।

अपने निवास की ओर आते समय उसे मार्ग में सुशीला मिल गई। उसने पति को चुनाव की विजय का समाचार सुनाकर बधाई दी तो रामप्रसाद अपने ही विचारों में खोया-सा मन्द-मन्द और कृत्रिम हँसी हँसता रहा। सुशीला के साथ शील भी था। शील के कनटोप और जाड़े की उस ऋतु के कपड़ों को देख रामप्रसाद को अपने उन अनेक छात्रों की याद हो आई जो आज शाम उस जाड़े में भी, केवल कमीज और धोती पहने उसकी कक्षा में आये थे।

शील ने अपनी तोतली भाषा में कहा—पिताजी, मैं आज अपने स्कूल गया था।

उस तोतली वाणी को सुनकर रामप्रसाद तन्द्रा से मानो जाग उठा। बच्चे

को गोद में लेकर अपने निवास की ओर लौटते हुए वह कभी उसे गुदगुदा-कर हँसाता और कभी उसके तोतले प्रश्नों की नकल उसी की भाँति तोतला बनकर करता। सुशीला सोचने लगी, रामप्रसाद को बच्चों के और विद्यार्थियों के साथ ही खेलना अच्छा लगता है। वह इन्हीं छल-प्रपंचहीन लोगों के बीच शोभा देता है। सयाने लोगों की संगति में वह अब अपनी इस पैंतीस वर्ष की आयु में भी किशोर-सा ही लगता है। शायद इसी लिए उसे विधान सभा का सदस्य बन जाने में कोई विशेष हर्ष नहीं है।

उस शाम भोजन करने के उपरान्त रामप्रसाद फिर विद्यार्थियों के लिए अगले दिन के पाठ की तैयारी में लग गया। बिना तैयारी के कभी भी वह पढ़ाने नहीं जाता था। किन्तु आज उसका मन उस पाठ के तैयार करने में भी न लग सका। वह सोचने लगा, क्या मैं विधान सभा का सदस्य बनकर सुख-लाल की ही भाँति अपने उच्च आदर्श से गिर जाऊँ? नहीं, मैं विद्यालय की इस नौकरी को न छोड़ूँगा। विधान सभा में जाकर मुझे करना ही क्या है? सदस्य चुन लिया गया हूँ तो मैं जाऊँगा तो वहाँ अवश्य, किन्तु जैसे ही देखूँगा कि उससे मेरे इस नित्य के काम में बाधा पड़ रही है तो मैं अपने सदस्य पद से इस्तीफा दे दूँगा। महाशय सुखलाल ने तो इस पद के लिए दो बार कोशिश की थी, किन्तु मैं ऐसा कदापि नहीं करूँगा। मैं वहाँ जाकर तराई के लोगों के कष्टों के विरुद्ध अवश्य आवाज उठाऊँगा। उनके निवारण का भरसक प्रयत्न करूँगा, लेकिन जिस दिन यह देखूँगा कि मेरा वह प्रयत्न अकारथ जा रहा है उसी दिन मैं इस सदस्यता को त्याग दूँगा।

इस विचार के आते ही उसकी वे परेशानियाँ उसे घेरने लगीं। वह नित्य की भाँति अपने शयनकक्ष की ओर न जाकर अपने ही कमरे में चक्कर लगाता भावी कर्त्तव्य के बारे में सोचने लगा कि उसने किस प्रकार अब तक निरुपाय होकर लोगों पर होते अत्याचार देखे हैं। कितने ही लोगों को अकारण कारावास होते देखा है, कितने ही लोगों को अधिकारियों की अकर्मण्यता और नासमझी के कारण भूख और वस्त्राभाव से पीड़ित होकर मरते देखा है। अब भी इस सबका निराकरण, इसका उपचार वह नहीं कर पायेगा तब किस बूते पर वह सदस्यता का भरोसा कर रहा है? फिर वही प्रश्न उसके मस्तिष्क में आ गया

कि संसार अब तक इन सब दुःखों को, इस नृशंसता को सहता जा रहा है, कोई उफ तक नहीं करता, सब ओर शान्ति दिखलाई दे रही है, सभी दुःखी और उद्वेलित हैं, किन्तु फिर भी प्रकट रूप से शान्त और प्रसन्न दीखते हैं, तब क्या मुझमें ही कुछ विकार है, जो मुझसे यह सब-कुछ नहीं सहा जाता ?

शिथिल मन और शिथिल शरीर वह इन विचारों से क्लान्त हो बिस्तर पर बैठ गया और वहीं बैठे-बैठे उसने विद्यार्थियों के लिए अगले दिन के पाठ को तैयार करने के बजाय विधान सभा के लिए अपनी वक्तृता का मसविदा तैयार किया। अपने भाषण की रूप-रेखा तैयार कर लेने से उसे कुछ शान्ति मिली, तभी वह सोने पाया।

रामप्रसाद किसी भी राजनैतिक दल का सदस्य नहीं था, इसलिए उसके विधान सभा में पहुँचने पर शासक और विरोधी दोनों दलों ने उसका स्वागत किया। शासक दल ने उस क्षेत्र में अपने दल की हार को यह कहकर हलका करने का प्रयत्न किया कि रामप्रसाद-जैसे विद्वान को अपने मध्य पाकर वे अब उसकी विद्वत्ता से लाभ उठायेंगे; भले ही वह विरोधी पक्ष में क्यों न चला जाये। इस तर्क का करारा उत्तर देते हुए विरोधी दल के एक नेता ने रामप्रसाद का परिचय दिया और उन सब घटनाओं का, जिनके कारण रामप्रसाद को तराईपुर की तहसील का चार्ज देना पड़ा था, अपने भाषणों में क्रम से वर्णन किया। यह भी बतलाया कि किस प्रकार रिश्वतखोर लोगों ने अपने कारनामों को छिपाने के लिए उसे पागल घोषित करके पागलखाने भेजने की योजना बनाई थी। सदन के सदस्य उस कहानी को सुनकर सिहर उठे।

इसके उपरान्त अगली बैठक में तराईपुर के गोलीकांड पर बहस हुई। रामप्रसाद जब बोलने उठा तो उसका ज़ोरों से स्वागत हुआ। पहिले कुछ सकुचाता हुआ धीमे-धीमे अपनी बात को समझाता हुआ जब रामप्रसाद अपने भाषण के सारगर्भित तथ्यों पर पहुँचा और उसने शासन के एक-एक कानून की आलोचना करके अपने दृष्टान्तों से यह समझाना आरम्भ किया कि तराई में खटिकों, पासियों, थारुओं-जैसी जातियों के अन्यत्र चले जाने के कारण ही दुर्भिक्ष फैला है तो सदस्य उसके अकाट्य प्रमाणों और तर्कों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। तराई के लोगों की सहनशीलता की प्रशंसा करते हुए

उसने फिर भावुकतापूर्ण शब्दों में वही प्रश्न जिसे वह अनेक बार अपने ही से पूछता था, सदस्यों से किया कि लोगों की उस पीड़ा से उसी का इतना अधिक विचलित रहना या तो सरकार के लगाये उस आरोप को प्रमाणित करता है कि मस्तिष्क-विकार उसी में है अथवा यह भी प्रदर्शित करता है कि उन नियमों को चलानेवाले और उनका पालन करनेवाले ही मस्तिष्क-विकार से पीड़ित हैं।

रामप्रसाद की स्पष्टवादिता का और अपने मन के भावों को सीधी-सादी भाषा में व्यक्त करने का उसके श्रोताओं पर अनूठा प्रभाव पड़ता था। किसी बुराई को छिपाने का, चाहे वह उसी की क्यों न हो, उसका स्वभाव ही नहीं था। इसलिए भी उसके श्रोता मंत्रमुग्ध-से उसके वाक्यों को सुनते थे। आज भी यही हुआ। सदन में उन स्पष्टोक्तियों से सनसनी मच गई। उसके भाषण के उपरान्त उस प्रस्ताव पर जो ओजस्वी भाषण हुए उससे सदन में ऐसी खलबली मची कि सरकारी दल के अनेक सदस्य विरोधी दलों में जा मिले।

रामप्रसाद उस बैठक में भाग लेकर चुपचाप घर लौटकर अपने अध्ययन-अध्यापन में लग गया। विद्यार्थियों की तीन दिन की पढ़ाई में बाधा पड़ गई थी। इसका कारण अपने को ही जानकर वह सोचने लगा कि आज नहीं तो कुछ सप्ताह के उपरान्त वह अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे देगा। उधर उसके भाषण से प्रदेश की सरकार संकट में फँस गई। मंत्रिमंडल के पुलिस तथा तीन और मंत्रियों को इस्तीफा देने को विवश होना पड़ा।

*

उस दिन प्रातःकाल अँग्रेजी दैनिक पत्र के पहिले पृष्ठ पर दृष्टि पड़ते ही घूस-निरोधक विभाग के अधिकारी हामिदअली बड़ी दुश्चिन्ता में पड़ गये। तीन वर्ष के परिश्रम के उपरान्त उनकी पहुँच अपने विभाग के मंत्री तक जैसे ही हो पाई थी कि यह मनहूस खबर उस अखबार में दीख पड़ी कि मंत्रीजी से त्यागपत्र माँगा जायेगा।

तराईपुर से उसे सुखलाल की ही बदौलत छुटकारा मिला था और पहिली पदोन्नति भी उन्हीं की सिफारिश के बल पर हुई थी। बड़े शहरों के रहन-सहन

और ऊपर की आमदनी के आसान और कठिन सभी उपायों से वह शीघ्र अभ्यस्त हो गया था। उसे यह भी पता चल गया था कि चुनाव के समय थोड़ी-सी सहायता भी यदि भावी विधान-सभाई सदस्य की कर दी जाये तो वह बाद में बड़ी कारगर होती है। मंत्रियों के आने पर उन्हें सलामी देने रेलवे स्टेशन पर जाना, उनके आगे-पीछे सिपाही तैनात कर देना, अपने आप पीछे रहकर उनके लिए बढ़िया-सी दावतों का प्रबन्ध कर देना, बिजली के कुएँ, पंचायतघर, नीरा (मीठी ताड़ी) की दूकान का उद्‌घाटन कराने अपने इलाके में उनको जनता की ओर से निमंत्रण भिजवा देना और किसी ग्रामीण वक्ता से उस समारोह में पुलिस की तत्परता की प्रशंसा करवा देना, यह सब हथकंडे वह सीख चुका था। उसके लिए गोरे साहबों से भी अधिक आसान काले साहबों को प्रसन्न करना हो गया था।

कुछ ही दिन पहिले अपने जिले में डाकुओं के 'शव-प्रदर्शन-समारोह' का आयोजन कराकर वह शाबाशी पा चुका था। मंत्रीजी की नातिन के विवाह पर बिना उनके जाने ही उनके समधी के घर हाथी, घोड़ों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कराकर मंत्रीजी के घर की महिलाओं से अपनी प्रशंसा में पत्र लिखवा चुका था। अब यह सब किया-कराया चौपट हो जायेगा, यह सोचकर एक भयानक स्वप्न से पीड़ित-सा वह फिर उस समाचार को पढ़ने लग गया. यह जानने के लिए कि अब किस के मंत्री होने की आशा हो सकती है, वह रहता कहाँ है, उसके कौन सम्बन्धी कहाँ रहते हैं, किस प्रकार चाटुकारी, स्वागत-समारोह आदि से जल्दी ही उसे प्रसन्न किया जा सकता है; क्या उसके मंत्री होते ही शुभकामनाओं का एक तार उसे भेजना उचित होगा या नहीं ?

'रामप्रसाद ? डाक्टर रामप्रसाद ? वह !' ऐसा सोचते ही वह व्याकुल हो गया। उसके चेहरे पर अनेक रंग आये और गये। राजागंज का सौ रुपल्ली पानेवाला मास्टर नौकरी से निकला मूर्ख रामप्रसाद एक दिन पुलिस मंत्री हो जायेगा, यह बात यदि कभी उसकी दूर कल्पना में भी उदित हो गई होती तो वह उस स्कूल को उजाड़कर उसकी ईंट-से-ईंट बजा देता। उसने तो इन पाँच वर्षों में रामप्रसाद की ओर झाँकना भी अपना अपमान समझा था।

कुछ क्षण असह्य पीड़ा से छटपटाकर उसने अपने पुराने मित्र दर्शनलाल को, जो अब ग्राम-विकास योजना का भारी अफसर था, टेलीफोन करके उसे संकट से अवगत कराकर यह जान लेना चाहा कि उस रामप्रसाद की बूढ़ी मा कहाँ होगी और उसकी पत्नी का मायका कहाँ है।

*

उस दिन रामप्रसाद ने भी देखा कि उसकी मेज पर पड़े ताजे अखबारों में उसी की चर्चा है। एक पत्र में लिखा था—'नवागन्तुक सदस्य के भाषण से इस प्रदेश की सरकार के काले कारनामों का पर्दाफाश हो गया। स्थिति ऐसी गम्भीर है कि सरकार अपनी नाक बचाने के लिए अपने तीन मंत्रियो से इस्तीफा माँगेगी।'

एक अँग्रेजी पत्र ने अपने विश्वस्त-सूत्र के आधार पर लिखा था कि गवर्नर ने विरोधी दल के नेता को बुला लिया है।

एक दूसरे पत्र ने अपने सम्पादकीय में लिखा था—'इस भाषण से शासन की अकर्मण्यता, अधिकारियों की स्वार्थपरता, कर्मचारियों की कामचोरी तथा बेशुमार करों से पीड़ित जनता की दुर्दशा का नग्न चित्र पहिली बार उन इने-गिने, बचे-खुचे स्वार्थ त्यागी नेताओं को दीख पड़ेगा जो यह समझे बैठे थे कि देश में सर्वत्र शान्ति है तथा विरोधी दलों के बहकाने पर किये गये प्रदर्शन उल्टे-सीधे मार्गों से शासन-सत्ता को हथियाने के हथकण्डे-मात्र हैं। उन स्वार्थी पदलोलुप व्यक्तियों की भी अब आँखें खुल जायेंगी जो पच्चीस वर्ष से लगातार अपने ऊँचे पदों पर बैठकर, इन पदों को, जो सच्चे त्याग के प्रतीक हैं, अपने ऐश-आराम का साधन तथा अपने सम्बन्धियों को भी उसी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कराने की अपनी जन्म सिद्ध विरासत समझने लगे थे....।'

सबसे महत्वपूर्ण लेख 'विद्या पत्रिका' में था। रामप्रसाद की संक्षिप्त जीवनी देकर उसने लिखा था—'डाक्टर रामप्रसाद को अनेक विदेशी विद्यालयों ने अपने यहाँ गत वर्ष अध्यापन-कार्य के लिए बुलाया था। वहाँ वेतन उन्हें खूब अच्छा मिलता, किन्तु उन्होंने अपने छोटे-से उस ग्रामीण विद्यालय

की सौ रुपये मासिक की नौकरी को छोड़ना उचित नहीं समझा। बुलानेवालों को लिख दिया कि यदि विदेशी विद्वान उन्हें इस योग्य समझते हों तो अपने बालकों को ही उनकी पाठशाला में शिक्षा-ग्रहण करने भारत भेज दें। वे सरकार के मंत्रिपद को ग्रहण करेंगे, इसमें भी सन्देह है। विधान सभा की सदस्यता के लिए भी वे खड़े होने के लिए तत्पर न थे। मित्रों के बहुत आग्रह करने पर खड़े हुए थे। ठीक भी है। विधान सभा में उतने अधिक सदस्यों की क्या आवश्यकता है? नित नये-नये कानून क्यों बनाये जाते हैं? जनता के सच्चे प्रतिनिधि को केवल कानून बनाने में अपना समय व्यतीत नहीं करना चाहिए। एक कानून के बनने पर उसका पालन कराने के लिए अनेक सरकारी नौकर चाहिए। उन कानूनों को भंग करनेवालों को पकड़ने के लिए और अधिक पुलिस चाहिए। उस पुलिस को नियंत्रण में रखने और उसे ईमानदार बनाने के लिए खुफिया पुलिस चाहिए। यदि मनुष्य में सद्भावना, सच्चरित्रता और परोपकार की भावनाएँ हों तो किसी कानून के लिखित रूप में न होते हुए भी साधारण सद्भावना से क्या यह पता लगाना कठिन नहीं है कि कौन अपराधी है और कौन अपराधी नहीं। धन-सम्पत्ति और साधारण विवादों का निर्णय जितना अच्छा एक साधारण शिक्षित नागरिक अपने सहज विवेक और मानवी ज्ञान से कर सकता है क्या उतना अच्छा निर्णय लिखित कानून का अन्धानुगमन करने और पुराने न्यायाधीशों के फैसलों के दृष्टान्तों पर चलने से हो सकता है? लिखित कानून तो शब्दों के उलटे-सीधे अर्थ लगाकर अपने ही को धोखा देना है।

'हम तो यह चाहेंगे कि विधान सभाओं के सदस्य उस सदस्यता को अपने स्वार्थसाधन का साधन न मान लें। वे सच्चे त्यागी हों। उन्हें वेतन देने की प्रथा शीघ्र बन्द हो। रामप्रसाद अपने विद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए जिस प्रकार विधान सभा में बैठने का इरादा रखते हैं उसी प्रकार प्रत्येक सदस्य भी अपनी जीविका के उस साधन को, जो सदस्य बनने से पहिले उसे प्राप्त था, न छोड़ें। राजनीति किसी का व्यवसाय न बन जाये। जैसा हमारे संविधान में लिखा है, वर्ष में विधान सभाओं के केवल दो अधिवेशन हों, वर्ष के आय-व्यय का हिसाब प्रस्तुत करने तथा सरकारी विभागों की आलो-

चना सुनने के लिए। सदस्यों के लिए राज्य की राजधानियों में साल-भर पड़े रहने के लिए सरकारी खर्च पर आलीशान भवन न दिये जायँ, मंत्रिगण मोटी-मोटी तनखाहें न लें। वे भी सदस्यों की भाँति रहें, प्रत्युत उनसे भी अधिक निःस्वार्थ और आत्मत्यागी बनें। गाँव-गाँव में जाकर कभी पंचायतघर का सरकारी व्यय पर उद्घाटन करना अथवा कहीं अभिनन्दनपत्र ग्रहण करना, राजसी ठाठ से सरकारी नौकरों की सेना लेकर दौरों पर निकलना, यह सब मंत्रियों का काम नहीं। गवर्नर या प्रेजीडेण्ट को ही यह काम शोभा दे सकता है, मंत्रणा देनेवाले मंत्री को नहीं। प्रत्येक विभाग के कर्मचारी सरकार की आज्ञा के अनुसार गाँव-गाँव में जाकर अपना कर्त्तव्यपालन कर रहे हैं या नहीं, यह मंत्रणा देनेवाले को अपनी सुव्यवस्था द्वारा घर बैठे ही ज्ञात हो जाना चाहिए। अपने लिए वाहवाही कमाना मंत्री के लिए कैसा उपहास्य है! वह जनता का कोई उपकार करता है तो जनता के ही दिये कर से तो करता है। तब अपनी जयजयकार सुनने उसी जनता के व्यय पर जाना क्या जनता के धन का अपव्यय नहीं है? क्या स्थानीय कार्यकर्ताओं और ग्रामीण समाज-सेवियों का यह अपमान नहीं है?'

रामप्रसाद उस लेख को देखकर मुस्कराया कि प्रेमशंकर अब उस जयजयकार के विरुद्ध हो गया है जिसके लिए उसे दो-तीन बार उसने झिड़की दी थी। उसने यह भी देखा कि प्रेमशंकर की लिखी कुछ बातें आर्थिक दृष्टिकोण से भ्रामक हैं तथा कुछ अव्यावहारिक, किन्तु उनसे देश के प्रति उसका सच्चा अनुराग झलकता है।

एक हाथ से अपने बेटे शील की उँगली थामे और दूसरे से पति के लिए दूध का गिलास लाकर मेज पर रखते हुए सुशीला ने मेज पर पड़ी डाक को देखा। वहाँ एक बड़ा-सा बादामी लिफाफा था। बाहर सरकारी मुहर भी थी। रामप्रसाद उस समय सोच रहा था कि सुशीला इन समाचारपत्रों में उसके नाम को मोटे अक्षरों में छपा देखकर अभी कुछ पूछेगी; और सुशीला सोच रही थी कि रामप्रसाद उस लम्बे बादामी लिफाफे को ही पहले खोलकर पढ़ें कि कहीं उसमें अब फिर इस छोटी-सी नयी गृहस्थी के उजड़ने का तो सन्देश नहीं आ गया है। अब जब पति की गृहस्थी के कोने-कोने में सन्तोष

विराजमान है, चारों ओर उनकी विद्वत्ता की ख्याति है और देश में उनके माननेवाले शिष्यों की संख्या हजारों है, बनी-बनाई इस सुखी दुनिया का खून करने फिर वही बदनामी लिफाफा सरकारी दफ्तर से चला आया है! पत्र को उठाकर उसने एक कोने से थामकर, मानो कि वह विषैला साँप हो, पति की ओर बढ़ा दिया। आँखों-आँखों संकेत किया कि देखो यह क्या बला है।

रामप्रसाद ने पत्र खोलकर पढ़ा। ऊपर मुहर थी माल मंत्री अमुक सरकार। लिखा था :

'प्रिय डॉक्टर रामप्रसाद,

'परसों आपके भाषण के उपरान्त मंत्रिमंडल की एक विशेष बैठक में मैंने मुख्यमंत्री से अनुरोध किया कि वे अपने तीनों उन मंत्रियों से त्यागपत्र माँगें जिनकी असावधानियों तथा गलतियों के कारण तराई में वे दुर्घटनाएँ घटीं। उनके आनाकानी करने पर मैंने यही उचित समझा कि मैं अपना त्यागपत्र दे दूँ। कल मैंने अपने साथी सदस्यों की राय लेकर इस्तीफा दे दिया है। मेरे साथ ही शासक दल के बीस सदस्यों ने भी उस दल से इस्तीफा दे दिया है। अब स्थिति यह है कि तीन सौ पचास सदस्यों के सदन में शासक दल की सदस्य संख्या एक सौ पंचानबे से घटकर पौने दो सौ हो गई है और विरोधी दलों की भी सदस्य संख्या इतनी ही पहुँच गई है! यह आपकी साधना का ही फल है कि इस समय इस प्रदेश में सरकार की बागडोर आप-जैसे स्वतंत्र सदस्य के हाथ आ गई, सत्तारूढ़ दल आपको अपने पक्ष में करके फिर बहुमत प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। साथ ही विरोधी दलों के सदस्य अपने भेद-भाव भुलाकर इस प्रदेश के हित के लिए एक स्थायी सरकार बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप जिस पक्ष का समर्थन करेंगे उसको स्पष्ट बहुमत मिलने की पूरी आशा है। संयुक्त विरोधी दल तो आप ही को अपना नेता चुनना चाहता है।

'यदि आप इस गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिए होनेवाली विधान सभा के विरोधी दलों की संयुक्त सभा में रविवार के सायंकाल साढ़े चार बजे राजधानी पधार सकें तो मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूँगा।

'आपके न आने पर इस प्रदेश में गवर्नर का शासन और शीघ्र उपचुनाव

का होना निश्चित है। जनतंत्र दल फिर उद्योगपतियों से चन्दा लेकर नये चुनाव में भी बाजी मार ले जायेगा, यह भी निश्चित ही समझिए।

आपका,

....

रामप्रसाद ने पत्र पढ़कर उसे पत्नी की ओर बढ़ा दिया। उसकी आँखें संकुचित हो गईं। वह दूध से भरे गिलास की ओर फटी-फटी आँखों से देखता गम्भीर चिन्तन में मग्न हो गया। उसकी दृष्टि उस कमरे की किसी भी ठोस वस्तु से न टकराकर उन सब को पारदर्शक-सा बना कहीं दूर बिखर रही थी।

सुशीला ने उसे छेड़ना उचित न समझकर उन समाचारपत्रों को पलटना शुरू कर दिया और यत्र-तत्र उसी की चर्चा देखकर आनन्द से पुलकित होकर मन-ही-मन कहा, कैसे आश्चर्य का विषय है! एक दिन जिसे सरकार ने अपने विभाग की एक छोटी-सी नौकरी के लिए भी अयोग्य ठहराकर उस नौकरी से निकल भागने को विवश किया था, आज उसी व्यक्ति को बुलाकर, उसका निहोरा किया जा रहा है कि वह उसी विभाग के सबसे बड़े अधिकारी से भी ऊँचे पद को ग्रहण करे।

अपने कौतूहल को न रोक सकने के कारण उसने पति के निकट आकर उसका ध्यान-आकर्षित करके कहा—आप तो चुनाव के लिए खड़े भी नहीं हो रहे थे, तब कौन जानता था कि तराई के इस इलाके का सदस्य मंत्री बन सकेगा?

रामप्रसाद ने अब भी कुछ न कहा।

सुशीला ने समाचारपत्र को पति के हाथ में देकर उसे भली-भाँति तन्द्रा से जगाते हुए फिर कहा—मंत्रिपद मिला तो आप कौन-सा विभाग चुनेंगे, आपकी सम्मति तो पहले ली ही जायेगी?

रामप्रसाद के माथे पर बल पड़ गये, उसने भौंहें सिकोड़कर कहा—सुशीला, तुम अब भी मुझे ठीक नहीं समझीं। यह मंत्रिपद का प्रलोभन उन अनेक रिश्वत के प्रलोभनों से, जो अपनी तहसीलदारी के समय मुझे दिये गये, किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। मंत्री बनकर, आज की परिस्थिति में, उन तमाम सुविधाओं के बदले में जो आज के मंत्री को जनता के दिये कर से सुलभ

कर दी गई हैं, मैं जनता की क्या सच्ची सेवा कर सकूँगा ? आज का शासन ? सरकारी नौकरी करते हुए मैंने देख लिया है, वहाँ भ्रष्टाचारी और ईमानदार दोनों प्रकार के कर्मचारी, चपरासी से लेकर तीन-तीन चार-चार हजार वेतन पानेवाले सरकारी नौकर कम-से-कम काम करके अपने लिए अधिक-से-अधिक सुविधाएँ चाहते हैं, यह कम काम करने और अधिक वेतन पाने की प्रवृत्ति आज के प्रशासन की रग-रग में व्याप्त है। निःस्वार्थ सेवा, परोपकार तथा दूसरे की पीड़ा को देखकर उसके हित के लिए आत्मोत्सर्ग कर देने की भारतीय परम्परा का लोप हो गया है। हमारा संविधान चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो, उसका संचालन नौकरशाही के कल-पुर्जों द्वारा हुआ तो जनता में अनैतिकता का ही प्रचार होगा। मैं तो किसी भी सरकार के मंत्रिपद को तब ग्रहण करूँगा जब जनता से ग्रहण करने के बजाय उसे कुछ दे सकूँ। जब मेरी पुस्तकों से इतनी आय होने लगे कि जनता को अपने भरण-पोषण के भार से मुक्त करके मैं अपने व्यय से राजधानियों में रह सकूँ और बिना वेतन लिये मंत्रिपद चला सकूँ; जैसे हम लोगों में एक प्राचीन प्रथा है कि जिसे हम अपनी कन्या दान में देते हैं उसकी कमाई खाना पाप समझते हैं, यहाँ तक कि कन्या के घर का बिना मूल्य चुकाये अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करते, ऐसे ही जनता को अपनी सेवाएँ दान में देकर फिर उससे हमें दमड़ी भी अपने लिए नहीं माँगनी चाहिए। जिस दिन मैं अपने लिए ऐसे अनेक साथी जुटा लूँगा और जिस दिन मंत्री बननेवालों को वह ईशोपनिषद की शपथ 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' दी जाने लगेगी और जब वह कन्यादान करनेवाले पिता की भाँति मंत्रिपद ग्रहण करने लगेगा, उसी दिन मैं मंत्री बनने की आकांक्षा करूँगा।

सुशीला ने कहा—तो रविवार की उस सभा में आप जायेंगे ?

रामप्रसाद ने, जो अपने निरन्तर गहन अध्ययन से देश-विदेश की राजनीतिक उथल-पुथलों से भली-भाँति पारंगत हो गया था तथा संसार के सभी देशों की आर्थिक व्यवस्था का प्रकाण्ड पण्डित हो चुका था, कहा—स्वतन्त्र देशों में विधान सभाओं और संसदों के सम्मुख ऐसी समस्याएँ अनेक बार आई हैं। ऐसा भी हुआ है कि एक ही सदस्य के भरोसे उसी एक-मात्र वोट पर देश के भाग्य का निर्णय हुआ है। पिछली शती में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति

एंड्रू जानसन का जीवन एक बार कन्सास के प्रतिनिधि एडमण्ड रॉस के एक वोट पर निर्भर हो गया था। उस बहादुर प्रतिनिधि ने अपनी आत्मा का हनन नहीं किया, यद्यपि अपनी निष्पक्षता के कारण वह अपने निर्वाचकों का कोप-भाजन बना और उसे अपने जीवन की सभी महत्वाकांक्षाओं को भी इस कारण बलिदान कर देना पड़ा था। अपने आदर्श का पालन करनेवाले व्यक्ति कभी राजनीतिक ख्याति के लोभ में नहीं पड़ते। इंगलैंड के विल्फ्रेड वैलक तथा फिलिपाइन्स के डोमिनगो बास्करा ने तो ग्रामीण जीवन के पुनर्संगठन के लिए ऐसे अनेक निमन्त्रणों को ठुकरा दिया है। एक भारतवासी को औसत अमेरिकन या फिलिपीन से अधिक मात्रा में स्वार्थत्याग की भावना अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है। यदि हमें संसार के राष्ट्रों की उस माँग को, कि भारत उन्हें सांस्कृतिक उत्सर्ग का मार्ग दिखायेगा, पूरा करना है तो जनता की सेवा को व्यभिचार-मात्र नहीं बनाना है। अँग्रेजों की चलाई इस स्वार्थ प्रवृत्ति से शासन के एक-एक कल-पुर्जे को मुक्त कर देना है। यह तभी सम्भव होगा जब उन सरकारी नौकरों से काम चलानेवाले मंत्री मुनियों की-सी प्रवृत्ति के आत्मत्यागी हों। इस बार मेरी सदस्यता का पाथेय तो यह होगा कि मैं निष्पक्ष रहकर शासक दल के आत्मचिन्तन के आवेश को ठंडा न होने दूँ।

उस सारी बातचीत से उकताकर तथा उसमें से 'ठंडा' शब्द को ही समझ पाने पर बालक शील ने अपने पिता के भारी कन्धों को हिलाने का विफल प्रयत्न करते हुए कहा—पिताजी, वह तो ठंडा हो गया, पी लीजिए अब।

मा-बाप दोनों ने देखा, अबोध बालक मेज पर रखे दूध से भरे गिलास की ओर संकेत कर रहा था।